RNI No.: MPHIN/2018/77137
ISSN 2582-483X

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

वर्ष-3 अंक-6 दिसम्बर 2020
भोपाल

दिसम्बर, 2020 (वर्ष 3, अंक 6)

प्रकाशक

- **अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय**
  पिक्सल बी, पी.ई.एस. कैम्पस
  होसुर रोड, इलेक्ट्रॉनिक सिटी, बेंगलूरु 560100
  Web: www.azimpremjiuniversity.edu.in

सम्पादकीय कार्यालय

- **सम्पादक**
  पाठशाला भीतर और बाहर
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव
  सोसायटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा,
  भोपाल, म.प्र. 462039 फोन-0755-4074060
  pathshala@apu.edu.in
  gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
  मो. 8226005057

डिज़ाइन एवं प्रिंट

- **गणेश ग्राफिक्स,**
  26-बी, देशबंधु परिसर,
  प्रेस काम्प्लेक्स,
  एम.पी.नगर, जोन-1
  भोपाल, म.प्र. 462011
  ganeshgroupbpl@gmail.com
  मो. 9981984888

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का हिन्दी प्रकाशन है। यह शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, अन्य ज़मीनी कार्यकर्ताओं व शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए विचार-विमर्श का एक मंच है। पत्रिका का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के अनुभवों व आवाज़ को जगह देकर शिक्षा के विमर्श को गहन व यथार्थपरक बनाना है।

अनुक्रम

सम्पादकीय

महामारी का दौर अभी ख़त्म नहीं हुआ है। हालाँकि कुछ टीकों के आने से यह आशा है कि शायद जल्द ही यह दौर थमेगा और सबकुछ सामान्य होने लगेगा। वैसे अब अधिकांश क्षेत्रों में काम शुरू हो गया है। कुछ राज्य सरकारों ने सभी सुरक्षा मानदण्डों को ध्यान में रखकर स्कूलों को खोलने के आदेश भी पारित किए और कुछ स्कूल खुले भी, फिर बन्द भी कर दिए गए। माने स्कूली शिक्षा के दायरों में स्थिति में कुछ ख़ास सुधार नहीं है। अभी भी स्कूल अनिश्चित काल के लिए बन्द हैं, और निकट भविष्य में भी खुलने की ज़्यादा सम्भावना नज़र नहीं आती। ये सभी सरकारें, अभिभावक और शिक्षक अपने स्तर पर व मिलजुल कर लगातार शिक्षण की ऐसी वैकल्पिक कोशिशों में जुटे हैं कि तालाबन्दी से बने मुश्किल हालात में भी बच्चों से कैसे निरन्तर सम्पर्क बना रहे और उनकी पढ़ाई-लिखाई जारी रह सके।

इस अंक का 'संवाद' महामारी के इस दौर में बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के वैकल्पिक प्रयासों की चर्चा पर आयोजित था। विषय था– ***महामारी के दौर में शिक्षा, स्कूल और बच्चे।*** संवाद में, ज़मीनी स्तर पर इन पहलों में जुटे शासकीय शिक्षकों व सरकारों के साथ मिलकर काम करने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं के साथियों ने अपने अनुभव साझा किए। उन्होंने बताया कि इस दौर में बच्चों से जुड़े रहने, उनको सीखने-सिखाने से जोड़े रखने के लिए किस-किस तरह के प्रयास उनके द्वारा किए गए, कौन-से प्रयास उन्हें बेहतर लगे और क्यों? यह भी चर्चा हुई कि ऑनलाइन शिक्षण में क्या सम्भावनाएँ हैं और क्या सीमाएँ हैं?

इसी मुद्दे पर एक और लेख ***तालाबन्दी के दौरान ऑफ़लाइन शिक्षा प्रक्रिया की रूपरेखा*** में मौअज़्ज़म अली ने उत्तराखंड की ऊधम सिंह नगर टीम द्वारा सरकार के साथ काम करते हुए अपनाए गए शिक्षण तरीक़ों और उसमें आने वाली समस्याओं और उन्हें हल करने के तौर-तरीक़ों का विस्तार से ज़िक्र किया है। लेख कहता है कि अध्ययनों के अनुसार ऑनलाइन शिक्षण में शामिल होने वाले बच्चों का प्रतिशत काफ़ी कम था, इसलिए ऑफ़लाइन शिक्षण की प्रयोगात्मक शुरुआत की गई।

इस अंक में फ़ील्ड के अनुभव पर आधारित लेखों की संख्या बढ़ी है और हम चाहते हैं कि अगले अंकों में इस दिशा में हम कुछ और आगे बढ़ें। इस अंक में 'कक्षा अनुभव' से जुड़े हुए आठ लेख शामिल हैं।

आराधना गुप्ता अपने लेख ***क्या स्कूल पुस्तकालय पढ़ने-लिखने और सीखने-सिखाने का अहम हिस्सा है?*** में एक शासकीय स्कूल में पुस्तकालय को पुनः शुरू करने के अपने अनुभव का वर्णन करते हुए स्कूल पुस्तकालय के उद्देश्यों के बारे में बात करती हैं और अलग-अलग कक्षा के बच्चों के साथ पुस्तकालय में क्या-क्या गतिविधियाँ की जा सकती हैं, इसके भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

अगला लेख सुनीता का है। वे अपने आलेख ***कक्षा अवलोकन के ज़रिए शिक्षण प्रक्रिया को समझना*** में एक ग्रामीण शाला की कक्षा-2 में भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का अवलोकन साझा करती हैं। वे बताती हैं कि इस कक्षा की शिक्षिका पढ़ना-लिखना, सीखने-सिखाने के दौरान बच्चों को उनके अपने अनुभवों को याद करने, उनको एक दूसरे से साझा करने, उनपर बात करने के अवसर कैसे बनाती हैं और यह चर्चा करती हैं कि कैसे ये अनुभव भाषा सीखने में मददगार होते हैं।

शारदा कुमारी अपने लेख में बताती हैं कि वंचित समुदाय के बच्चों, जिनके माहौल में लिखित सामग्री और पढ़े जाने का व्यवहार दोनों ही लगभग शून्य होते हैं, की बोलचाल की भाषा को कक्षा में जगह देकर पढ़ने-लिखने को अर्थवान व सुगम बनाया जा सकता है। वे इस दौरान आने वाली कुछ चुनौतियों का भी ज़िक्र करती हैं और बताती हैं कि उन्होंने इनका सामना कैसे किया?

मेरे स्कूली अनुभव लेख में मुकेश मालवीय अपने शिक्षकीय सफ़र के अनुभवों को साझा करते हैं। वे कहते हैं कि अधिकांश स्कूलों में और कक्षाओं में सीखने-सिखाने का एक औपचारिक माहौल होता है। वे अपने वैकल्पिक प्रयासों के उदाहरणों के आधार पर सवाल उठाते हैं कि शिक्षा में, सीखने में क्या इस तरह के वैकल्पिक अनुभवों के कोई शैक्षिक निहितार्थ भी हो सकते हैं?

अगला लेख दुर्गेश का है और इसमें गणित की प्रकृति से सम्बन्धित कुछ मुद्दों पर बात है। लेखक गणित के मूल उद्देश्यों, गतिविधियों से आशय और शिक्षण में इनके महत्त्व आदि के बारे में विचार रखते हुए बताते हैं कि उपयुक्त गतिविधियाँ गणित के प्रति उपजने वाले भय और निराशा की जगह गणित में रुझान विकसित करने में काफ़ी मददगार हो सकती हैं। लेख में गणित को अन्य विषयों से जोड़ने व सामाजिक मूल्यों के विकास में इसके महत्त्व पर भी संक्षिप्त में चर्चा की गई है।

नन्दिनी का स्कूल लेख की लेखिका हैं कमला बाजपेई। एक बच्ची के स्कूल में दाख़िला लेने के बाद से उसके व्यक्तित्व में आ रहे परिवर्तन को वो समझने का प्रयास करती हैं और दर्शाती हैं कि कैसे स्कूल का माहौल, स्कूल में होने वाली विभिन्न प्रक्रियाएँ, शिक्षकों की प्रतिक्रियाएँ बच्चों को प्रभावित करती हैं। वे अपने बीते स्कूली जीवन में झाँककर याद करती हैं और बताती हैं कि कैसे स्कूल बच्चों के व्यवहार को निर्मित करता है। वे स्कूल में बच्चों के समाजीकरण की प्रक्रियाओं पर भी सवाल उठाती हैं।

इन्दु पंवार का लेख *भाषा शिक्षण में बातचीत क्यों ज़रूरी है?* बच्चों की पढ़ाई-लिखाई में बातचीत की अहम भूमिका को रेखांकित करता है। वे कहती हैं कि बच्चों के साथ बातचीत न केवल बच्चों की मौखिक भाषा को स्कूली भाषा से जोड़ने में पुल का काम करती है बल्कि बच्चों से जुड़ने और उनसे आत्मीय रिश्ता बनाने का प्रमुख आधार बातचीत ही है और इससे बच्चों का आकलन करने में भी सहायता मिलती है।

शहनाज़ का लेख *मूल्यांकन और सीखना,* सीखने में मूल्यांकन की अहमियत के ठोस उदाहरण प्रस्तुत करता है। वे बताती हैं कि केवल पाठ्यपुस्तक में दिए गए प्रश्नों और विषय वस्तु से सीधे जुड़े प्रश्नों की बौछार करके बच्चों की क्षमता का सही आकलन बिलकुल नहीं किया जा सकता। यदि हम वाक़ई बच्चों की सीखने में मदद करना चाहते हैं, तो उनकी सीखने की क्षमताओं को देखते हुए मूल्यांकन की प्रक्रिया तय करें।

शिक्षणशास्त्र खण्ड में शामिल लेख *शिक्षक प्रशिक्षण : कुछ अनुभव* में कमलेश चन्द्र जोशी, एक रिफ़्लेक्टिव शिक्षक बनाने की तैयारी के लिए किस तरह की प्रशिक्षण प्रक्रियाएँ मददगार हो सकती हैं, इस पर अपने अनुभव साझा करते हैं। वे कहते हैं कि ऐसे तरीक़े और पठन सामग्री उपयोग में लाई जाए जिससे शिक्षक अपने पारम्परिक विश्वास, मान्यताओं आदि पर पुनर्विचार कर सकें और अपने काम को समालोचनात्मक दृष्टि से देख पाएँ।

अंजना त्रिवेदी अपने लेख में संवैधानिक मूल्यों से जुड़ी अवधारणाओं के शिक्षण की चर्चा करती हैं। वे बताती हैं कि संवैधानिक मूल्यों और सत्ता-केन्द्रित व्यवहार को बताने के लिए अवधारणाओं को सिलसिलेवार ढंग से बताया और समझाया जाना ज़रूरी है। लेखिका यह भी कहती हैं कि विद्यार्थी अपने आसपास सभी तरह की घटनाएँ होते हुए देखते हैं और उनके बारे में जानना-समझना चाहते हैं। इसलिए सीखने-सिखाने के दौरान उनके जीवन्त अनुभवों व प्रारम्भिक अवधारणाओं से बातचीत की शुरुआत करनी चाहिए।

अभय कुमार दुबे का लेख *मैकॉले बनाम भारतीय ज्ञान-प्रणालियाँ और शिक्षा-व्यवस्था* का पहला और दूसरा भाग आप पत्रिका के चौथे और पाँचवें अंक में पढ़ चुके होंगे। इस अंक में प्रकाशित तीसरे हिस्से में छनन सिद्धान्त का अर्थ निरूपण किया गया है। छनन का मतलब क्या है; इसकी क्या जटिलताएँ रही हैं; देशी भाषा में दी जाने वाली शिक्षा पर इसका क्या असर पड़ा; इससे मिशनरियों द्वारा चलाए जाने वाले स्कूल कैसे प्रभावित हुए? आदि को प्रमाणों के साथ रखा गया है।

मुरारी झा अपने शोध-आधारित लेख *'कॉपी वर्क' की संस्कृति और बच्चों का भाषा व्यवहार* में चर्चा करते हैं कि नक़ल करके उतार लेने की संस्कृति कैसे विद्यार्थियों के लिखना सीखने में बाधा बनती है। लेखक बच्चों को लिखना सिखाने के कुछ तरीक़ों का भी ज़िक्र करते हैं।

कहानी ***देहलीज़*** कालू राम शर्मा ने लिखी है। यह कहानी हाशियाकृत समाज में बचपन की स्थिति और उनके जीवन में शिक्षा के मायने को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। हम चाहते हैं कि शिक्षा के मुद्दों पर पाठकगण कुछ और कहानियाँ लिखकर भेजें।

अगला लेख ***बड़ों की दुनिया में बच्चे बनाम 'मेरे दोस्त का घर'*** एक फ़िल्म चर्चा है और इसकी लेखिका हैं निशा नाग। ईरानी फ़िल्मकार है अब्बास कियारोस्तमी द्वारा निर्देशित फ़िल्म ***'खानेह दोस्त कोजास्त'*** यानी ***'मेरे दोस्त का घर'***। लेखिका कहती हैं यह फ़िल्म बड़ों की दुनिया में बच्चों के जीवन को दिखाती है और बच्चों की अच्छाइयों में विश्वास करना सिखाती है।

शिक्षा और सन्दर्भ के लेखक यशवेन्द्र अपने लेख में दो अलग-अलग पृष्ठभूमि से आए बच्चों की केस स्टडी प्रस्तुत करते हैं। अपने इस अध्ययन के सन्दर्भ में वे दो अलग तरह के विद्यालयों के शिक्षा सन्दर्भों की व्याख्या करते हुए स्थापित करने की कोशिश करते हैं कि अच्छी स्कूली सुविधाओं से सही मायने में अच्छी शिक्षा नहीं होती है। बेहतर शिक्षा के लिए उसे संवैधानिक उद्देश्यों के साथ जोड़कर देखना ज़रूरी है।

फ़ैयाज़ का लेख तालाबन्दी से बने हालात में दिल्ली के स्कूलों में ऑनलाइन शिक्षण के प्रयासों के बारे में है। राज्य शासन, स्वयंसेवी संस्थाओं और अभिभावकों की मिली-जुली कोशिशों व सहयोग से किस तरह घरों में बच्चों तक शिक्षा की पहुँच बनाई गई, आलेख इसका ब्योरा प्रस्तुत करता है।

इस बार का साक्षात्कार ग्रामीण शाला के शिक्षक रामेश्वर लोधी से हिमांशु खोले ने किया है। शिक्षक ने अपने शिक्षक बनने की यात्रा, शिक्षा में किए कुछ उल्लेखनीय कार्यों व तालाबन्दी के दौरान अपने गाँव में मोहल्ला पुस्तकालय खोलकर उनके माध्यम से बच्चों की सुरक्षित शिक्षा को निरन्तर रखने के प्रयासों व इनमें आई मुश्किलों के बारे विस्तार से बताया है।

पाठशाला के पाँचवें अंक से हमने इसके स्वरूप में कुछ बदलाव करने शुरू किए हैं, ये बदलाव आपको इस अंक में भी दिखाई देंगे। किए जा रहे बदलाव, पत्रिका को फ़ील्ड के साथियों व शिक्षकों के कार्यों से जुड़ाव बनाने की पहल का हिस्सा हैं जो पाठकों के फ़ीडबैक के अनुसार आगे भी जारी रहेंगे। हम चाहते हैं कि फ़ील्ड में कार्य करने वाले फ़ाउण्डेशन के ज़्यादा-से-ज़्यादा साथी और शिक्षक अपने अनुभवपरक आलेख पत्रिका के लिए ज़रूर भेजें।

अगले यानी सातवें अंक से पत्रिका में ***'पाठक चश्मा'*** कॉलम शुरू कर रहे हैं जिसमें पत्रिका के कुछ लेखों के बारे में पाठकों की लम्बी समालोचनात्मक टिप्पणियाँ छापी जाएँगी। अनुरोध है इस कॉलम के लिए आप ज़रूर लिखें।

35 वर्ष बाद देश की बहुप्रतीक्षित नई शिक्षा नीति हम सबके सामने है। शिक्षा जगत में इसपर निरन्तर विमर्श जारी है। इस नई नीति के हम सबके लिए क्या निहितार्थ हैं; हमारे पाठक इसके विविध प्रावधानों को कैसे देखते हैं; के बारे में अपने विचार, आलेख के रूप में भेजने का आग्रह है।

आपके अनुभवशील आलेख और पत्रिका के इस अंक पर आपकी प्रतिक्रिया का हमें इन्तज़ार रहेगा।

सम्पादक मण्डल

शिक्षक प्रशिक्षण–कुछ अनुभव

कमलेश चंद्र जोशी

शिक्षा के नीति दस्तावेज़ सुझाते हैं कि शिक्षा की कोई भी व्यवस्था अपने अध्यापकों की श्रेष्ठता से ऊपर नहीं उठ सकती है। अध्यापकों की श्रेष्ठता कई बातों पर निर्भर करती है, उनमें से एक है उनकी पेशेवर तैयारी के लिए आयोजित की जाने वाली प्रशिक्षण प्रक्रिया। लेकिन शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता और प्रासंगिकता पर अकसर सवाल उठाए जाते रहे हैं। यह उम्मीद की जाती रही है कि शिक्षकों की शिक्षा को अकादमिक जीवन की मुख्यधारा से जोड़ा जाना चाहिए। इसी सन्दर्भ में अपेक्षा की जाती है कि प्रशिक्षण के ज़रिए शिक्षक विचारशील शिक्षक या रिफ़्लेक्टिव प्रैक्टिशनर के रूप में विकसित हो, यानी अपने नज़रिए को एक सुविचारित शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्त कर पाए और अपने शिक्षण कार्य को समालोचनात्मक तरीक़े से देख पाए। लेखक ने इस लेख में शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के कुछ ऐसे ही अनुभवों का ब्योरा दिया है। सं.

शिक्षकों के पेशेवर विकास को लेकर वर्तमान समय में काफ़ी सोच-विचार किया जा रहा है। इसी सन्दर्भ में 'रिफ़्लेक्टिव प्रैक्टिशनर' या 'विचारशील शिक्षक' की शब्दावली चर्चा के दौरान सुनने को मिलती है। मोटेतौर पर इस पद से इंगित होता है कि एक शिक्षक अपने शिक्षण नज़रिए को एक सुविचारित शैक्षिक परिप्रेक्ष्य से व्यक्त कर पाए और अपने शिक्षण कार्य को समालोचनात्मक तरीक़े से देख पाए। शैक्षिक नज़रिए में बच्चों को सन्दर्भ में समझना, बच्चों के सीखने को समझना, विषय को समझना, संवैधानिक मूल्यों को समझना आदि बातें शामिल हैं। इसके साथ ही सिद्धान्त व अभ्यास के जुड़ाव को समझने की बात भी आती है। इसमें एक शिक्षक से आगे यह अपेक्षा रहती है कि उसे यह भी पता हो कि शिक्षा का व्यवहारवादी नज़रिया क्या है? इसके मायने क्या हैं? सीखने का रचनावादी नज़रिया क्या है? इसका मतलब क्या है? उसके अन्तर्गत कक्षा की प्रक्रियाएँ किस तरह की होनी चाहिए? और क्यों होनी चाहिए? शिक्षकों में इस तरह के नज़रिए विकसित करने के लिए सतत कार्य करना पड़ता है। शैक्षिक नज़रिए से काम करने के तरीक़े का विकास धीरे-धीरे होता है। इसमें शिक्षक प्रशिक्षण, स्कूल अनुसमर्थन व स्व-अध्ययन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

देशभर में शिक्षकों के लिए सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण की शुरुआत 1986 की नई शिक्षा नीति के उपरान्त ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड से मानी जा सकती है जिसमें सभी शिक्षकों के लिए सेवारत प्रशिक्षण आयोजित किया गया था। हालाँकि इन प्रशिक्षणों के आयोजन की गुणवत्ता पर भी बात होती रही। शिक्षकों के इन प्रशिक्षणों से नई शब्दावली उभरकर आई– बाल-केन्द्रित शिक्षा, गतिविधि-आधारित शिक्षण, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, टीएलएम आदि। कुछ वर्षों के बाद ये प्रशिक्षण चलताऊ लगे, लेकिन यह ज़रूर रहा कि ये प्रशिक्षण शिक्षकों के पेशेवर विकास के विमर्श का हिस्सा ज़रूर बने।

शिक्षकों के पेशेवर विकास के लिए ज़रूरी है कि उन्हें शैक्षिक व्यवस्था में, सतत रूप से क्षमतावर्धन के मौक़े उपलब्ध करवाए जाएँ,

उनके प्रशिक्षण उद्देश्यपूर्ण हों और उन्हें सुनियोजित ढंग से आयोजित किया जाए। इसके साथ ही उन्हें पुस्तकालय व इंटरनेट की सुविधा भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए। ज़रूरी है कि हम शिक्षकों को इस तरह के नियमित अवसर प्रदान करें जिसके अन्तर्गत वे अपने पारम्परिक विश्वास, मान्यताओं आदि पर पुनर्विचार कर सकें। इसके लिए शिक्षक प्रशिक्षण में उनके साथ अनौपचारिक वार्तालाप आदि गतिविधियाँ अच्छी रहती हैं, बशर्ते वे सोच-विचार के साथ आयोजित की जाएँ। इन चर्चाओं के लिए कक्षा की प्रक्रियाओं के वृत्तान्त, बच्चों के अवलोकन, किताबों के अंश आदि पर चर्चा अच्छी गतिविधियाँ हो सकती हैं। इस आलेख में ऐसे ही कुछ अनुभवों और गतिविधियों को साझा किया जा रहा है जिनसे प्रशिक्षण की गुणवत्ता और प्रतिभागियों की सक्रियता बढ़ाने में मदद मिली।

अशोक की कहानी, नामांकन और पढ़ने के तौर-तरीक़े

एक कार्यशाला में शिक्षकों के साथ कृष्ण कुमार द्वारा लिखित 'अशोक की कहानी' लेख पर चर्चा की गई। इस कहानी में बच्चों के स्कूल छोड़ने के कई कारणों में एक प्रमुख कारण– बच्चों के पढ़ना न सीख पाने– को बहुत शिद्दत के साथ उभारा गया है। इस कहानी को पढ़कर शिक्षकों ने अपनी-अपनी समझ से प्रतिक्रिया दी। उनका कहना था कि बच्चे के घर पर ध्यान दिया जाता तो वह बच्चा ज़रूर पढ़ना सीख जाता। किसी ने कहा कि एक शिक्षिका को उसके साथ और तरीक़े से काम करना चाहिए था। किसी भी शिक्षक की बातचीत में यह नहीं उभरा कि हमें पढ़ना सिखाने के अपने तरीक़ों पर फिर से विचार करना चाहिए, न ही किसी ने यह कहा कि पढ़ना न सीख पाने से बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं। अधिकतर शिक्षकों को ग़रीबी ही इसका मुख्य कारण समझ में आया। इस ओर हमें ही उनका ध्यान आकर्षित करना पड़ा और उनके स्कूल के पुराने अनुभवों को याद दिलाना पड़ा। हमने कहा कि आप अपने बचपन को याद करें और देखें कि जो बच्चे आपके साथ पहली कक्षा में थे, आगे चलकर उनमें से कितने बच्चे उच्च शिक्षा तक पहुँच पाए? तो पता चलेगा कि यह प्रतिशत बहुत कम होगा। इसको आप भी अपने अनुभव से जोड़ सकते हो कि आपके जो साथी पहली कक्षा में आपके साथ पढ़ते थे क्या उन्होंने उच्च शिक्षा पूरी की? उनमें से बहुत-से बच्चे आठवीं, दसवीं या बारहवीं के बाद ही स्कूल से बाहर हो गए होंगे और उसमें अधिकतर ग़रीब पिछड़ी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चे होंगे। इसमें अधिकतर लड़कियाँ भी शामिल रही होंगी। यह चलन हम अभी भी देख सकते हैं।

सर्व शिक्षा अभियान के तहत स्कूलों में नामांकन तो बढ़ा है, पर बहुत-से बच्चे पढ़ने के बुनियादी कौशल ही हासिल नहीं कर पा रहे हैं और उन्हें आगे की कक्षाओं की विभिन्न अवधारणाओं को समझने में बहुत कठिनाई होती है। इसके फलस्वरूप वे पिछड़कर स्कूल से बाहर हो जाते हैं। इन सबपर सोचने के लिए शिक्षकों को चर्चा के लिए उकसाना पड़ता है तब ही कुछ बातें उनकी पकड़ में आती हैं। इसके बाद आगे के सत्र में पढ़ने और पढ़ना सिखाने के तरीक़ों पर अच्छी चर्चा होती है। इस चर्चा में फ्रेंक स्मिथ द्वारा लिखित व सुशील जोशी द्वारा अनूदित एक पेज का नोट 'पढ़ना मुश्किल बनाने के बारह आसान तरीक़े' भी अच्छी भूमिका निभाता है। इसी तरह रमाकांत अग्निहोत्री का अँग्रेज़ी से अनुवाद किया हुआ लेख 'पढ़ना किसे कहते हैं?' वह भी शिक्षकों के साथ चर्चा के लिए अच्छी भूमिका बनाता है जिसमें बच्चों को पढ़ने के नियमित अभ्यास, अर्थ निर्माण और बच्चों को पाठक बनाने की बात की गई है। इससे यह बात हो पाती है कि जब हम पढ़ने को अर्थ निर्माण की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं तो केवल वर्ण पहचान से काम नहीं चलता जैसे कि 'अशोक की कहानी' में शिक्षिका प्रयास कर रही थी। तब यह समझना होगा कि जब बच्चों के शिक्षण में अर्थ निर्माण

केन्द्र में होगा तो बच्चों के लिए सन्दर्भ महत्त्वपूर्ण होगा और सन्दर्भ बनाने के लिए बच्चों के साथ चित्र, कहानी, कविता के साथ शुरुआत करनी होगी जिसमें बच्चों को अर्थ बनाने का मौक़ा मिले। इसी पर आगे बातचीत करते हुए वर्ण और मात्रा पहचान का काम भी करवा सकते हैं। इसके साथ ही कक्षा की प्रक्रियाओं में और कार्य करने होंगे, जिसमें चाहे बच्चों के मौखिक भाषा विकास की बात हो, बच्चों के घर की भाषा को जगह देने की बात हो, भाषा समृद्ध माहौल की बात हो या बच्चों को पढ़ने के मौक़े देने की बात हो, इन बातों पर ध्यान देना होगा तभी हम बच्चों के साथ पढ़ना-लिखना सिखाने के उद्देश्यों पर सही दृष्टिकोण के साथ कार्य कर पाएँगे। इन सब मुद्दों पर हमें निरन्तर समझ बनाने का प्रयास करना होगा, और यह समझ केवल एक कार्यशाला से नहीं बन जाएगी। इन सबके साथ हमें बच्चों की पृष्ठभूमि, उनका सन्दर्भ, उनके सीखने का तरीक़ा भी समझना पड़ता है, और उनके लिए योजना बनानी पड़ती है, तब हम बच्चों के साथ सही से शिक्षण कार्य कर पाते हैं। इसके लिए निरन्तर सोच-विचार ज़रूरी है जो कि 'अशोक की कहानी' की शिक्षिका नहीं कर पा रही थी।

पाठ और पाठ्यपुस्तकें

शिक्षकों के साथ एक कार्यशाला में एनसीईआरटी द्वारा विकसित भाषा की पाठ्यपुस्तक श्रृंखला *रिमझिम* पर भी बात की गई। समूह बनाकर शिक्षकों को कुछ पाठ दिए गए। उनके साथ पाठ के नज़रिए व उद्देश्यों को समझने की दृष्टि से बात की गई। शिक्षकों के साथ बात करते हुए समझ में आया कि उनका कहानियों/कविताओं को देखने का नज़रिया परम्परागत व सीमित है। वे पाठ्यपुस्तकों में शामिल रचनाओं को उपदेशमूलक नज़रिए से देख पाते हैं। इससे यह महसूस होता रहा

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया
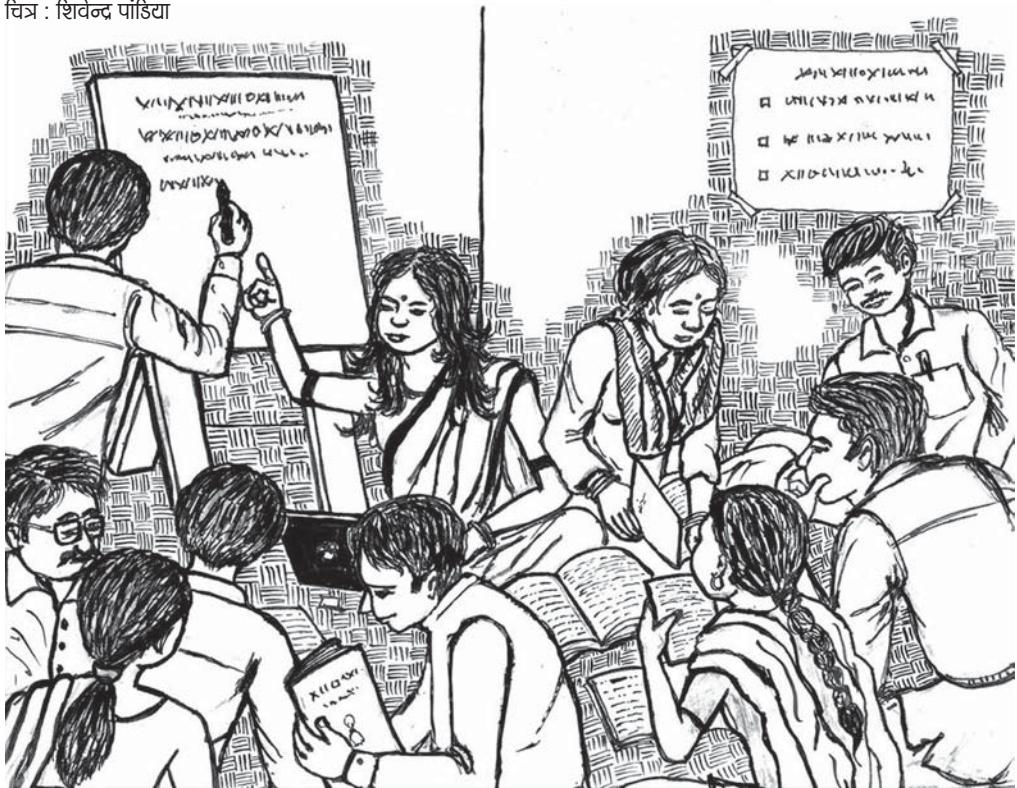
है कि उन्हें विभिन्न तरह की रचनाओं का नियमित रूप से एक्सपोजर दिया जाए। इसकी पृष्ठभूमि में समझ यह है जब उन्हें ख़ुद पढ़ने में अच्छा लगेगा और वे पढ़े हुए को महसूस कर पाएँगे, तब वे बच्चों को समझ के साथ पढ़ा भी पाएँगे। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए कार्यशाला में एक सत्र आयोजित किया गया। उसमें उन्हें चार समूह बनाकर पाठ्यपुस्तक के इतर बाल कविताएँ-कहानियाँ पढ़ने को दी गईं और उनसे कहा गया वे इन्हें व्यक्तिगत रूप से पढ़ें और समूह में चर्चा करें कि उन्हें पढ़कर कैसा लगा? रचनाओं में क्या बात अच्छी लगी? क्यों अच्छी लग रही है? आदि। शिक्षकों से विभिन्न रचनाओं के माध्यम से कविता की भाषा, विषयवस्तु आदि पर बात हुई और यह स्पष्ट करने की कोशिश की गई कि वे चर्चा में यह ग़ौर कर सकते हैं कि रचनाओं में क्या बात कही जा रही है? और कैसे कही जा रही है? इस सत्र का समेकन इस बात से किया गया कि जब रचनाओं पर हमारी अच्छी पकड़ होगी तभी हम बच्चों को अच्छे-से पढ़ा पाएँगे।

इस क्रम में कक्षा चार की पाठ्यपुस्तक से एक पाठ 'पापा जब बच्चे थे' बड़े समूह में पढ़ा गया। इसमें कहानी के शुरू में एक बच्चे की बाल सुलभ सोच को दर्शाया गया है, जिसमें वह चौकीदार, आइसक्रीम वाला, कुत्ता आदि बनना चाहता है और कहानी हास्य पैदा करती है, लेकिन कहानी अन्त में एक अच्छा इंसान बनने के बारे में गम्भीर सवाल छोड़ जाती है। इस पाठ पर शिक्षकों ने शुरुआत में बच्चे की बाल सुलभ कल्पनाओं की बात तो बताई और कहा कि इसको लेकर हम बच्चों से बात कर सकते हैं कि तुम्हारा क्या-क्या बनने का मन करता है? एक शिक्षिका कहने लगीं कि बच्चे क्या बनना चाहते हैं इसके लिए शिक्षक और उनके माता-पिता को उनका मार्गदर्शन करना चाहिए।

इस पाठ में बातचीत में आगे यह किया जा सकता है कि हम बच्चों से पूछें कि बचपन में उनके माता-पिता क्या बनना चाहते थे? यह बच्चे अपने घर से पूछकर आ सकते हैं और फिर उनकी सोच और उनके माता-पिता की सोच में एक अन्तर भी उन्हें दिखाया जा सकता
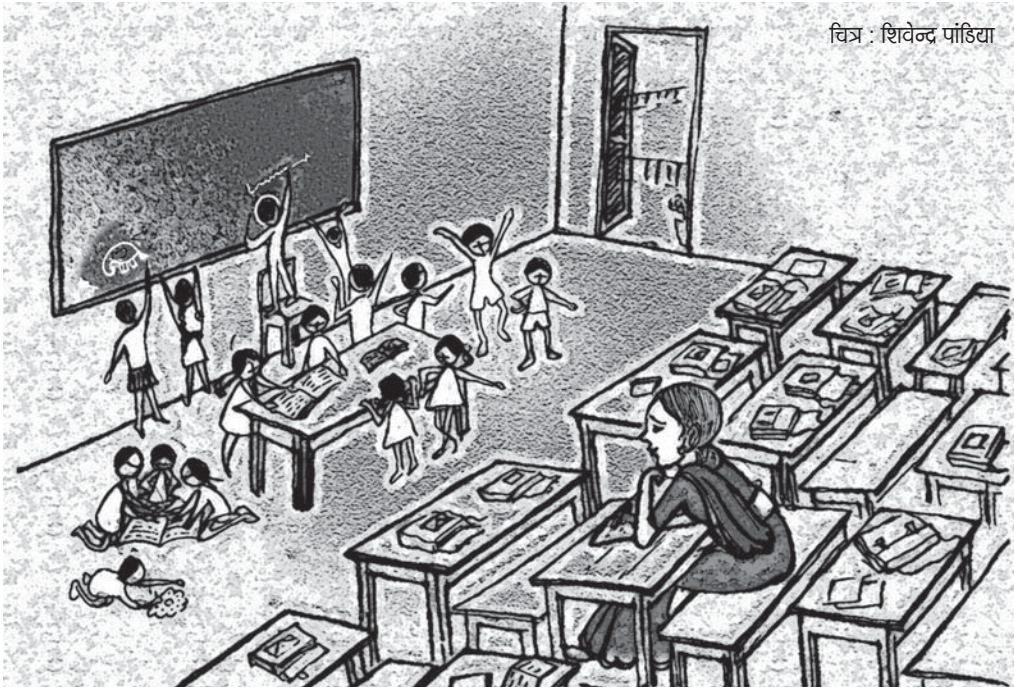
चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

है। इस चर्चा में कहानी के अन्त में आए सवाल पर वे बहुत गम्भीरता नहीं दिखा पाए कि अच्छा इंसान कौन होता है? इस सवाल पर बच्चों से अच्छे-से चर्चा की जा सकती है।

बच्चों से यह बात हो सकती है कि तुम्हारे परिवार में या तुम्हारे आसपास अच्छा इंसान कौन है? कैसे है? इस तरह बच्चों के अनुभवों पर उनसे अच्छी चर्चा की जा सकती है? आगे उनसे हुई बातचीत में कहानी की संरचना के बारे में भी बताया गया कि कैसे कहानी शुरू में हास्य पैदा कर रही थी और बाद में उसने एक गम्भीर सवाल पर लाकर खड़ा कर दिया। इस प्रकार हमें पाठ और उसके नज़रिए को समझने की आवश्यकता है, तभी हम पाठ के उद्देश्य तय कर पाएँगे और कक्षा में एक योजना के तहत कार्य कर पाएँगे। इसी तरह एक कार्यशाला में कक्षा तीन के एक पाठ 'चाँद वाली अम्मा' पर सार्थक चर्चा हुई। इसमें एक शिक्षक ने कहा कि इस पाठ में बच्चों के लिए कुछ नहीं है– बादल बुढ़िया को चिढ़ाता है। इसमें कोई कहानी नहीं है न ही बच्चों को कोई सन्देश मिलता है।

इसपर शिक्षकों के साथ काफ़ी चर्चा करनी पड़ी कि हर पाठ में कोई-न-कोई सीधा सन्देश हो, यह ज़रूरी नहीं है, और इस तरह से कहानी-कविताओं को देखना भी नहीं चाहिए। यह पाठ कल्पनाशीलता लिए हुए है जिसमें बादल बच्चों को चिढ़ा रहा होता है। बच्चों को कहीं अपनी लोककथाओं से पता होता है कि चाँद पर एक बुढ़िया है। अगर नहीं भी पता हो तो उसे पढ़वाया जा सकता है और दोनों पाठ की तुलना हो सकती है। इस कहानी में बच्चों के लिए ऐसा ही काल्पनिक जुड़ाव बनाने की कोशिश की गई। इस प्रकार हम इस कहानी को देख सकते हैं और बच्चों के साथ कहानी पर चर्चा कर सकते हैं।

पढ़कर समझने के रण में नीतियाँ

मुझे हाल ही में सम्पन्न एक कार्यशाला का अनुभव याद आ रहा है। उस सत्र में हमें बच्चों के 'पढ़कर समझना सिखाने में शिक्षक की भूमिका' विषय पर बात करनी थी। उसके लिए हमने कुछ प्राथमिक कक्षाओं के अवलोकनों का समूह बनाकर इस्तेमाल किया। उस समूह कार्य के उपरान्त प्रतिभागियों से यह बात उभरी कि कक्षा में शिक्षक का पढ़ना सिखाने का नज़रिया क्या है? और वह कक्षा में क्या कर रहा है? उसका ध्यान सही उच्चारण, सन्दर्भरहित शब्दों के दोहराव, पाठ के प्रश्नोत्तर लिखवाने तक सीमित है। फिर प्रत्येक समूह को प्राथमिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों से कुछ पाठ पढ़ने को दिए और कहा कि इन पाठों को पढ़कर यह देखें कि इसमें बच्चों को पढ़कर समझने के लिए आप क्या रणनीतियाँ अपनाएँगे। इन पाठों में कहानी, जानकारीपरक पाठ, निबन्ध, जीवनी, यात्रा वर्णन आदि शामिल थे। ज़ाहिर है पढ़कर समझने में भी कई चीज़ें शामिल होती हैं, जिसमें कहानी को अपने अनुभव से जोड़ना, भाषाई सौन्दर्यबोध, अवधारणाओं को समझना, अपने परिवेश के प्रति जागरूकता, सामाजिक संवेदनशीलता आदि बातें शामिल थीं। इस अभ्यास से यह बात समझ में आई कि पढ़कर समझने के लिए बहुत-सी रणनीतियाँ बनानी पड़ती है, जैसे– अगर पाठ में कोई अवधारणाएँ आ जाएँ तो उन्हें स्पष्ट करना पड़ता है और विज्ञान व सामाजिक अध्ययन के पाठों में ऐसा ख़ूब होता है।

इसी तरह जब पाठ को पूर्व अनुभवों से जोड़ने की बात होती है तो कुछ पाठ ऐसे होते हैं जो उन्हें फ़र्क़ नज़रिया देते हैं। उसका उन्हें एहसास कराना पड़ता है। किसी पाठ में कुछ स्थानों या देशों के नाम आ जाते हैं तो हम नक़्शे का प्रयोग भी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, पाँचवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तकों में 'फसलों का त्योहार' नामक पाठ है। यह पाठ है तो भाषा की पाठ्यपुस्तक में, लेकिन इस पाठ के मुद्दे पर्यावरण अध्ययन से भी जुड़ते हैं जिसमें हम विभिन्न राज्यों को नक़्शे पर परिचित कराते हुए इन त्योहारों की बात कर सकते हैं और भारत की विविधता की बात कर सकते हैं। आगे इसे बच्चों के अपने परिवेश से जोड़ सकते हैं। यहाँ

शिक्षक को अलग तरह की योजना बनानी होगी। ऐसे ही हम अगर बच्चों के साथ तीसरी कक्षा के पाठ 'मीरा बहन और बाघ' पर कार्य कर रहे हैं तो वहाँ बच्चों को मीरा बहन, गाँधीजी और पहाड़ों के सन्दर्भ में बच्चों के साथ चर्चा करना होगी तभी इस पाठ से बच्चे जुड़ पाएँगे। 'नन्हा फनकार' पाठ को पढ़ाते हुए हमें बच्चों के सामने अकबर और उसके समय के बारे में थोड़ा बताना होगा, तब बच्चे पाठ से जुड़ पाएँगे। इसी तरह 'स्वतंत्रता की ओर' पाठ पढ़ाने के लिए भी गाँधीजी और साबरमती आश्रम का सन्दर्भ बच्चों के साथ रखना होगा। यहाँ कहने का अर्थ है कि कक्षा में बच्चों के साथ कार्य करते हुए पहले स्वयं पाठ को समझना पड़ता है, उसकी बातों को पकड़ना होता है और फिर बच्चों के लिए योजना बनानी पड़ती है।

बाल पुस्तकें : समझ कैसी–कैसी ?

कार्यशाला के दौरान शिक्षकों के साथ बच्चों के पढ़ने और पुस्तकालय के सत्र भी आयोजित होते रहते हैं। एक कार्यशाला में शिक्षक अपने विद्यालय के बच्चों के साथ पुस्तकालय संचालन का अनुभव साझा कर रहे थे। पुस्तकालय से बच्चे काफ़ी किताबें पढ़ते हैं। उनसे यह चर्चा की गई कि आप इतने वर्षों से बच्चों के साथ काम कर रहे हैं तो यह बताएँ कि बच्चों को कौन-सी किताबें बहुत अच्छी लगीं? और इसके क्या कारण रहे होंगे? इसपर शिक्षकों ने कई किताबों के साथ *मिठाई, बुढ़िया की रोटी* व *हाथी की हिचकी* आदि किताबों के नाम लिए। फिर आगे यह कहा गया कि इन तीन किताबों को हम थोड़ा अच्छे-से समझने का प्रयास करते हैं। इसके लिए हम किताबों की विषयवस्तु, इसके चित्र, इसकी भाषा, मूल्य आदि को देखने का प्रयास करेंगे। इसपर शिक्षकों के साथ अच्छे-से चर्चा की गई। इसमें शिक्षकों से बातचीत में यह बात उभरकर आई कि ये किताबें बच्चों के आसपास के परिवेश से जुड़ी हुई हैं, इनमें पशु-पक्षी हैं, बाल मन की बात है, चित्र भी अच्छे हैं आदि। इस सत्र के समेकन में यह बात हुई कि इन तीनों किताबों पर जो आपने बात कही वह ठीक है। इन तीनों किताबों में सबसे ख़ास बात यह है कि इनमें एक क्रमबद्धता है जो बच्चों को कहानी का अनुमान लगाने व पैटर्न पकड़ने में मदद करती है। *मिठाई* में तो दोस्ती की बात भी है और उससे वे बहुत जल्दी जुड़ाव भी बना लेते हैं। इस किताब को छोटे बच्चे बार-बार पढ़ना चाहते हैं। चित्रों को देखकर अनुमान भी लगाते हैं। इसी तरह *हाथी की हिचकी* में हम देखते हैं उसमें भी दोस्ती की बात है। सभी हाथी की हिचकी को दूर करने का उपाय बताते हैं और वे अपने परिवेश का अनुभव भी करते हैं और उसमें बाल सुलभ कल्पना भी है, और अन्त में सबसे छोटा जीव चूहा हाथी की हिचकी को ठीक करता है।

यहाँ बच्चों का अच्छा जुड़ाव बनता है। इसकी ख़ास बात यह भी है कि एक कहानी पूरी होने के बाद इसमें एक नई कहानी भी शुरू होती जो बच्चों को ही बनानी होती, जब हाथी को छींक आना शुरू होती है। इस तरह से हम देखते हैं बच्चों की किताब इस तरह की हो सकती है। इस तरह के पैटर्न से बच्चों को किताब पढ़ने में मदद मिलती है। *बुढ़िया की*

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

रोटी में एक पैटर्न है जिससे बच्चे अच्छा जुड़ाव बनाते हैं। यह किताब एक लोककथा के फ़ॉर्मेट में है। इसे भी बच्चे ख़ूब पसन्द करते हैं। इसके चित्र भी बहुत जीवन्त हैं, उनसे बच्चों का अच्छा जुड़ाव बनता है। हम इस तरह से आगे भी बच्चों की किताबों को देख सकते हैं। उनमें क्या ख़ूबियाँ होती हैं, इन्हें हमें पहचानना सीखना चाहिए। इसके लिए किताबें पढ़ना ज़रूरी है और फिर इन्हें बच्चों के साथ उपयोग करना भी ज़रूरी है। इसके लिए भी एक योजना की ज़रूरत होती है और जब हम किताबें अच्छी तरह से पढ़ेंगे तो योजना भी सही तरीक़े से बना पाएँगे। किताबों पर योजना के अन्तर्गत प्रश्न ऐसे होने चाहिए जो कहानी का जुड़ाव उनसे बनाते हों और उन्हें सोचने का मौक़ा देते हों। बच्चों से बातचीत में तथ्यात्मक प्रश्न उन्हें सोचने में बहुत मदद नहीं करते। अच्छे प्रश्न बनाना भी अभ्यास से ही आता है।

मेरे अनुभव : मेरी समझ

इस तरह से विभिन्न सेवारत शिक्षक-प्रशिक्षणों में चर्चा के दौरान विविध तरह के अनुभव मिलते रहते हैं, जो शिक्षकों के साथ सन्दर्भ व्यक्ति को भी सोच-विचार करने में मदद करते हैं। इससे आगे की कार्यशालाओं की विषयवस्तु तय करने में मदद मिलती है। इसके साथ ही कार्यशाला को अन्तर्क्रियात्मक बनाने के लिए एक सन्दर्भ व्यक्ति के लिए ज़रूरी होता है कि वह कैसे किसी प्रशिक्षण / कार्यशाला का ख़ाका बनाए, उसमें किस तरह के सवाल / गतिविधि रखे, जो शिक्षकों को अपने पूर्व ज्ञान पर विचार करने का मौक़ा दें। इस कार्य में सन्दर्भ व्यक्ति के फ़ील्ड के अनुभव योजना बनाने में बहुत मदद करते हैं। इसके साथ ही शिक्षकों के लिए सहज पाठ्य सामग्री के बारे में भी सोचना पड़ता है। कभी-कभी इसे तैयार भी करना पड़ता है। इन बातों से ही किसी प्रशिक्षण / कार्यशाला की गुणवत्ता बढ़ती है। एक सन्दर्भ व्यक्ति को यह भी सोचना चाहिए कि किसी एक प्रशिक्षण से ही सब समझ बन जाएगी, ऐसा नहीं होता। यह ज़रूर हो सकता है कि कार्यशाला में भाग लेने पर समझ बनने के कुछ विचार पड़ जाएँ और आगे यह सिलसिला शुरू हो। इसका प्रयास सन्दर्भ व्यक्ति को करना चाहिए। शिक्षकों के साथ काम करते हुए यह महसूस होता है कि किसी विषय पर समझ बनाने के लिए उनके साथ सतत संवाद की ज़रूरत पड़ती है और बहुत बार फ़ील्ड की परिस्थितियों में ऐसा हो भी नहीं पाता। इसके कई कारण शैक्षिक व्यवस्था में ढूँढ़े जा सकते हैं और उनके हल के लिए भी प्रयास किए जा सकते हैं। शिक्षकों के साथ लम्बे समय तक काम करने के अनुभव में यह बात समझ में आती है कि शिक्षकों को एक चिन्तनशील शिक्षक के रूप में विकसित करना एक दूरगामी लक्ष्य है। इसमें प्रशिक्षण की गुणवत्ता पर तो ध्यान देना ही पड़ेगा और केवल इससे ही बात भी नहीं बनेगी। इसके लिए सतत संवाद के साथ व विद्यालय स्तर पर अनुसमर्थन की भी आवश्यकता पड़ती है। इसमें दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह लगती है कि इसमें शैक्षिक व्यवस्था को भी उनके लिए सीखने का सहज माहौल और सहयोग प्रदान करने की ज़रूरत पड़ती है। इस दिशा में बहुत काम करने की आवश्यकता महसूस होती है जो कि हो नहीं पाता। शिक्षकों के बीच आपसी चर्चाओं में अभी कहीं गतिविधि, टीएलएम, शैक्षिक तकनीकी आदि का भी काफ़ी आदान-प्रदान होता रहता है और यह लगता है कि इन सबसे ही कक्षा की प्रक्रियाओं में सुधार हो जाएगा। और यह कि ये कोई नुस्ख़ा है। यहाँ यह बात ग़ौर करने लायक़ लगती है कि एक शिक्षक को इन तात्कालिक बातों से उबरकर शिक्षा के मूलभूत सवालों पर गहराई से विचार करना होगा तभी वह असल में विचारशील शिक्षक के रूप में विकसित हो सकेगा।

कमलेश चंद्र जोशी प्राथमिक शिक्षा से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। प्राथमिक शिक्षा से जुड़े विभिन्न विषयों– शिक्षक शिक्षा, बाल साहित्य, प्रारम्भिक भाषा एवं साक्षरता आदि में गहरी रुचि। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर में कार्यरत।
सम्पर्क : kamlesh@azimpremjifoundation.org

सामाजिक विज्ञान शिक्षण

अवधारणा और जीवन के बीच सेतु

अंजना त्रिवेदी

कक्षा की योजना के बाद बच्चों के साथ संवाद के अनुसार उसमें बदलाव और तैयारी करना और शिक्षण के उद्देश्य को बार-बार टटोलना मननशील शिक्षण की पहचान है। एक मननशील शिक्षक अपने कक्षा शिक्षण को समालोचनात्मक दृष्टि से देखता है और उसपर चिन्तन करता है। उसकी सीमाओं को पहचानता है। प्रस्तुत आलेख इसी चिन्तन पर आधारित है। टीचर एजुकेटर के रूप में लेखिका ने स्कूल में एक शिक्षिका को अध्यापन कार्य के दौरान मदद के लिए बच्चों को धर्म-निरपेक्षता की अवधारणा पढ़ाने की कोशिश की और चार दिन की इस पूरी प्रक्रिया का विश्लेषण किया है। सं.

मध्यप्रदेश में भोपाल ज़िले के सरकारी स्कूलों के साथ सघन काम करने के दौरान टीचर लर्निंग सेंटर में शैक्षिक विमर्श, कार्यशालाओं और विभिन्न प्रशिक्षणों के माध्यम से बने सम्पर्कों में एक शिक्षिका लगातार अपनी सामाजिक विज्ञान कक्षाओं से जुड़ी समस्याओं का ज़िक्र करती रही हैं। काफ़ी लम्बे समय से उनका आग्रह था कि, "आप जो कहती हैं कि संविधान में उल्लिखित मूल्यों को रुचिकर तरीक़े से और जीवन अनुभवों के साथ जोड़कर पढ़ाया जाना चाहिए तो एक बार आप आकर उन बच्चों को पढ़ाकर बताएँ। मुझे इससे मदद मिलेगी"। शिक्षिका ने यह भी कहा कि, "मेरे स्कूल के बच्चों में न तो मैं रुचि पैदा कर पा रही हूँ और न बच्चे मुझे सहयोग कर पा रहे हैं। आप आकर एक बार क्लास लें, ख़ासतौर से धर्म-निरपेक्षता को मैं किस प्रकार समझाऊँ, ये आप एक बार अवश्य बताएँ"।

मध्यप्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र द्वारा प्रकाशित आठवीं की सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में धर्म-निरपेक्षता की परिभाषा कुछ यूँ दी गई है– 'देश के सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता है। किसी धर्म के लिए राज्य पक्षपातपूर्ण कार्य नहीं करेगा और न ही हस्तक्षेप करेगा। सभी धर्म के नागरिकों को बिना भेदभाव के शासकीय सेवाओं में अवसर प्राप्त होंगे'। शिक्षिका का सवाल था कि दो लाइन की परिभाषा में दी गई धर्म-निरपेक्षता को आप एक क्लास में रुचिकर तरीक़े से कैसे समझा सकते हैं।

एनसीएफ़ 2005, इस दुविधा से उबरने के लिए हमें कुछ इशारे ज़रूर करता है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा* सामाजिक विज्ञान के जीवन्त शिक्षण की बात कहती है। इसमें दुकान, महिला, व्यापार, लेन-देन, हर नागरिक के लिए सुरक्षित और बेहतर जीवन की बात शामिल है, जिसमें विद्यार्थी और शिक्षक दोनों ही सजीव अभिकर्ता के रूप में सम्मिलित होंगे और वास्तविक जीवन अनुभवों से ही सीखने-सिखाने का व्यवहार होगा। सामाजिक विज्ञान के सन्दर्भ में और भी बहुत-सी बातें इन दस्तावेज़ों में कही गई हैं, लेकिन उनकी चर्चा बाद में की जा सकती है।

भोपाल से क़रीब 25 किलोमीटर दूर एक गाँव के उस माध्यमिक स्कूल में बच्चों से सामान्य बातचीत के साथ कक्षा शुरू हुई। यह स्कूल ग्रामीण इलाक़े में आता है, जहाँ आदिवासी और

मुस्लिम समुदाय के बच्चे हैं। ज़्यादातर बच्चों के पालक मज़दूरी की तलाश में आकर यहीं बस गए हैं। माध्यमिक स्कूल (कक्षा 6, 7 और 8) में कुल 109 बच्चे हैं। उस रोज़ कक्षा 7 और 8 के कुल 42 बच्चे मौजूद थे। इसमें एक-तिहाई संख्या लड़कियों की थी।

मैंने सीधे ही बच्चों से पूछा कि धर्म-निरपेक्षता क्या है? बच्चे इसका कोई भी उत्तर नहीं दे पाए क्योंकि पहले पढ़ा दिए गए 'हमारा संविधान' अध्याय के तहत धर्म-निरपेक्षता को बच्चे समझे ही नहीं थे। संविधान में धर्म-निरपेक्षता का यह मूल्य क्यों रखा गया है, इसका कारण बच्चों को स्पष्ट नहीं था। हालाँकि यह संविधान वाला अध्याय पढ़ा दिया था। संविधान के इस अध्याय में कई सारी परतें हैं जिन्हें खोले बग़ैर बात समझ में नहीं आती। 'हम भारत के लोग, लोकतांत्रिक गणराज्य, सरकार, बहुमत' जैसे मसलों को एक-एक कर खोलना, उनपर बच्चों के अनुभव और समझ से बात करना और फिर सैद्धान्तिक बातों को व्यावहारिक बातों व घटनाओं से जोड़कर दिखा पाना इसके लिए ज़रूरी होगा। मूर्तता से अमूर्तता और फिर अमूर्तता से मूर्तता की ओर जाने की ज़रूरत होगी। और इस सब काम में कम-से-कम 8 से 10 पीरियड का समय तो चाहिए ही। साथ-ही-साथ इसका मूल्यांकन भी करते चलना होगा कि बच्चे कितना और क्या-क्या समझ पाए, किन उदाहरणों और बातों से समझ पाए और वे इन बातों को आपस में कैसे जोड़कर देख पा रहे हैं।

मसला यह रहा कि यदि बच्चों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से नहीं जोड़ा जाए तो धर्म-निरपेक्षता के इस मूल्य को समझना किस प्रकार सम्भव हो पाएगा। मुझे भी बहुत चुनौतीपूर्ण लग रहा था कि यदि बच्चों से इसके आगे-पीछे की कभी कोई बात ही नहीं की जाए तो वह किसी एक बिन्दु पर ठहरकर कैसे समझ पाएँगे।

शिक्षिका के आग्रह पर अचानक शुरू की गई इस क्लास में जो विषय मुझे पहले पहल सरल लग रहा था उससे जूझते हुए चार दिन हर रोज़ एक-एक घण्टे का समय लगाया। पर कई बातें अधूरी छूट गईं। कई बातों का कोई सन्दर्भ ही नहीं बन पाया। कोई दावा भी नहीं कि बच्चे क्या और कितना सीख या समझ पाए। इतना समझ आया कि किताब और अवधारणाओं की परिभाषा के साथ ही बच्चों के जीवन अनुभव और आसपास इन अवधारणाओं के जीवन्त उदाहरण और चिह्न व प्रतीकों के सहारे ही बच्चों में आप इन बातों की समझ बना सकते हैं। यह लम्बे समय और तैयारी की माँग करता है। अपने चार दिन के अनुभव को मैं यहाँ इस आलेख में साझा कर रही हूँ। यह बहुत ही प्रारम्भिक और परिचयात्मक है। आगे के सुनियोजित काम को अगली कड़ियों के रूप में प्रकाशित किया जा सकेगा।

चूँकि मेरा उन बच्चों व उनकी दुनिया से ख़ास परिचय नहीं था, न उनसे दोस्ती या विश्वास का रिश्ता था तो मैंने कुछ अनौपचारिक बातचीत से अपनी बात शुरू की। मैंने बच्चों से ख़ूब सारी बातें पूछीं, जैसे कि आप कहाँ रहते हैं? घर और स्कूल के बीच कितनी दूरी है? घर में कौन-कौन है? आप बड़े होकर क्या बनना चाहते हैं? बच्चे ख़ूब अच्छे-से बात कर रहे थे। वह भोपाल शहर भी आए हैं, इस बात को वे उत्साह से बता रहे थे। बच्चों को अपने बारे में बताने में मज़ा भी आ रहा था और मुझे बच्चों को जानने-समझने का मौक़ा मिल रहा था। ये सब बातें कोई 15-20 मिनट तक चलीं। उसके बाद मैंने कहा, "चलो, हम सब समूह में काम करते हैं, इसमें सब अपनी बात रख सकते हैं और इसमें सबको बोलना है।"

लड़के / लड़कियों के पाँच समूह बनाए गए। सभी समूहों को दो सवाल दिए गए जिनके उत्तर उन्हें उनके समूह में बात कर तय करने थे। पहला प्रश्न था, संविधान क्या है? और दूसरा, संविधान की प्रस्तावना में किन मुख्य बातों का उल्लेख किया गया है? (उल्लेखनीय है कि मध्यप्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र की पाठ्यपुस्तक में संविधान की प्रस्तावना और उसकी विशेषताओं का उल्लेख किया गया है)। समूह में बातें शुरू हुईं। मैंने देखा

सभी बच्चे अपने समूह में दो बातें मुख्य रूप से कर रहे थे। पहली बात तो यह कि संविधान नियम और क़ानून का पुलिन्दा है (सभी का एक जैसा उत्तर था)। दूसरा, वे 'हम भारत के लोग', 'गणराज्य' और 'लोकतंत्र' जैसे शब्द ही बोल रहे थे, इनके अर्थ खोलना उनके लिए मुश्किल लग रहा था।

समूह में जो बच्चे नहीं बोल रहे थे उनसे पूछा गया कि क्या वे इनसे कुछ अलग बात रखना चाहते हैं? या फिर जो बातें आ चुकी हैं आप भी वही कहना चाहते हैं। बच्चे बोले– हाँ। मैंने कहा कि आपको कोई और बात सूझ रही हो या लगती हो तो आप ज़रूर बोलें, क्योंकि समूह में सबकी बातें मिलकर ही समूह की बात बनती है। कुछ बातें मैंने बढ़ाने की कोशिश की, उन्हें उनकी शिक्षिका द्वारा ली गई क्लास और बताई गई बातें याद दिलाईं, लेकिन बात आगे नहीं बढ़ी। एक तरह से पूरे समूह में दो-तीन बातों से ज़्यादा कोई बात निकलकर नहीं आ रही थी।

इस सम्बन्धित चर्चा में मैंने सभी बच्चों को *भारत एक खोज* के 42वें एपिसोड की एक क्लिपिंग दिखाई, जिसमें बच्चे उस समय के मुद्दों और स्थिति को देख और समझ सके। उसके बाद *संविधान* का चौथा एपिसोड दिखाया, जिसमें मौलिक अधिकारों पर चर्चा हो रही थी।

यह बात करके मैं बच्चों के पूर्व अनुभव को उभारना भी चाह रही थी और कक्षा-कक्ष का वातावरण भी सहज बनाना चाह रही थी। मेरी कोशिश थी कि शिक्षक और बच्चों के बीच भी एक साझेदारी बने। बच्चों के जीवन में वापस लौटना हो सके और उससे उनको जोड़ना भी हो पाए, ताकि इसको आधार बनाकर जीवन अनुभवों और वास्तविक प्रसंगों के मार्फ़त अवधारणा तक पहुँचा जा सके।

अब मैं चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए किसी तरह से उत्साहित और प्रेरित करने वाली बात छेड़ना चाह रही थी। एनसीईआरटी की कक्षा 8

चित्र : हीरा धुर्वे

की *सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन* किताब के अध्याय 2 में उल्लिखित एक काल्पनिक परिस्थिति मैंने बच्चों के सामने रखी कि– 'किसी व्यक्ति का धर्म कहता है कि पैदा होते से बच्चे को मार देना चाहिए। उसमें सरकार की क्या भूमिका होगी?' किताब के ही अनुसार मैंने भी उनसे कहा कि इसपर समूह में चर्चा कर लिखो या कक्षा-कक्ष में रोल-प्ले करो। मुझे उम्मीद थी कि इसमें ख़ूब सारे बिन्दु निकल पाएँगे जैसे– स्थानीय स्वशासन, लिंग भेदभाव, लोगों की मान्यताएँ, धर्म का हस्तक्षेप वग़ैरह।

दरअसल मध्यप्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र की पाठ्यपुस्तक में जहाँ 'धर्म-निरपेक्षता' का ज़िक्र है, वहाँ ऐसा कोई जीवन्त उदाहरण मुझे नहीं दिखा जिसे चर्चा के लिए लिया जाता। इसलिए एनसीईआरटी की किताब से यह उदाहरण चुना। जल्दी ही मुझे एहसास हो गया कि इससे बहुत सारी परतें तो खुलती जा रही हैं, पर कई सारी पूर्ववर्ती अवधारणाओं पर काम किए जाने की भी ज़रूरत है। यह भी समझ में आया कि एनसीईआरटी की किताब में इस उदाहरण से पहले अवधारणाओं का एक क्रमिक विकास है, जबकि मैंने पहले की तैयारी कराए बग़ैर एक ऐसा अंश उठा लिया था जिसपर चर्चा

तो फिर भी हो सकती थी, पर अवधारणाओं की आधारभूत समझ से पहले यह सब किसी काम का नहीं था। शिक्षिका का एक ही कक्षा में धर्म-निरपेक्षता को जल्दी से समझा देने का आग्रह स्वीकार कर उसपर बिना तैयारी बातचीत शुरू करना भी मेरी जल्दबाज़ी और नासमझी ही थी।

मेरे लिए यह काम देखने-समझने का पहला और नया मौक़ा था। हालाँकि बच्चे समूह में जो बात कर रहे थे वह बहुत ही रुचिकर थी।

एक बच्चे ने कहा– "कोई धर्म नहीं कहता है कि पैदा होते से बच्चे को मारें।"

दूसरी बच्ची ने कहा– "लड़कियों को तो मार देते हैं।"

तीसरे बच्चे ने उसकी ओर देखते हुए कहा– "तुमने देखा है क्या?"

पहले बच्चे ने कहा– "इसने पेपर में पढ़ा होगा। पेपर में तो सब ख़बर ग़लत आती हैं।"

दूसरी बच्ची बोली– "नहीं, मेरी माँ एक

चित्र : हीरा धुर्वे

जगह मालिश करने जाती है तो उसकी सास कह रही थी कि लड़की थी इसलिए उसे पैदा ही नहीं होने दिया।"

"लड़की भी तो बच्चा है न।" वह बोलते हुए थोड़ी संशय में थी (लड़की को बच्चा माने या नहीं)।

एक बच्चे ने सवाल फिर से पढ़ा और कहा– "पैदा होने के बाद थोड़ी मारा वह तो पहले ही मार दिया न।"

इन चार-छः कथनों ने सामाजिक विज्ञान शिक्षण के कई सारे दरवाज़े खोल दिए। क्या धर्म बच्चियों को मारने को कह सकता है? जब कोई कहे कि वास्तव में बच्चियों को लोग मार डालते हैं, तो उसका आधार क्या हो सकता है? क्या कही सुनी बातें, अख़बार की बातें सही हो सकती हैं? क्या इस सन्दर्भ में एक मालिश करने वाली महिला की जानकारी सही हो सकती है? क्या 'बच्चा' शब्द इस सन्दर्भ में लड़कियों के लिए उपयोग किया जा सकता है, और यह कि क्या यह सब दिए गए सवाल के लिए प्रासंगिक है... सामाजिक विज्ञान के इन बुनियादी सवालों से जूझना तब सम्भव हुआ जब हमने एक जीवन्त प्रश्न पर सामूहिक विचार शुरू किया।

बच्चों से बात करते हुए मैंने कहा कि आप यह जो बता रहे हो वह धर्म का स्वभाव बताता है। यह लोगों के विश्वास और परम्परा पर टिकी व्यवस्था है। सबके धर्म अलग-अलग होते हैं। सभी अपने-अपने तरीक़ों से अपने विश्वास को मानते हैं और अपने धर्म का पालन कर सकते हैं। राज्य इस बारे में कुछ नहीं बोलता है। हाँ, लेकिन धर्म के नाम पर किए जाने वाले अपराध पर राज्य कार्रवाई करता है। जब भी कोई ऐसा काम होता है जो मानवता और मनुष्य के अधिकार के ख़िलाफ़ है, तो राज्य वहाँ हस्तक्षेप ज़रूर करता है, उसे करना ही चाहिए। इसीलिए पेट में गर्भ को मारने से जुड़े कई क़ानून बनाए गए हैं। संविधान में सबको जीवन का अधिकार मिला हुआ है। चाहे गर्भ

हो या शिशु, कोई धर्म या कोई मान्यता उसका जीवन नहीं छीन सकते। इस तरह की किसी भी मान्यता और आचरण को राज्य और उसका क़ानून मंज़ूरी नहीं देता, बल्कि उसे रोकता है और ऐसा करने वाले के लिए सज़ा का प्रावधान है। राज्य को इस बात से मतलब नहीं है कि ऐसा आचरण करने वाले का धर्म क्या है, उसकी मान्यता क्या है, वह सिर्फ़ यह देखता है कि यह नियम के विरुद्ध है, संविधान के विरुद्ध है, मानवता के विरुद्ध है। और इसीलिए वह हस्तक्षेप करता है।

इससे आगे निकलकर मैंने पूछा कि धर्म क्या होता है? आप लोग जानते हैं क्या? कुछ बच्चों ने कहा कि हाँ, जहाँ मन्दिर होता है, कुछ ने कहा कि जहाँ पुजारी होता है। मैंने पूछा कि आप कौन-से भगवान को मानते हो? तो बच्चों ने कहा कि हमारे घर में पूजा नहीं होती है। हम तो कभी भी किसी भी मन्दिर में जहाँ प्रसाद मिलता है वहाँ चले जाते हैं और प्रसाद खाकर आ जाते हैं। कभी-कभी हम खाना भी खाकर आते हैं। एक बच्ची ने कहा कि हम जब यहाँ नए-नए आए थे, तो एक आंटी कार में बैठाकर अपने घर खाना खिलाने ले गई थीं। हमको नहीं मालूम तब क्या था?

बच्चों ने कहा कि एक बार हम मस्जिद में खाना खाने गए थे, हम सब स्कूल से ही चले गए थे। दूसरा बच्चा बोला कि एक बार सरदारों की जगह भी तो खाना खाने गए थे।

जब हम अवधारणाओं को खोलने का प्रयास करते हैं तो पाते हैं कि बच्चे उन्हें कितने विविध तरीक़ों से पकड़ने व विमर्श करने का प्रयास करते हैं। यहाँ धर्म का आशय मन्दिर, पुजारी, प्रसाद खाना, कन्या पूजन आदि अनुभवों को समेटकर, समझने का प्रयास हो रहा था। ये वे ठोस अनुभव थे जो बच्चों को धर्म से जोड़ रहे थे, और धर्म-निरपेक्षता से भी। आख़िर प्रसाद कहीं का भी हो– मन्दिर का या मस्जिद का या गुरुद्वारे का– बच्चों के लिए कोई फ़र्क़ नहीं था। मगर पाठ्यपुस्तक की अवधारणा को समझाने के लिए मुझे उन्हें और कहीं ले जाना था।

हालाँकि यहीं पर मुझे बच्चों से यह बात करनी चाहिए थी कि धर्म क्या है? हमारे जीवन में वह कैसा और किस प्रकार से जुड़ा है? हम उसके आधार पर कैसे व्यवहार करते हैं? उसके चिह्न और प्रतीक हमको कहाँ दिखते हैं? उसकी क्या बाध्यताएँ हैं? और, व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन एवं नागरिक जीवन में उसकी क्या अपेक्षाएँ व सीमाएँ हमें दिखती हैं? मैं यहाँ पर चूक गई और धर्म-निरपेक्षता से सीधे सरकार पर छलाँग लगा दी।

मैं मन-ही-मन सोच रही थी कि ये सब जो बच्चे कर रहे हैं वह सब धार्मिक स्वतंत्रता (व्यक्तिगत स्वतंत्रता) की ही श्रेणी में है। जहाँ वे किसी भी धर्म को नहीं जानते, किसी धर्म का बन्धन नहीं है या किसी धर्म से बैर नहीं है। पर अभी भी राज्य की धर्म-निरपेक्षता को समझना थोड़ा कठिन लग रहा था, क्योंकि राज्य की धर्म-निरपेक्षता को समझने के लिए राज्य सरकार को समझना ज़रूरी है।

मैंने पूछा– "अच्छा बताओ कि सरकार कौन है?"

एक बच्चा बोला– "सफ़ेद कपड़े पहनकर वोट माँगने आते हैं वही हैं।"

मैंने कहा– "तुम्हारे यहाँ का कोई नेता होगा न।"

बच्चे बोले– "एक नहीं है, कभी कोई आता है तो कभी कोई। आते रहते हैं। मोहल्ले के लोग कह रहे थे कि ये लोग काम के नहीं हैं।" (शायद कभी पार्षद, विधायक या सांसद आते होंगे)।

अपनी बातचीत को अब किस दिशा में लेकर जाऊँ, मेरे लिए ये बड़ी दुविधा हो गई। राज्य की धर्म-निरपेक्षता समझाने के लिए सरकार की अवधारणा समझाना ज़रूरी लगा। सरकार क्या है? कैसे बनती है? लोकतंत्र क्या है? इनके बाद

ही तो धर्म-निरपेक्षता की बारी आती है। मुझे इन सफ़ेदपोश नेताओं से शुरू करना होगा। चुनाव से सरकार का बनना समझना होगा। चुनाव प्रक्रिया और उसमें बहुमत दल के नेता को समझाया तो धर्म-निरपेक्षता तो अभी रह ही जाएगी। एक दिन के घण्टेभर में इतनी बातचीत करके मैं लौट रही थी। मेरे सामने संकट ये था कि कल सरकार पर चर्चा करूँ या संवैधानिक मूल्यों पर? चर्चा कैसे करूँ? बच्चे विविधता को तो भली भाँति समझ रहे हैं, लेकिन उसे व्यवस्थित कर अवधारणा की शक्ल में ढालना ज़रूरी था।

दूसरे दिन, मैंने चॉक और बोर्ड की मदद से सरकार को समझाने का प्रयास किया। एकलव्य की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक से मैंने राज्य

चित्र : हीरा धुर्वे

की विधान सभा और राज्य के मंत्री मंडल के बारे में बताया (इसे पहले नक़्शे में राज्यों के माध्यम से बताया गया)। मैंने बताया कि जिसको हम चुनकर शासन चलाने के लिए भेजते हैं, जो हम सबका ख़्याल रखेगा, वह सरकार है। किन्तु बच्चों के चेहरों से समझ में आ रहा था कि इस अमूर्त सरकार को वह नहीं समझ पा रहे थे। मैंने सोचा कि स्कूल में कक्षा मॉनिटर और बाल कैबिनेट तो होगी ही, उसका उदाहरण देकर बताती हूँ। पर उस स्कूल में ऐसा कुछ भी नहीं था। मैंने शिक्षिका से पूछा कि यहाँ आपने कक्षा मॉनिटर और बाल कैबिनेट बनवाई है क्या? शिक्षिका ने कहा कि नहीं बनाई। मैंने कहा कि बच्चे इससे ही भारत की अपनी नागरिकता को समझ पाते। शिक्षिका ने ज़ोर देकर कहा कि ये सब तो मैंने पढ़ा दिया।

मैंने शिक्षिका को समझाने का प्रयास किया कि किसी एक मुद्दे के लिए उससे जुड़ी कई अवधारणाओं को समझाना आवश्यक होता है। पर उन्हें लग रहा था कि यह सब बच्चों को इतना विस्तार से बताकर मैं खामखा मुद्दे को खींच रही हूँ।

मुझे समझ में आ रहा था कि धर्म-निरपेक्षता से पहले सरकार, स्थानीय सरकार, ज़िला सरकार और राज्य सरकार के साथ केन्द्र सरकार के कार्यों को समझना आवश्यक है। उसके बाद, सरकार का चुनाव किस प्रकार से होता है और वह जनता के लिए किस प्रकार से कार्य करती है, इस सबके बाद संवैधानिक मूल्यों को सरकार किस प्रकार से लागू करती है, यह सब बच्चों को समझाना होगा। शिक्षिका ने आग्रहपूर्वक कहा कि आप तो धर्म-निरपेक्षता जल्दी से समझा दीजिए। पर मेरे लिए बिना सीढ़ी के ऊपर चढ़ना कठिन था।

तीसरे दिन मैंने बच्चों से पूछा कि आज किसपर बातचीत करनी चाहिए? बच्चों ने कहा कि मैम, आपने कल कहा था कि रोल-प्ले करवाएँगी तो आज हम तो वही करेंगे। सरकार का चुनाव कैसे होता है? क्यों किया जाता है? हम क्लास में किसको अपना नेता चुन रहे हैं? इसपर पहले बातचीत की और दो बच्चों को चुनाव के उम्मीदवार बनाकर घोषणा की गई। नामों की चिट और मतपेटी बनाई गई एवं घोषणा-पत्र बनवाकर चर्चा करवाई गई। इस पूरी प्रक्रिया में बच्चे इस प्रकार मगन हो गए थे कि कोई भी लंच ब्रेक में नहीं जाना चाह रहा था। वे चुनाव की पूरी प्रक्रिया को करके समझना चाह रहे थे। मैंने उन्हें बताया कि ये एक वार्ड का चुनाव हो सकता है, अलग-अलग क्लास

मॉनिटर मिलकर एक स्कूल अध्यक्ष को चुनते हैं, उसी प्रकार हम मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री को चुनते हैं जो बहुमत दल का नेता होता है। बच्चों ने बड़े मज़े से पूरी प्रक्रिया को समझा। एक बच्चे ने कहा कि हम सबको खेल का एक मैदान चाहिए। फिर इसपर काफ़ी देर तक चर्चा हुई कि मॉनिटर खेल का मैदान पहले क्यों नहीं बनवा सकता है। मैंने जोड़ा कि खेल के मैदान से ज़्यादा और कुछ भी ज़रूरी हो सकता है न। मैंने कहा कि चलो, ज़रूरी कार्यों की सूची बनाई जाए। उसमें क्या-क्या हो सकता है। बच्चों के बताए अनुसार, पीने का पानी, टेबल-कुर्सी, शौचालय, पक्की सड़क, मैडम रोज़ स्कूल में पढ़ाने आएँ और खाना अच्छा मिले, इन सबको लिखा गया। फिर चर्चा हुई। इसमें से इस साल दो काम ही हो पाएँगे तो प्राथमिकता किस काम को मिलनी चाहिए। सब बच्चों (40) में से 32 ने कहा कि पीने का पानी और शौचालय होना चाहिए। इस प्रकार, बच्चों ने सरकार के कार्यों का एजेंडा और प्राथमिकता को समझा और फिर उस मद के लिए जुटाए जाने वाले बजट और जनता के पैसों को समझा।

आज शिक्षिका ख़ुश नज़र आईं और उन्होंने कहा कि कम-से-कम बच्चे चुनाव प्रक्रिया को समझ तो गए। मैंने कहा कि अब कोई भी बात करना आसान हो जाएगा।

चौथे दिन तक बच्चे मुझसे ख़ूब हिल मिल गए थे। कक्षा में जाते ही बच्चों ने कहा कि आप सरकार की कोई कहानी सुनाएँ। मैंने पूछा कि सरकार को आप लोग अच्छे-से समझ गए हैं क्या? हाँ, सब बच्चों ने एक साथ जवाब दिया। मैंने सोचा कि आज बच्चों को विचार करने के लिए क्यों न कुछ प्रश्न दिए जाएँ। मैंने पूछा कि हमारे देश में राजतंत्र है या लोकतंत्र? कक्षा में सन्नाटा छा गया क्योंकि ये शब्दावली सुनी तो थी किन्तु इसके अर्थ और इसके उपयोग को वह समझ नहीं पा रहे थे। जब मैंने शब्दों को खोलने का प्रयास किया तब बच्चों को थोड़ा समझ में आया। दुनिया के नक़्शे के मार्फ़त राजतंत्र और लोकतंत्र की कहानी सुनाई और हमारे देश में लोकतंत्र कैसे स्थापित हुआ, उसको बताया। आज़ादी के पहले भारत में किस प्रकार की शासन व्यवस्था थी? उसमें जनता का कितना अधिकार होता था? यह बताया गया। आज़ादी के बाद जब भारत में लोकतंत्र आया तो उसमें 'हम भारत के लोग' का उल्लेख किया गया। बच्चे इन कहानियों से राजतंत्र और लोकतंत्र शब्दावली को कुछ हद तक समझे होंगे। मैंने आगे बताया कि लोकतंत्र की पहचान है कि सब लोग सीधे मतदान करते हैं और जनता के प्रतिनिधि मिलकर सरकार बनाते हैं। इस बीच ही एक बच्चे ने सवाल किया कि लोगों का शासन है तो फिर हमारे इलाक़े में पुलिस का शासन क्यों है?

इस बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा कि पुलिस की व्यवस्था जनता के शासन के विरुद्ध नहीं है और न ही यह जनता के शासन के समानान्तर कोई अलग व्यवस्था है, बल्कि यह हमारे लिए ही एक ज़रूरी व्यवस्था है। यह जनता के शासन का हिस्सा है। पुलिस का काम सभी लोगों से नियम और क़ानून का सही रूप से पालन कराना है। इसलिए हमें अपने दैनिक जीवन में आसपास पुलिस दिखाई देती है, वह क़ानून और संविधान के हिसाब से ही काम करती है। हमें अपने संविधान और क़ानून पर भरोसा रखना चाहिए। व्यक्ति के रूप में कोई एक या दो पुलिस वाले उसी प्रकार ग़लत हो सकते हैं, जैसे कोई भी व्यक्ति ग़लत हो सकता है। लेकिन क़ानून और संविधान इन सबसे ऊपर हैं और वह जनता के अधिकार के लिए ही काम करते हैं।

बच्चे ने एक लम्बा-सा वाक़या बताया कि पुलिस किस प्रकार से हमारे इलाक़े में हम लोगों को डराती-धमकाती है। इसके लिए हम क्या कर सकते हैं? बच्चे ने सवाल किया कि पुलिस तो सबसे बड़ी होती है न? मैंने बताया कि पुलिस भी हमारी सुरक्षा-व्यवस्था के लिए है। लेकिन पुलिस के विरुद्ध भी हम अपने यहाँ के जन प्रतिनिधि– पार्षद और मंत्री– या पुलिस के बड़े अधिकारी को शिकायत कर सकते हैं। मेरे इस उत्तर से बच्चा बहुत सन्तुष्ट नहीं हुआ। मैं समझ सकती हूँ कि व्यावहारिक स्थिति एकदम

अलग है। गली मोहल्लों में पुलिस का दबदबा होता है। नेता तो उन्हें चुनाव के दौरान ही दिखाई देते हैं। नेताओं तक पहुँच भी सबके लिए आसान नहीं होती है। पुलिस की शिकायत भी कहीं हो सकती है यह बात तो उनके अनुभव में अभी कहीं नहीं है। उनको इसकी कहीं सम्भावना भी नहीं दिखाई देती है।

मैंने बात में जोड़ा कि पुलिस का भी एक पूरा ढाँचा होता है, जैसे जनता की सरकार का ढाँचा है, जैसे हमारे स्कूल का एक ढाँचा है, जिस प्रकार आपके स्कूल में प्रिंसिपल हैं, हेड मास्टर हैं, क्लास टीचर हैं, बाक़ी अलग-अलग विषयों के टीचर हैं, आपकी क्लास के मॉनिटर हैं, ठीक उसी तरह से पुलिस में भी एक व्यवस्था होती है। जिस पुलिस को हम गली मोहल्लों में देखते हैं, वह पुलिस के ढाँचे की सबसे निचली कड़ी है। लेकिन पुलिस भी क़ानून से और संविधान से बँधी हुई है। उसे दबंगता की खुली छूट नहीं है। इसपर हमारा भरोसा होना चाहिए।

किसी कक्षा में बच्चे अपने अनुभवों से बहुत सारी बिखरी-बिखरी सी बातें कर सकते हैं। शिक्षक को उनकी बातों का सम्मान करते हुए, उन्हें सहेजते हुए वास्तविक स्थिति और अवधारणा के समीप लाना होता है, ताकि वे भी तार्किक रूप से इन बातों पर विचार कर सकें और अवधारणा को अपने सन्दर्भों में समझ सकें।

बहरहाल इस कक्षा में सरकार की धर्म-निरपेक्षता बताना मेरे लिए प्राथमिक था सो अब मैंने सरकार की धर्म-निरपेक्षता को कैलेंडर की सरकारी छुट्टियों से समझाने की कोशिश की। मैंने कहा कि सरकार का अपना धर्म नहीं होता है। उसका कोई त्योहार नहीं होता। वह सबकी सोचकर चलती है। सबका ध्यान रखा जाता है। कैलेंडर के आधार पर बच्चों ने छुट्टियों की लिस्ट बनाई, तब जाकर काम आसान हुआ। सरकार के धर्म-निरपेक्ष चरित्र की थोड़ी झलक तो मिली। मैंने पहले दिन के प्रश्न को पुनः दोहराया, तब सब बच्चों ने उसके जवाब में कहा कि सरकार हमारी सुविधा और देखभाल के लिए होती है। यदि वह ऐसा नहीं करती है तो हम उसको हटा सकते हैं। बच्चों के चेहरों पर एक सन्तोष का भाव दिखाई दे रहा था।

कुल मिलाकर चार दिन की स्कूल विज़िट में मैंने समझा कि बच्चे लिंग भेद, आर्थिक असमानता, विविधता, चुनाव, सरकार, बहुमत दल का नेता, राज्य सरकार, केन्द्र सरकार और अन्ततः राज्य की धर्म-निरपेक्षता की अवधारणाओं के अनुभवजन्य पक्षों से जूझे हैं और कुछ बहुत ही प्रारम्भिक समझ बन पाई है। अभी सामान्य और अमूर्त सिद्धान्तों तक जाना दूर तो था मगर असम्भव नहीं। इन अनुभवों पर विचार करते हुए एनसीएफ़ की बातें जीवन्त रूप में सामने आईं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अन्तर्गत सामाजिक विज्ञान शिक्षण पर तैयार किया गया *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र,* समाज को विभिन्न संरचनाओं, उसके शासन और रूपान्तरण को समझने के सम्बन्ध में बात करता है। साथ ही उसमें 'भारतीय संविधान' में स्थापित मूल्यों जैसे– न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे एवं राष्ट्र की एकता और अखण्डता को समझने की बात कही गई है। उसमें कहा गया है कि बच्चे 'समाज के सक्रिय, ज़िम्मेदार और चिन्तनशील सदस्य बनें', और वे 'अलग-अलग मतों, जीवन शैलियों और सांस्कृतिक परम्पराओं के अन्तरों को सम्मान देना' व 'उन्हें प्राप्त हो रहे विचारों, संस्थाओं और व्यवहारों' पर 'सवाल उठाना और उसकी जाँच परख करना' सीखें। साथ ही वे 'सामाजिक एवं जीवन कौशलों के विकास' के कुछ काम करें और इस बात को समझें कि 'पारस्परिक सामाजिक क्रियाओं के लिए ये कौशल महत्त्वपूर्ण हैं'।

आधार-पत्र दो प्रमुख बातों की पैरवी करता है; एक तो संवैधानिक मूल्यों को समझना और दूसरा विचारों, संस्थाओं और व्यवहारों पर सवाल उठाना और उन्हें जाँचना परखना।

कक्षा-कक्ष में यह काम करते हुए मेरी स्पष्ट समझ बनी कि संवैधानिक मूल्यों और सत्ता-केन्द्रित व्यवहार को बताने के लिए अवधारणाओं को सिलसिलेवार ढंग से बताया और समझाया जाना ज़रूरी है। बच्चों के बीच एक अवधारणा पूरी तरह से विकसित होने से पहले दूसरी अवधारणा पर कूदकर नहीं जाना चाहिए। माध्यमिक स्तर के बच्चे जो वयस्क होने जा रहे हैं, वे अपने आसपास, घर, परिवार, मोहल्ला, स्कूल, शिक्षक, पुलिस, चुनाव, अपराध, घर में पुरुषों का व्यवहार, नेता, विरोध प्रदर्शन, लड़ाई झगड़े को देखते हैं और कक्षा-कक्ष में वह इन सबपर प्रश्न करना चाहते हैं और विस्तार से बात कर उसका समाधान भी चाहते हैं। इसलिए बड़े होते बच्चों की जिज्ञासा, ज़रूरत और जानने की ख़ुराक को देखते हुए प्रारम्भिक अवधारणा से और जीवन्त अनुभव से ही बातचीत शुरू की जानी चाहिए।

समाज के सदस्यों के जीवन चरित्रों और उनके रोज़मर्रा के जीवन अनुभवों से बचकर सामाजिक विज्ञान अपने लक्ष्यों को भला कैसे पा सकता है। अवधारणा और जीवन के बीच सेतु तो बनना ही चाहिए। जैसी कि सामाजिक विज्ञान की प्रकृति ही है कि वह समाज की जीवन्त घटना और व्यक्ति के उनसे जुड़ाव पर प्रकाश डालता है, जिससे कि व्यक्ति अपनी स्थिति, अपने अधिकार और सही ग़लत का विश्लेषण कर सके। साथ ही समाज के भीतर पारस्परिक सम्बन्धों और उसमें राज्य की भूमिका को देख सके।

सन्दर्भ

एनसीएफ़ 2005

सामाजिक विज्ञान शिक्षण पर राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र (एनसीईआरटी)

सोशल पोलिटिकल लाइफ़, कक्षा 8 (एनसीईआरटी)

सामाजिक विज्ञान, कक्षा 7 (मध्यप्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र)

शिक्षा विमर्श (दिगंतर), जुलाई 2017 अंक

सामाजिक अध्ययन शिक्षण एक प्रयोग (एकलव्य), 1994

अंजना त्रिवेदी विगत ढाई दशकों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। शिक्षण-प्रशिक्षण के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं के लिए सतत लेखन रहा है। महिला स्वास्थ्य, शिक्षा एवं नागरिक अधिकार इनके प्रमुख विषय रहे हैं। अंजना वर्तमान में अजीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, मध्यप्रदेश, भोपाल में सामाजिक विज्ञान स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : anjana.trivedi@azimpremjifoundation.org

तालाबन्दी के दौरान ऑफ़लाइन शिक्षा प्रक्रिया की रूपरेखा

यह रिपोर्ट ऊधम सिंह नगर टीम, उत्तराखंड के लिए मौअज़्ज़म अली ने तैयार की है

सन्दर्भ

देशभर में तालाबन्दी लागू होने के कारण, सुरक्षा की दृष्टि से देश के सभी तरह के शिक्षण संस्थानों को भी अनिश्चित काल के लिए बन्द कर दिया गया है। निकट भविष्य में इनके खुलने की सम्भावना दिखाई नहीं दे रही है। इसी के मद्देनज़र अप्रैल महीने से ही अधिकतर शिक्षण संस्थानों ने विभिन्न माध्यमों से ऑनलाइन शिक्षण व्यवस्था की शुरुआत की है। इस ऑनलाइन शिक्षण व्यवस्था के अलावा विद्यार्थियों तक पहुँचने का कोई और तरीक़ा भी नज़र नहीं आ रहा था। ऑनलाइन माध्यम से शिक्षा की समस्या यह है कि शहरों में स्थापित शिक्षण संस्थान या देशभर के निजी स्कूल तो किसी तरह अधिकतर विद्यार्थियों तक पहुँच पा रहे हैं और शिक्षण प्रक्रिया को जारी रख पा रहे हैं, परन्तु तमाम सामाजिक-आर्थिक कारणों से ग्रामीण इलाक़ों और छोटे शहरों में स्थापित राजकीय विद्यालयों में पढ़ने वाले समस्त विद्यार्थियों तक पहुँचना मुमकिन नहीं हो पा रहा है।

आँकड़ों के अनुसार बात करें तो ऑनलाइन माध्यम की मदद से बहुत प्रयास करने के बाद भी सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले केवल 25 प्रतिशत विद्यार्थियों तक ही पहुँचा जा सका है। इसमें भी केवल 12 से 15 प्रतिशत बच्चे ही ऐसे हैं, जिनके साथ निरन्तर शिक्षण संवाद हो पा रहा है। इससे कक्षा एक से बारहवीं तक के विद्यार्थियों की बहुत बड़ी संख्या शिक्षा से वंचित थी। इस ख़ालीपन को भरना बहुत आवश्यक था और इसके लिए जल्द-से-जल्द कोई नया तरीक़ा या समाधान खोजना ज़रूरी हो गया था।

इसी के मद्देनज़र, उत्तराखंड राज्य के जनपद, ऊधम सिंह नगर के ज़िला कार्यालय

और शिक्षा विभाग ने अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन एवं अन्य संस्थाओं, जो ज़िले में शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही हैं, को एक बैठक के लिए आमंत्रित किया। इस बैठक का मुख्य उद्देश्य ऑनलाइन शिक्षण प्रक्रिया को बेहतर करते हुए अधिक-से-अधिक विद्यार्थियों तक पहुँच बनाना

था। परन्तु अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन नैतिक एवं शैक्षिक, दोनों दृष्टियों से ऑनलाइन शिक्षा को लेकर सहमत नहीं था। व्यवस्थागत, आर्थिक, सामाजिक एवं तकनीकी कारणों से ऑनलाइन शिक्षा प्रक्रिया द्वारा बहुत प्रयास के बाद भी केवल 20 से 25 प्रतिशत बच्चों तक ही पहुँचा जा सका था। इससे अधिक कोशिश करने के बाद भी, इसमें कुछ ही प्रतिशत वृद्धि होने की सम्भावना दिखाई दे रही थी। इस वजह से बच्चों की एक बहुत बड़ी संख्या शिक्षा से अछूती रह जाने का डर था। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का मानना था कि इससे सामाजिक असमानता को बढ़ावा ही मिलेगा और इस प्रक्रिया को पूरी तरह से शिक्षा भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि शिक्षा एक सामूहिक या सामाजिक प्रक्रिया है, न कि व्यक्तिगत। इसलिए फ़ाउण्डेशन ने स्वयं को इस प्रक्रिया से अलग रखने का ही विचार किया और इस बात को स्पष्ट रूप से बैठक में सबके सामने रखा भी। साधारणत: शिक्षा विभाग और ज़िला प्रशासन का शिक्षा में बेहतरी को लेकर फ़ाउण्डेशन पर बहुत विश्वास रहता है, और इस विश्वास के भी कई कारण हैं, ऐसे में उनको फ़ाउण्डेशन से इस तरह के जवाब की उम्मीद नहीं थी।

इस मुद्दे पर ज़िला प्रशासन, शिक्षा विभाग और फ़ाउण्डेशन की आपस में वार्ता का सिलसिला कई दिनों तक चला। वे चाहते थे कि हमेशा की तरह फ़ाउण्डेशन ऑनलाइन शिक्षा प्रक्रिया में भी उनकी मदद करे। तब फ़ाउण्डेशन ने ऑनलाइन शिक्षा प्रक्रिया में पार्श्व से अकादमिक सहयोग देने की बात को स्वीकारते हुए ऑफ़लाइन शिक्षा का एक नया विचार सबके सामने प्रस्तुत किया। इस विचार की मुख्य बात यह थी कि इसमें ज़िले के प्रत्येक शिक्षक और अधिकारी की सक्रिय भागीदारी निश्चित की जा सकती थी। केवल बच्चों के लिए ही नहीं, बल्कि शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों और शैक्षिक सहयोग प्रणाली के अन्तर्गत कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह अकादमिक समझ को विकसित करने, स्कूल के बच्चों और उनके अभिभावकों से जुड़ाव बनाने के साथ-साथ समुदाय के अन्य लोगों से जुड़ने का भी यह अच्छा मौक़ा था। तालाबन्दी के दौरान अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक असर होने के बाद बहुत से लोगों द्वारा, जो पहले अपने बच्चों को स्थानीय निजी स्कूलों में पढ़ाते थे, सम्भावना जताई गई कि शिक्षक यदि समुदाय के बीच जाकर बच्चों के साथ काम करते हैं तो इसका सकारात्मक असर पड़ सकता है और सरकारी स्कूलों में नामांकन बढ़ने की सम्भावना दिखाई देती है।

आम जनमानस में सरकारी शिक्षकों और स्कूलों के बारे में नकारात्मक धारणा रहती है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ाई नहीं होती या शिक्षक बच्चों की शिक्षा के बारे में गम्भीर नहीं हैं। परन्तु जब स्कूल से जुड़ा समुदाय यह देखेगा कि सरकारी शिक्षक और विभाग मिलकर बच्चों की शिक्षा के बारे में चिन्तित हैं और वे बच्चे की शिक्षा हेतु घर-घर जाकर मेहनत कर रहे हैं, तो इसका सकारात्मक असर लोगों पर पड़ेगा और इससे हमारे स्कूलों में नामांकन का स्तर बहुत बढ़ सकता है। इस बात को समझने

में अधिकारियों को समय नहीं लगा और इस दिशा में योजनाबद्ध रूप से काम करना आरम्भ किया गया, जिसमें फ़ाउण्डेशन द्वारा अपना पूर्ण सहयोग दिया गया।

ऑफ़लाइन माध्यम से शिक्षण की प्रयोगात्मक शुरुआत

इस पहल के अन्तर्गत, ऑनलाइन माध्यम से शिक्षा को जारी रखते हुए, ऑफ़लाइन माध्यम से शत प्रतिशत बच्चों तक पहुँचने की योजना बनाने की शुरुआत की गई। एक प्रयोग के तौर पर इस पहल की शुरुआत ऊधम सिंह नगर ज़िले के काशीपुर ब्लॉक में कार्यरत उप-शिक्षा अधिकारी और फ़ाउण्डेशन के सदस्यों द्वारा मिलकर की गई। इस प्रक्रिया में सभी शिक्षक स्वैच्छिक रूप से जुड़े थे। इस पायलटिंग से यह समझ में आया कि जहाँ बहुत कोशिश करने के बाद भी हम ऑनलाइन माध्यम से केवल 20 से 25 प्रतिशत बच्चों तक ही पहुँच बना पा रहे थे, और उसमें भी केवल 13-14 प्रतिशत बच्चों के साथ ही निरन्तर संवाद हो पा रहा था, वहाँ अब ऑफ़लाइन माध्यम का प्रयोग करते हुए, इस ब्लॉक में एक हफ़्ते में 70 से 75 प्रतिशत विद्यार्थियों तक पहुँच बनाने में सफलता मिली थी। इस पहल की सफलता के आधार पर अब इस प्रक्रिया को ज़िला स्तर पर लागू करने का प्रयास किया गया।

ऑफ़लाइन माध्यम से शिक्षण की ज़िलास्तरीय योजना और क्रियान्वयन

ज़िला स्तर पर इस प्रक्रिया की शुरुआत करने के लिए सबसे पहले ज़िला अधिकारी और ज़िले के मुख्य शिक्षा अधिकारी के सहयोग से सभी सातों ब्लॉक के उप-शिक्षा अधिकारी और ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण केन्द्र संकाय का ऑनलाइन माध्यम (माइक्रोसॉफ़्ट टीम्स एप) से अभिमुखीकरण (ओरिएंटेशन) किया गया और फिर इसी माध्यम से प्राथमिक से लेकर उच्च माध्यमिक तक बीस बैचों में ज़िले के शत प्रतिशत शिक्षकों (4446 शिक्षक) का अभिमुखीकरण किया गया।

शिक्षकों की अभिमुखीकरण प्रक्रिया के दौरान उनके साथ काशीपुर ब्लॉक में ऑफ़लाइन प्रक्रिया की पायलटिंग की जानकारी साझा की गई। इस प्रक्रिया को मुख्य रूप से तीन चरणों में क्रियान्वित किया गया था :

1. भौगोलिक रूपरेखा तैयार करना : इस प्रक्रिया के अन्तर्गत संकुल समन्वयकों द्वारा शिक्षकों के सहयोग से ऐसे बच्चों की पहचान की गई, जो ऑनलाइन प्रक्रिया में जुड़ने में असमर्थ थे।

2. विद्यार्थियों का वर्गीकरण : इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर के आधार पर उनको वर्गीकृत किया गया, ताकि बच्चों के स्तर के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया की योजना बनाई जा सके और उसी के अनुसार विद्यार्थियों के साथ शिक्षण प्रक्रिया में जाया जा सके। इससे पहले ऑनलाइन प्रक्रिया में, कक्षा अनुसार सभी शैक्षिक स्तर के बच्चों के लिए एक ही तरह की शिक्षण सामग्री व्हाट्सएप, ज़ूमकॉल, यूट्यूब, टीवी चैनलों आदि माध्यमों से साझा की जा रही थी और एकतरफ़ा संवाद किया जा रहा था। इससे बच्चों और शिक्षकों, सभी को मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था। न तो शिक्षक ही बच्चों से जुड़ पा रहे थे और न बच्चे ही कुछ समझ पा रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे यह प्रक्रिया केवल करनेभर के लिए ही की जा रही है।

3. शिक्षण सामग्री की तैयारी, वितरण और विश्लेषण : इस प्रक्रिया के अन्तर्गत शिक्षकों की मदद से बच्चों के स्तर के अनुसार शिक्षण सामग्री जैसे– नोट्स और वर्कशीट आदि को तैयार किया गया और शिक्षकों, अभिभावकों एवं भोजन माताओं की मदद से इस सामग्री को बच्चों तक पहुँचाया गया। साथ ही बच्चों को लिखने के लिए सामग्री, जैसे– कॉपी, पेंसिल, रबड़, शार्पनर आदि की व्यवस्था भी की गई। इस बात का ध्यान रखते हुए कि अभी बच्चों के पास उनकी पाठ्यपुस्तकें नहीं हैं, और अगर छात्रों को पाठ्यपुस्तकें मुहैया भी कराई जाती हैं तो भी पाठ्यपुस्तकों की भाषा को समझने में छात्रों

को मुश्किल आती है, इसलिए पाठ्यपुस्तकों के पाठों पर ही शिक्षकों द्वारा आसान भाषा में नोट्स तैयार किए गए और उन नोट्स के आधार पर वर्कशीट तैयार करके इस सामग्री को छात्रों तक पहुँचाया गया। इस प्रक्रिया में शिक्षक व्यक्तिगत रूप से ऑफ़लाइन माध्यम से हफ़्ते में एक बार छात्रों को नोट्स और वर्कशीट पहुँचाते हैं। छात्र नोट्स में देखकर अपना काम अपनी-अपनी कॉपी में करते हैं और साथ ही अपनी वर्कशीट पर भी कार्य करते हैं। सभी वर्कशीटों पर शिक्षक का नाम और फ़ोन नम्बर भी दर्ज किया गया, ताकि किसी भी तरह की दिक़्क़त या परेशानी आने पर छात्र फ़ोन के द्वारा शिक्षक की मदद ले सकें। एक हफ़्ते के बाद अभिभावकों या भोजन माता की मदद से छात्रों से वर्कशीट ले ली जाती है और उनको नए नोट्स और वर्कशीटें दे दी जाती हैं। छात्रों द्वारा काम की गई वर्कशीट को शिक्षक के द्वारा विश्लेषण करके, हफ़्तेभर बाद फिर अभिभावकों / छात्रों को लौटा दिया जाता है। इसी प्रकार यह प्रक्रिया निरन्तर चल रही है।

इस अभिमुखीकरण के बाद आधिकारिक रूप से सभी ब्लॉक में उप-शिक्षा अधिकारियों की मदद से फ़ाउण्डेशन के सदस्यों द्वारा कक्षा और विषय के अनुसार शिक्षकों का चुनाव किया गया। कोविड-19 के समय में सुरक्षा का ख़्याल रखते हुए छोटे-छोटे समूहों में अलग-अलग तिथि और समय पर शिक्षकों का वर्कशीट के बारे में अभिमुखीकरण किया गया और शिक्षकों के साथ मिलकर पहले हफ़्ते के लिए वर्कशीट का निर्माण किया गया। इस प्रकार पिछले तीन हफ़्तों में ज़िला स्तर पर तीन बार ऊपर लिखी प्रक्रिया को अपनाया जा सका है, जिसके द्वारा 90 प्रतिशत से अधिक छात्रों तक पहुँच बनाने में सफलता पाई जा सकी है।

एक ज़िम्मेदार शिक्षक के तौर पर बच्चों की शिक्षा के लिए अधिक-से-अधिक तरीक़े और नवाचार अपनाने की बात की गई। यह प्रक्रिया ज़िला प्रशासन और शिक्षा विभाग द्वारा प्रत्येक शिक्षक के लिए अनिवार्य की गई। इस प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप से करने और बच्चों के साथ किए गए प्रत्येक कार्य का ब्योरा / रिकॉर्ड रखने और इसका दस्तावेज़ीकरण करने के भी आदेश दिए गए, ताकि स्कूल खुलने के बाद भी इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विद्यार्थियों के साथ कक्षा शिक्षण को आगे बढ़ाया जा सके।

ऑफ़लाइन शिक्षा व्यवस्था हेतु अपनाई जाने वाली अन्य प्रक्रियाएँ

- ### ऑफ़लाइन और ऑनलाइन वर्कशीट निर्माण कार्यशाला

इस प्रक्रिया को अकादमिक तौर पर सुचारु रूप से चलाने के लिए वर्कशीट निर्माण पर बेहतर समझ विकसित करने हेतु अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन द्वारा हाइब्रिड मोड में दो दिन की कार्यशाला का आयोजन किया गया। इसके लिए प्रत्येक ब्लॉक में विषयवार शिक्षकों का चुनाव किया गया, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक ब्लॉक से 12 से 15 शिक्षक चुने गए, जो अपने विषयों में बेहतर समझ रखते थे। पहले दिन ब्लॉक संसाधन केन्द्र में कार्यशाला की गई, जिसमें शिक्षकों से विषयों

के सैद्धान्तिक पक्षों और बच्चों के स्तर आदि पर चर्चा करते हुए अलग-अलग विषयों पर वर्कशीट का निर्माण किया गया और दूसरे दिन ऑनलाइन माध्यम से शिक्षकों और संकुल समन्वयकों के साथ बातचीत करके, इन वर्कशीटों को प्रत्येक शिक्षक के द्वारा प्रत्येक बच्चे तक पहुँचाने की योजना बनाई गई। अब प्रत्येक हफ़्ते के आख़िरी दिन सभी ब्लॉकों में स्थित फ़ाउण्डेशन के सदस्यों की मदद से चयनित शिक्षकों द्वारा अपने-अपने ब्लॉक में बैठक करके अगले हफ़्ते के लिए विषयवार वर्कशीट का निर्माण किया जाता है और बच्चों द्वारा वर्कशीट पर किए गए कार्यों पर बातचीत करके इनका विश्लेषण किया जाता है और आवश्यकतानुसार इसे पहले से बेहतर करने का प्रयास किया जाता है।

वर्कशीट निर्माण पर शिक्षकों की बेहतर सैद्धान्तिक और व्यवहारिक समझ विकसित करने के लिए फ़ाउण्डेशन के सदस्यों और शिक्षकों द्वारा सन्दर्भ व्यक्ति की भूमिका निभाते हुए, सभी विषयों पर ऑनलाइन वेबिनार का आयोजन भी किया गया।

- साप्ताहिक वार्ता

इस प्रक्रिया के अन्तर्गत ब्लॉक स्तर पर प्रत्येक शिक्षक के द्वारा ऑनलाइन माध्यम का उपयोग करते हुए ऑफ़लाइन शिक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित अपने अनुभव और बच्चों की स्थिति को साझा किया जाता है और इसी के आधार पर वर्कशीट निर्माण व आगे की योजना बनाई जाती है।

इस प्रक्रिया की सफलता को देखते हुए ज़िला स्तर पर आधिकारिक रूप से ऑफ़लाइन शिक्षण प्रक्रिया को ही आगे बढ़ाया जा रहा है। जब तक स्कूल नहीं खुलते, यही प्रक्रिया जारी रहेगी। इस प्रक्रिया में लगातार अधिकारियों और शिक्षकों के सम्पर्क में रहने के कारण फ़ाउण्डेशन को ज़िला स्तर पर सभी के साथ बेहतर अकादमिक और व्यवस्थागत सम्बन्ध स्थापित करने में मदद मिल रही है। इसके साथ ही अधिकारीगण और शिक्षक भी इस बात को स्वीकार कर रहे हैं कि इस प्रक्रिया ने उनकी अकादमिक समझ को विकसित करने में सहयोग किया है और बच्चों के सन्दर्भों व पृष्ठभूमि को समझने में मदद की है, एवं अभिभावकों और समुदाय के साथ बेहतर सम्बन्ध स्थापित करने में सहयोग किया है, जिसके सकारात्मक परिणाम निकट भविष्य में मिलने की सम्भावना है।

मौअज़्ज़म अली 1993 से थिएटर, ड्रामा और कला के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। आपने नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा के थिएटर इन एजुकेशन में कलाकार के रूप में काम किया है। फ़िलहाल 2012 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में स्रोत व्यक्ति के रूप में जुड़े हुए हैं।

सम्पर्क : mozzam.ali@azimpremjifoundation.org

देहलीज़

कालू राम शर्मा

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

स्कूल का फ़र्श लगभग वैसा ही खुरदुरा था जैसा बरसों पहले था। फ़र्शियों के बीच की सन्धियाँ धूल से वैसी ही अटी थीं जैसा वह अपने बचपन में उनमें से धूल को उँगलियों की चिमटी में पकड़ बुरबुराकर आड़ी-तिरछी लकीरें खींचता था। बहुत कुछ बदला भी था। सड़क किनारे गुमटियाँ बन चुकी थीं जिनके चलते स्कूल का भवन ढँक चुका था। स्कूल के गेट के बग़ल वाला पेड़ अब विशाल हो चुका था। नदी पर पहले एक रपट थी। रपट के बग़ल में बड़ा-सा पुल बन जाने से रपट जीर्ण-शीर्ण हो चली थी। यह वही रपट थी जहाँ उसका बचपन घण्टों उदास हो सुबकता रहता था। वैसे तो पुल नदी पर आवाजाही के लिए बनाए जाते हैं, लेकिन पुलों का इस्तेमाल बेसहारा लोग पनाह पाने के लिए भी करते हैं। उस नवनिर्मित पुल के नीचे झुग्गियाँ बन चुकी हैं।

शिक्षिका ने चश्मे में से देखा लेकिन पहचान न सकी। कौन होगा? नौजवान ने क़दम बढ़ाए। शिक्षिका से मिलने को बेताब वह नौजवान आगे को बढ़ा। भावुकता उसके रोम-रोम से प्रकट हो रही थी। निकट पहुँचकर शायद उसने अपना नाम बताया होगा। बिजली की गति से शिक्षिका ने उस नौजवान को गले लगा लिया। वे एक दूसरे को देर तक निहारते हुए बातें करते रहे। दूर, बहुत दूर, अतीत के धुँधलके में खो गए।

बरसों पहले शिक्षिका ने उसे गले से लगा गोदी में उठा लिया था। हाथ-पाँव मैले, नाक बह रही थी। वह फटेहाल था। बिखरे बाल। महीनों से नहाया न होगा। हथेली की लकीरें धूल व मिट्टी से भरी हुई हैं। उसे देखकर शिक्षिका ने ऐसा कुछ भी नहीं सोचा और न

ही ऐसा कुछ कहा जो आमतौर पर सुनने को मिलता है। बल्कि जो कहा वह यह कि तुम प्यारे बच्चे हो!

पहली बार उस बालक ने स्कूल की देहलीज़ पर क़दम रखा था। शारीरिक रूप से गन्दा होने के बावजूद भी उस बच्चे में वह शिक्षिका बचपन को महसूस कर सकी थी। शिक्षिका में ममता की लहरें हिलोरे ले रही थीं, तभी तो उसे गले लगाकर गोदी में उठा लिया। शिक्षिका ने जब बालक को गोदी में उठाया तो वह सकपकाया। बालक को यक़ीन नहीं हुआ। प्यार-दुलार उसके शब्दकोश में शायद रहा ही नहीं।

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया
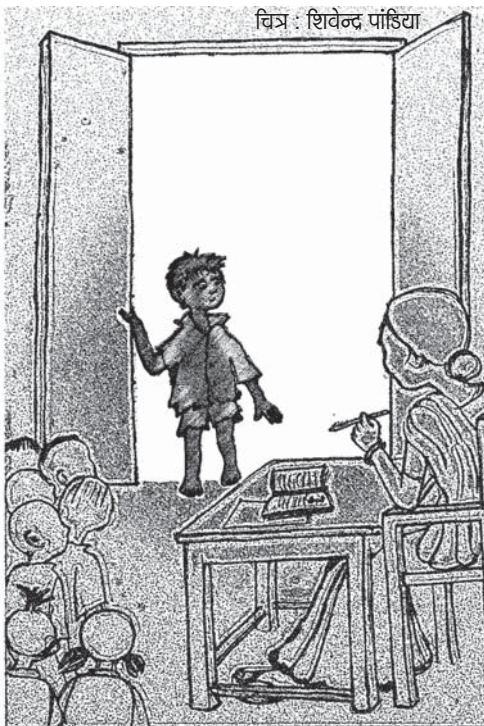
नाम में क्या रखा है। नाम राहुल, अमित या अरविन्द या कि नरेन्द्र, अनिल या मुकेश भी हो सकता था। इन नामों के भी कई बच्चे इन्ही हालात में होंगे। शिक्षिका सोचने लगी कि इसका नसीब ऊपर वाले ने तय नहीं किया है। नसीब तो उस बालक की पृष्ठभूमि ने ही तय किया है। अगर किसी बच्चे का जन्म धन्ना सेठानी या कि किसी अधिकारी की पत्नी की कोख से होता तो उसकी जेबों में काजू-किशमिश होते। शरीर व कपड़ों से बेबी क्रीम व टैल्कम पावडर की भीनी-भीनी ख़ुशबू फैलती। मेले से लौटते हुए उसके हाथों में खिलौने होते। वह चमचमाती कार की खिड़की में से झाँक रहा होता और उसकी माँ उसकी परवाह करते हुए कह रही होती, 'बाहर मत झाँको'।

जन्म देने वाली माँ दुनिया में नहीं रही। उसे पता ही नहीं कि माँ भी होती है। सूरज, मुश्किल से ग्यारह महीने का हुआ और उसकी माँ ने दूसरे बच्चे को जन्म देने के दौरान प्राण त्याग दिए। चाहे हम विज्ञान व टैक्नोलॉजी के ढोल पीटते रहें लेकिन इसकी रोशनी सूरज जैसे बच्चों को रोशन नहीं कर सकी। सूरज की माँ इस दुनिया से सूरज के भाई को जन्म देने के तुरन्त बाद ही चल बसी। माँ का पीछा जन्मे उस शिशु ने भी किया। सूरज दुनियावी अँधड़ के थपेड़ों में यहाँ-वहाँ टकराता-भटकता फिरता।

माँ की वंचना ने सूरज की दमक को छीन लिया था। वह तो दरअसल, माँ की वंचना का सबसे बड़ा शिकार हुआ है। ग्यारह महीने की उम्र में माँ का दामन छूट जाए, इसे वंचना का चरम ही कहा जाना लाज़िमी होगा।

वंचना, संसाधनों के अभाव का दूसरा नाम है। सूरज को अगर रोटी, कपड़ा और मकान नसीब होता तो वह इस हाल में नहीं होता। कितना आसानी से कह दिया जाता है कि 'ये तो इसी लायक़ हैं'। दुर्भाग्य से सूरज इसका एक उदाहरण बना था।

नदी के पश्चिमी तट पर एक कस्बा है। उर्ध्वप्रवाह में बसे गाँवों से अपनी पवित्रता को बचाकर नदी कस्बे की सीमा में प्रवेश करती है। बस यहीं से नदी की बर्बादी शुरू होती है। कस्बे की सीमा में प्रवेश कर रही नदी अब पूरी तरह से नाले में परिभाषित हो चुकी है। इसे 'गन्दा नाला' कहा जाता है। गन्दा नाला बन चुकी नदी ने सूरज और उसके जैसों को अपने

किनारे पनाह दी है। लेकिन बरसात के दिनों में बाढ़ अपने किनारे बसे लोगों पर कहर ढाती है।

नदी के पश्चिम की ओर बसे क़स्बे की निवासी शिक्षिका नदी के किनारे स्थित स्कूल में पदस्थ हैं। शिक्षिका ने स्कूल की देहलीज़ पर खड़े बालक को देखा। शिक्षिका ने उसे प्यार से स्कूल के अन्दर आने का इशारा किया। सूरज को पता नहीं कि स्कूल किसलिए होते हैं। वह भटकाव ही था जो शायद सूरज को यहाँ धकेलकर लाया था। स्कूल में वह पढ़ने के लिए तो पक्केतौर पर नहीं आया था। उसने महिला शिक्षिका की नज़रों को भाँपा होगा और उसे यक़ीन हुआ होगा कि स्कूल के अन्दर घुसने में कोई ख़तरा नहीं है।

भटकते हुए जब उसे लोगों की दुत्कार और झिड़कियाँ मिलतीं तो सूरज चिड़ियों, तितलियों और कीड़े-मकोड़ों के पीछे भागता। अचानक उसे रेत के ढेर में एक कुप्पीनुमा गड्ढा दिखाई दिया और वह देखने में मगन हो गया। अरे ये क्या! इस कुप्पीनुमा गड्ढे में तो कोई कीड़ा दुबका हुआ है। उसे बाहर निकालकर अपनी मुट्ठी में बन्द करके चल देता। झाड़ियों में, पत्तियों में इल्लियों को देखता फिरता।

कहते हैं कि देहलीज़ को उलाँघना इंसान के जीवन को बदल देता है। देहलीज़ को उलाँघना किसी को वंचना का शिकार भी बना देता है। या कि देहलीज़ को उलाँघना किसी को वंचना से मुक्ति की राह दिखा देता है। शिक्षिका ने उसके सिर को सहलाया व उसे गोदी में उठा लिया, और बोलीं, "यहाँ रोज़ आया कर।"

"कहाँ रहता है रे?" सूरज ने नज़र मिलाए बग़ैर अपने सिर को महज़ खुजाया। वह बुदबुदाया, "...यहीं पर!" शिक्षिका हँस दीं। इससे अधिक शिक्षिका पूछने का साहस नहीं कर सकीं। शिक्षिका की हँसी में मानो दुलार हो। हँसी में व्यंग्य नहीं था। शिक्षिका ने कहा, "तुम एक अच्छे बच्चे हो!" यह सुन सूरज शिक्षिका की ओर देखने लगा। इतना कहकर उन्होंने उसे बेतरतीब बैठे बच्चों के साथ बैठा दिया व भोजन माता को उसे खाना खिलाने का इशारा किया। सूरज गपागप खाता गया और खाता ही गया। मानो वह कई दिनों-हफ़्तों का भूखा हो। उसने पूरी चार चपातियाँ खा लीं। खाने के बाद उसके चेहरे पर ताज़गी का भाव आया जो अमूमन किसी भी भूखे के चेहरे पर आता है।

शिक्षिका मन ही मन सोचती रहीं– 'माँ के पल्लू से सरककर बच्चा स्कूल में आता है। उसे स्कूल इसीलिए अच्छा नहीं लगता क्योंकि वहाँ माँ का पल्लू नहीं होता। मैं माँ का पल्लू तो नहीं बन सकती लेकिन प्यार तो दे सकती हूँ। उसे अपनापन मिले। यह तो हर बच्चे की ज़रूरत है चाहे वह किसी भी पृष्ठभूमि का हो। मैं बच्चों की दुनिया को शिक्षा से सराबोर तभी कर सकती हूँ जब मैं उन्हें प्यार व दुलार दे सकूँ। दुनिया को बदलने के पहले अपने-आप को बदलना होता है। आप कुछ और हैं और दुनिया को बदलने चल पड़ें, यह सम्भव नहीं।' शिक्षिका अपनी सोच में से बाहर निकल ही रही थीं कि सूरज स्कूल की देहलीज़ को पार कर चुका था। शिक्षिका उसके पीछे गईं, उसे रोका और कुछ कहा।

रोज़ाना ही सूरज स्कूल में आने वाला सबसे पहला बच्चा होता। शायद वह रोज़-रोज़ भूख से मुक्ति के लिए ही स्कूल आने लगा था। सूरज के खाते से उसकी माँ उसके जन्म के ग्यारह महीने के बाद ही चल बसी थी। सूरज की माँ ने दम तोड़ा तो पिता पलायन कर दूर चला गया। उसका किसी को कुछ पता नहीं। अगर बच्चे के सिर से पिता का साया उठ जाए तो वह वंचना उतना कहर नहीं ढाती जितना माँ की वंचना। उसे पता नहीं कि उसकी माँ कैसी थी। उसने सूरज को ग्यारह महीने ज़रूर वह प्यार दिया होगा जो दुनिया की कोई भी माँ अपनी सन्तान को देती है।

शिक्षिका ने सूरज के जीवन को और टटोला तो पाया कि वह अपनी असहाय बूढ़ी दादी के साथ रहता है। पूर्वी तट पर नदी के किनारे एक छप्पर में दादी-पोता रहते हैं। कड़कड़ाती

ठण्ड में एक बार बड़ा-सा काला साँप उसकी झोंपड़ी में घुस आया तो उन दोनों को अँधियारी रात में ही बाहर का रास्ता नापना पड़ा। तब उन दोनों ने पुलिया के नीचे कई रातें गुज़ारीं। जब सूरज चार बरस का हुआ तो दादी ने उसे पेट पालने का तरीक़ा बताया जिसे 'भिक्षावृत्ति' कहा जाता है।

शनिवार की सुबह से ही सूरज, ताँबे के लोटे में एक अण्डाकार-चिकने पत्थर को मीठे तेल में डुबोकर कस्बे के बस स्टैण्ड पर खड़ा हो जाता। 'जय शनि देव'। शनि देव का भय, लोगों को लोटे में सिक्के चढ़ाने को मजबूर करता। पूरे दिन यही क्रम चलता रहता। जैसे ही शनि देव के लोटे में कुछ पैसा आ जाता वह होटल से कचौरी लेता। एक कचौरी को काग़ज़ की पुड़िया बनाकर अपने मैले-कुचेले झोले में रख लेता। दूसरी कचौरी ख़ुद खा लेता। पुड़िया वाली कचौरी को झट से दौड़कर अपनी दादी को दे आता। एक बार उसने अपनी ही झुग्गी के लड़के को कचौरी की पुड़िया दादी को देने के लिए दी थी। वह पुड़िया दादी तक पहुँची ही नहीं। तब से सूरज ने तय कि वह ख़ुद ही दादी को कचौरी देने जाएगा।

शिक्षिका को सूरज के शनि देव वाले क़िस्से की भनक तब चली, जब उन्होंने देखा कि वह शनिवार को स्कूल से ग़ायब रहता है। उन्हें यह बात देर से पकड़ में आई थी। हुआ यह कि शिक्षिका जब हाज़िरी ले रही थीं तो नाम पुकारे गए। 'सूरज' के नाम पर आकर शिक्षिका रुकीं। उन्होंने कक्षा में नज़रें घुमाईं। 'क्यों नहीं आया सूरज आज?' एक लड़की ने चुगली के अन्दाज़ में कहा, "वो तो शनि महाराज माँगने गया है।" शिक्षिका यह सुनकर दिख तो शान्त रही थीं लेकिन अन्दर से वह क्रोधित थीं। उन्हें भिक्षावृत्ति से चिढ़ जो थी— 'आने दो अब सूरज को'।

शनिवार व सोमवार के बीच रविवार आता है। रविवार को सूरज, दक्षिण दिशा में नदी के किनारे देवी के मन्दिर के अहाते में उसी लोटे में देवी को विराजमान करता है। वह ताँबे के लोटे को पुलिया के नीचे डबरे के पानी में मिट्टी से माँज लेता। शनि देव बने उस अण्डाकार चिकने पत्थर को मिट्टी से रगड़कर चिकनाई धो डालता। अब वह लोटे में रखे अण्डाकार पत्थर पर कुमकुम बुरबुरा देता। सड़क के किनारे लगे लाल कनेर का एक फूल तोड़कर उसपर रख देता व मन्दिर में पहुँच जाता। शनि देव नामक अण्डाकार पत्थर सूरज के विवेकी प्रयत्न से देवी में परिवर्तित हो जाता। उसने उस पैटर्न को पकड़ लिया था कि लोगबाग जिन्हें श्रद्धालु कहा जाता है, या तो सुबह-सुबह आते हैं या शाम को आरती के समय। इन दोनों वक़्त के बीच वह यहाँ-वहाँ भटकता रहता।

सोमवार को सूरज स्कूल में आया तो शिक्षिका ने हाज़िरी भरकर उससे बात की। वह उसपर पहले तो झल्लाईं। उन्होंने सूरज को सीधे शब्दों में बोला, "क्यों रे, तू माँगता है! मँगते कहीं के! ये तू क्यों करता है रे?" सूरज के पास कोई जवाब नहीं था। उसे तो इतनाभर पता था कि उसे पैसे मिल जाते हैं। वह बोला, 'नहीं।' शिक्षिका ने झल्लाहट को दरकिनार किया और उसे प्यार से समझाया, "पैसे माँगना कोई अच्छा काम नहीं है। क्यों किसी के सामने हाथ फैलाता है रे?" यह कहते हुए वह रुआँसी हो चलीं। लेकिन उन्होंने सूरज को यह ज़रूर कहा कि तुम एक अच्छे बच्चे हो!

शिक्षिका भारी द्वन्द्व से गुज़र रही थीं। 'अच्छा तेरी दादी के लिए भी स्कूल से ही रोटी ले जाया कर।' शिक्षिका सूरज को हड़काने के बजाय हौसला देने लगी थीं। शिक्षिका को सूरज के इस काम के साथ समझौता करना ही ठीक लगा। मानो उन्होंने उसे मौन सहमति दे दी। हालाँकि वह सहमति न देतीं तो भी अंजाम पता था।

सूरज अब बच्चों में घुलने-मिलने लगा था। उसकी दोस्ती भी होने लगी थी। लेकिन उसकी किताबी पढ़ाई में दिलचस्पी नहीं रहती। वह स्कूल में तरह-तरह के करतब करता। कभी वह किसी झाड़ी में से चिड़िया को पकड़

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

फलाँ पर काबर का है और फलाँ कौए का...। शिक्षिका पहले तो दरवाज़े की ओट से यह सब देखती रहीं। आख़िर शिक्षिका अन्दर गईं तो सबकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई।

"ये क्या लगा रखा है?" शिक्षिका का अचानक आना और उस कारगुज़ारी को देखना बच्चों में भय पैदा कर गया। पूरी कक्षा सहम गई। चुप्पी थी कक्षा में। फ़र्श पर फैली चीज़ों को सूरज झटपट समेटने लगा तो शिक्षिका ने कहा, "रुको।" और सूरज के हाथ वहीं थम गए। फ़र्श पर दोनों हाथ टिकाकर बैठा का बैठा ही रह गया सूरज।

"कौन लाया?" डर के मारे कक्षा के बच्चों ने बोल दिया, "सूरज।" सूरज और अधिक सहम गया था।

शिक्षिका की नज़रें फ़र्श पर अटकी की अटकी रह गईं। वह झुकीं और एक-एक चीज़ को देखने लगीं। "वाह! वाह! वाह! क्या बात है रे सूरज!"

लाता और फिर उसके परों को रंगकर छोड़ देता। कभी वह तितलियों के पीछे 'तितली' बन भागता फिरता। तितली को पकड़ता और फिर उसे उँगलियों की चिमटी में पकड़ता और उससे बातें करता। उसके मैले झोले में किताब-कॉपियों के अलावा रंग-बिरंगे कंकड़-पत्थर, चिड़ियों के पर, नदी के किनारे मिलने वाले छोटे-छोटे शंख व सीपियाँ, कंचे आदि होते। कक्षा में जब शिक्षिका नहीं होतीं तो वह उनको फ़र्श पर बिछा देता। काग़ज़ से हवाई जहाज़ से लगाकर मेंढक व कई तरह के फूल बनाता। पास के खलिहान से ज्वार के सरकण्डों को लाकर उनसे तरह-तरह के खेल-खिलौने बनाना उसका शग़ल था।

एक बार तो सूरज को रंगे हाथों शिक्षिका ने पकड़ ही लिया आख़िर। सूरज और उसके दोस्त कक्षा में आसपास के कंकड़-पत्थर, शंख, चिड़ियों के पर और न जाने क्या-क्या फैलाए बैठे थे। वह यह भी बताए जा रहा था कि

सूरज ने एक लम्बी साँस ली। कमरे की दीवारें सूरज द्वारा इकट्ठे किए चिड़ियों के परों, शंख-सीपियों और तमाम चीज़ों से सजा दी गईं। यह सूरज का प्रदर्शन जो था। उसे इस बात की तसल्ली जो थी कि उसने जो भी कुछ इकट्ठा किया था उसे स्कूल में जगह मिली है।

मन्दिर के अहाते में चाँदनी का पेड़ लगा था। उसकी पत्तियों को वह अकसर टटोलता रहता था। बात बरसात के दिनों की है। चाँदनी की पत्तियों को कुतर रही एक बड़ी-सी इल्ली को सूरज पकड़कर स्कूल में ले आया। उसे हाथ में लेकर वह नाच रहा था। दूसरे बच्चे डर रहे थे। सूरज जता रहा था कि वह कितना साहसी है। सूरज बोला, "डरने का नहीं! ये काटती नहीं। देखो! अगर काटती तो मेको बी काटती। देखो, ये तो भोत सीदी है।" बच्चों का डर कम

होता जा रहा था। उसने दोस्तों से कहा, "चलो रे, अपन इल्ली को पालते हैं।" उसने बच्चों से कहा कि इल्ली को पालेंगे तो वो तितली बनेगी।

वह झट से एक ख़ाली खोखा ले आया। खोखे में इल्ली को रख दिया। उसमें चाँदनी की पत्तियाँ तोड़कर डाल दी गईं। सूरज ने भटकाव के दौरान कई तरह की इल्लियाँ देखी थीं। चाँदनी के पेड़ पर इल्ली का सूरज को दिखना उसके भटकाव के दौरान मिली नज़रों का ही नतीजा था। सूरज ने चेताया कि इल्ली को कोई भी ज़ोर से नहीं दबाएगा वरना इसका कचूमर बन जाएगा। सूरज रोज़ इल्ली को देखता। वह रोज़ाना याद से ताज़ी पत्तियाँ इल्ली के लिए लाता और उस डिब्बे में रखता। इल्ली को सहलाता और फिर अपने काम में लग जाता।

एक दिन सूरज ने खोखे को खोला और उसमें से उँगलियों की चिमटी में फड़फड़ाती तितली को निकाला। बच्चों की ख़ुशियाँ हिलोरे लेने लगीं। उसने गीत-सा गाया– 'इल्ली बन गई तितली रे...।' और फिर क्या था! शिक्षिका भी गीत में शामिल हो गईं। सूरज यहाँ-वहाँ से कई सारी चीज़ों को इकट्ठा करके स्कूल में लाता रहता। सूरज नारियल की नरेटियों को इकट्ठा कर उनमें छेद करता और गर्मी के दिनों में पेड़ की डालियों पर बाँधकर उनमें पानी भर देता। चिड़ियाँ पानी पीने को आतीं। सूरज के रहते हुए यह स्कूल का एक खेल बन चुका था। एक दिन सूरज घायल बुलबुल को स्कूल में ले आया कि शायद उसे बचा सके। कमरे में एक बड़े से खोखे में दाना-पानी रखकर घायल बुलबुल को छोड़ दिया। अगले दिन वह ठीक हो गई और उसने उसे उड़ा दिया।

शिक्षिका सूरज का ख़्याल अधिक रखतीं। इस बात का भान सूरज को था। साल-दर-साल बीतते गए। अब सूरज के उड़ने का वक़्त आ चुका था। उसे स्कूल की देहलीज़ को फिर से लाँघना था। सूरज की जीवनरूपी पतंग अब हवा में थमती दिख रही थी। स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के बाद सूरज शहर को चला गया।

सूरज बरसों बाद शिक्षिका से मिलने को आया था। देर तक दोनों अतीत में खोए रहे। नौजवान सूरज के सिर पर शिक्षिका हाथ फेरते हुए बोलीं, "तुम प्यारे बच्चे थे!"

कालू राम शर्मा ने लगभग तीन दशक तक शैक्षिक संस्था एकलव्य और विद्या भवन सोसायटी के साथ काम किया है। वे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शिक्षा, विज्ञान, पर्यावरण और सामाजिक सरोकारों के विषयों पर निरन्तर लिखते रहते हैं। आपने *बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश* व *खोजबीन* पत्रिकाओं का सम्पादन किया है। आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनमें *खोजबीन का आनन्द, अण्डे ही अण्डे, छोटे जीवों से जान पहचान* और नव साक्षरों के लिए लिखी किताबें प्रमुख हैं। विगत 9 वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में काम कर रहे हैं।

सम्पर्क : kr.sharma@azimpremjifoundation.org

सन्दर्भ और शिक्षा

यशवेन्द्र सिंह रावत

यह लेख दो बच्चों की स्कूल के सन्दर्भ के साथ अन्तःक्रिया की केस स्टडी प्रस्तुत करता है। लेख बच्चों व उनके सीखने व सफल होने की सम्भावनाओं का उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के आधार पर आकलन करने पर तीखे सवाल उठाता है। वह यह मुद्दा भी उकेरता है कि बच्चों पर नकारात्मक टिप्पणियों के प्रभाव के प्रति ढाँचे में संवेदनशीलता नहीं है।

लेखक प्राइवेट व सरकारी स्कूलों के सन्दर्भ में एक और सामान्य प्रचलित मान्यता पर प्रश्न उठाता है। प्रश्न यह है कि क्या बेहतर सुविधा ही बेहतर शिक्षा को सुनिश्चित कर देती है? सं.

किसी भी बच्चे का जन्म कहाँ हो कहाँ नहीं, इस बात को निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह नैसर्गिक प्रवृत्ति का हिस्सा होता है। परन्तु इस बात को स्वीकारने के बावजूद समाज द्वारा किसी बच्चे के जन्म को लेकर बहुत-सी बातें कही जाती हैं, जैसे– यह कहना कि किसी बच्चे का जन्म किसी ख़ास सन्दर्भ में बेकार ही हुआ या ऐसा उसके साथ क्यों हुआ कि उसने किसी ख़ास सन्दर्भ में जन्म लिया या वह वहाँ / उस सन्दर्भ में पैदा होता / होती, तो अच्छा / बुरा होता, आदि। हर व्यक्ति किसी ख़ास सन्दर्भ में जन्म लेता है, यह सन्दर्भ, उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, उसके व उसके आसपास के समाज के साथ बुने हुए ताने बाने आदि से बनता है। किसी व्यक्ति के सन्दर्भ में शिक्षा का महत्त्व रहता है और किसी के सन्दर्भ में 'जितने हाथ उतनी कमाई' का सिद्धान्त और किसी के सन्दर्भ में ये दोनों या इनके अलावा किसी और बात का महत्त्व रहता है।

ऐसे ही कुछ सन्दर्भ होते हैं विद्यालयी शिक्षा पाने वाले बच्चों के और शिक्षा प्रदान करने वाले विद्यालयों के। इन सन्दर्भों के चलते कई तरह की सामाजिक मान्यताएँ बच्चों के सीखने-सिखाने और उनके भविष्य को लेकर बनती-बुनती दिखाई देती हैं। इन मान्यताओं का असर बच्चे के सीखने पर तो पड़ता ही है, परन्तु साथ ही वह इन मान्यताओं के चक्रव्यूह में फँसकर कुछ समय पश्चात इन्हें सत्य मानने लगता है और इसी सन्दर्भ से आसपास की घटनाओं को देखने बरतने लगता है। हम यहाँ कुछ बच्चों और कुछ विद्यालयों के सन्दर्भों को रखकर अपनी बात आगे बढ़ाएँगे। इन सन्दर्भों को संकीर्णता व सीमितता में न देखा जाए अपितु पूरे विचार की बुनावट के एक कारक के तौर पर देखा जाए।

मोनिका का सन्दर्भ

मोनिका एक ग्यारह वर्ष की लड़की है, वह अपने परिवार के साथ शहर में रहती है। उसके परिवार में तीन सदस्य– उसकी माँ, भाई और वह स्वयं– थे जो कि अभी हाल ही में बढ़कर चार हो गए क्योंकि उसके भाई ने शादी कर ली और अब उसकी भाभी भी परिवार का हिस्सा है। मोनिका का भाई मज़दूरी करता है और उसकी माँ एवं मोनिका चाय का ठेला लगाते हैं जिससे आसपास के ट्रक ड्राइवर और बिल्डिंग बनाने वाले चाय लेते हैं। मोनिका के परिवार के पास एक छोटा-सा कमरा और बग़ल में बहता हुआ

गन्दा नाला है, यह नाला वहाँ रह रहे सभी लोगों के लिए एक खुला शौचालय है। अभी तक मोनिका, उसकी माँ और भाई एक साथ ज़मीन पर पतली-सी चादर लगाकर सोते थे, परन्तु भाई की शादी के बाद माँ ने उसके भाई और भाभी को वह कमरा सोने के लिए दे दिया। अब मोनिका और उसकी माँ अपनी रात ठेले के बग़ल में ही सोकर बिताते हैं। जब कभी बारिश, आँधी आदि आती है तब वे दोनों आसपास की दुकानों की सीढ़ियों पर बैठकर या सोकर रात बिताते हैं। मोनिका के दैनिक जीवन में स्कूल जाना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। वह लगभग दो किलोमीटर चलकर एक सरकारी विद्यालय में

हीरा धुर्वे

जाती है, वह कक्षा सात की छात्रा है। उसकी पढ़ाई की लगन वहाँ की शिक्षिकाओं द्वारा सराही जाती है, यहाँ तक कि एक शिक्षिका ने उसकी बारहवीं कक्षा तक की पढ़ाई के ख़र्चे की ज़िम्मेदारी भी ले ली है।

मोनिका को चाय बाँटना पसन्द नहीं है क्योंकि जिन्हें वह चाय बाँटती है वे उसे कई बार ग़लत तरीक़े से या तो देखते हैं, छूते हैं या ग़लत टोन में बोलते हैं। वह अपनी माँ से भी बोलती है तो उसकी माँ ठेले से ही चिल्लाकर भड़ास निकाल लेती है। पर काम तो करना ही है। कभी-कभी माँ इसी बात को लेकर मोनिका पर भी चिल्ला देती है या फिर दो-चार थप्पड़ भी जड़ देती है। वो कहती है, 'तेरे बदले एक लड़का होता तो ये सब सुनने को नहीं मिलता और काम में भी मदद ज़्यादा हो पाती। पता नहीं पिछले जन्मों में क्या करम किए थे जो ये सब झेलना पड़ रहा है।' मोनिका को विद्यालय में आना पसन्द है क्योंकि वहाँ पर उसे कुछ साथी मिलते हैं जिनके साथ वो बातें कर लेती है और खेल लेती है। साथ ही शिक्षिकाएँ भी उसे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। मोनिका इस बात को लेकर बहुत ख़ुश रहती है कि उसे बहुत आगे तक पढ़ने को मिलेगा। परन्तु एक बात उसे काफ़ी खलती है वो है, शिक्षिकाओं द्वारा किसी भी बाहरी व्यक्ति / अफ़सर के आने पर या तो उनके सामने बुलाकर या फिर उनको कक्षा में लाकर उसे दिखाना और बताना कि, 'ये है मोनिका जिसके बारे में मैं बात कर रही थी। ग़रीब है, इसकी माँ ठेला लगाती है भाई की शादी हो गई तो इसे और इसकी माँ को ठेले के पास ही सोना पड़ता है। पर पढ़ाई में अच्छी है।' उसे लगता है कि जो शिक्षिका उसकी पढ़ाई का ख़र्चा वहन कर रही, है क्या वो दया के भाव के चलते ऐसा कर रही हैं या उन्हें वाक़ई उसपर गर्व है और वह चाहती हैं कि मोनिका आगे पढ़े और जीवन में कुछ बनकर दिखाए। इसलिए उसके चेहरे पर एक शिकन और सन्नाटा हमेशा बना रहता है।

जमाल का सन्दर्भ

जमाल अभी 8 साल का है व ग्रामीण परिवेश में रहता है। उसके परिवार में छह सदस्य हैं, दादा-दादी, मम्मी-पापा, दीदी और वह स्वयं। परिवार की आय ठीक-ठाक है मम्मी-पापा और दादा मिलकर परचून की दुकान चलाते हैं। एक चार कमरों वाला मकान है, मोटर साइकिल है। जमाल के लिए नए-नए खिलौने, कपड़े आते रहते हैं, यहाँ तक कि घर में सभी को खाने से पहले पूछा जाता है कि वो क्या खाएँगे। जमाल भी एक विद्यालय में कक्षा 4 में पढ़ता है। जमाल को भी पढ़ना बहुत पसन्द है। उसकी क्लास

के सभी लड़के उसके दोस्त हैं एक रोहित को छोड़कर। रोहित, जमाल से इसलिए बात नहीं करता, क्योंकि उसे लगता है कि जमाल के घर पर गाय / भैंस का मीट बनाया और खाया जाता है। जमाल ने बहुत बार दूसरे दोस्तों के ज़रिए रोहित को बताया कि ऐसा नहीं है, उसके घर पर मुर्ग़ी और बकरा ही बनता है जबकि जमाल केवल अण्डे पसन्द करता है। पर फिर भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। जमाल के दोस्तों को कभी खेलने का मन करता है तो वे उससे कहकर टीचर को खेलने के लिए बोलते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि विद्यालय में जमाल के टीचर उसे पसन्द करते हैं और ऐसा उन्हें इसलिए लगता है कि क्लास में लगभग सभी बच्चों को डाँट फटकार और यहाँ तक कि मार भी पड़ती है, परन्तु जमाल के साथ सभी टीचर प्यार से बात करते हैं।

जमाल के शिक्षक किसी भी अधिकारी या अन्य बाहरी व्यक्तियों से यह कहकर उसका परिचय करवाते हैं कि, 'ये बच्चा बहुत अच्छा है पढ़ाई में। इसके माँ-बाप चाहें तो किसी अँग्रेज़ी मीडियम के प्राइवेट स्कूल में इसे पढ़ा सकते हैं, पर पता नहीं क्यों उन्होंने इसे यहाँ रखा है?' ये सब देख सुन कर जमाल थोड़ा अजीब महसूस करता है और सोचता है कि शिक्षक ऐसा क्यों बोलते हैं? ऐसा क्या है जिसके कारण मुझे डाँट या मार नहीं पड़ती, जबकि मैं भी कभी-कभी ग़लतियाँ करता हूँ? क्या ये स्कूल मेरे लिए नहीं है? मेरे पिता ने मुझे इस स्कूल में क्यों डाला? यहाँ के बच्चों में, मुझमें और जो मेरे बग़ल के प्राइवेट स्कूल में बच्चे पढ़ते हैं, उनमें क्या फ़र्क़ है? इन्हीं प्रश्नों की उलझन में वह न तो अन्य बच्चों के साथ ज़्यादा खेल पाता है और न ही किसी से भी अपनी उलझन बता पाता है।

इस तरह सतीश, राखी, डेविड, मरियम आदि के भी अपने-अपने ग्रामीण व शहरी विद्यालयों से सम्बन्धित सन्दर्भ व प्रश्न हैं जिनसे वे रोज़ाना जूझते हैं।

चित्र : हीरा धुर्वे

क्या सन्दर्भ और शिक्षा के बीच कोई सम्बन्ध होता है? यानी, 'सन्दर्भ बेहतर (आधारभूत सुविधा प्राप्त) होने से किसी बच्चे में बेहतर शिक्षा पाने की दक्षता ज़्यादा होती है', ऐसा कोई दावा किया जा सकता है? क्या किसी व्यक्ति के सन्दर्भ, उसे किसी ख़ास तरह के स्थान से शिक्षा पाने का आधार हो सकते हैं? शायद इनके उत्तर मिले-जुले आएँ लेकिन इनको समझने के लिए हमें कुछ बातों को केन्द्र में रखना होगा जैसे :

1. हर बच्चा सीख सकता है;
2. हर बच्चे की सीखने की अपनी गति व तरीक़ा होता है;
3. कुछ बच्चों की शिक्षा से सर्व शिक्षा की ओर बढ़ना राष्ट्र निर्माण का महत्त्वपूर्ण कारक है; और
4. सार्वजनिक शिक्षा के संस्थान (सरकारी विद्यालय) की अवधारणा समानता, सम्प्रभुता जैसे संविधान की अपेक्षाओं के मूलभूत विचारों के अनुरूप ही बुनी जाती है।

अभी के लिए यदि इन चार बातों पर ही ध्यान दें तो हम पाएँगे कि ऊपर पूछे गए सवालों का

औचित्य समाप्त हो जाता है। परन्तु अभी की शिक्षा व्यवस्था को देखने पर ऐसा प्रतीत नहीं होता। अपने पूर्व के अनुभवों में मैंने बहुत से बच्चों को पढ़ाने का कार्य किया जिसमें शहर के नामचीन स्कूल से लेकर ग्रामीण क्षेत्र के दूरस्थ सरकारी व प्राइवेट विद्यालय भी शामिल हैं। इस आधार पर कुछ स्कूलों के सन्दर्भ भी यहाँ लिखने ज़रूरी जान पड़ते हैं। आज के सन्दर्भों में इन सवालों को समझने में ये सन्दर्भ हमारी मदद ही करेंगे।

स्कूल अ : शहर का जाना माना प्राइवेट स्कूल जहाँ पर प्रवेश दिलवाने के लिए अभिभावकों को नाकों चने चबाने पड़ जाते हैं। और क्यों न हो, स्कूल का नाम जो है। इस विद्यालय में प्रवेश कक्षा 1, 5 और 8 में होता है। प्रवेश हेतु जो प्रक्रिया विद्यालय अपनाता है उसमें लिखित परीक्षा, बच्चे के द्वारा पिछली कक्षा में प्राप्तांक और अभिभावकों के साथ साक्षात्कार के आधार पर प्रवेश दिया जाता है। अभिभावकों का अँग्रेज़ी बोलना और समझना अनिवार्य है। हर वर्ष की परीक्षाओं के बाद कक्षा 5 और 8 के बच्चों की छँटनी की जाती है जिसमें बच्चों द्वारा प्राप्तांकों को आधार बनाया जाता है। कक्षा 9 की पढ़ाई दिसम्बर माह में समाप्त हो जाती है और उसके बाद कक्षा 10 का कोर्स अप्रैल माह तक पूरा, बाक़ी के महीनों में केवल एग्ज़ाम होते हैं और सुधार कार्य होता है। बच्चों को बोर्ड पैटर्न पर ख़ूब घिसा जाता है और परिणाम कि सभी बच्चों के 90% से अधिक अंक आते हैं। और इसके साथ ही स्कूल का नाम और फिर प्रवेश प्रक्रिया। इस पूरे प्रकरण में अभिभावकों की जेब तो ढीली होती ही है साथ ही बच्चों में भी दम्भ का भाव बनने लगता है जो उनके व्यक्तित्व व व्यवहार पर कभी-कभी बुरा प्रभाव छोड़ता है।

चित्र : हीरा धुर्वे

स्कूल ब : एक सरकारी विद्यालय जहाँ शिक्षकों की संख्या तीन है और बच्चे लगभग 150। ये बच्चे आसपास के सामान्य वर्ग के बच्चे नहीं हैं, बल्कि जीवन से संघर्ष करती परिस्थितियों के मारे हैं। इनमें से अधिकतर काम करते हैं और हर रोज़ रात को अपने माता-पिता के झगड़े को भी बर्दाश्त करते हैं। इस विद्यालय में बच्चों का प्रवेश पूरे साल चलता रहता है और शिक्षकों से यह अपेक्षा रहती है कि सभी बच्चे अपनी आयु के अनुसार कक्षा में पढ़ें। परन्तु तीनों शिक्षक अपनी ज़िम्मेदारी को समझते हुए पूरी तल्लीनता से बच्चों के साथ सीखने-सिखाने में जुटे रहते हैं। उनको सभी बच्चों के माता-पिता के बारे में पता है और उनसे मिलने का समय वे महीने में एक बार तो निकाल ही लेते हैं। माता-पिता का भी कहना रहता है कि देख लो, पढ़ेंगे तो ठीक वरना हमारे साथ काम तो कर ही रहे हैं। शिक्षकों के पूछने पर वे कहते हैं कि हमें भी तो किसी ने पहली बार ही पढ़ाया था, हम कौन-सा पेट से पढ़कर आए थे लेकिन हम यहाँ तक पहुँच ही गए। ये आज की पीढ़ी है हमसे भी आगे निकलेगी। बच्चों को भी स्कूल आना पसन्द है क्योंकि यहाँ उनको छूट है अपनी बात कहने की, अपनी पत्रिका बनाने की, किसी तरह की ज़िम्मेदारी को निभाने की, और एक सवाल को कई सवालों के सन्दर्भों में बुनने की।

विद्यालयों के ऐसे सन्दर्भ देकर कतई प्राइवेट और सरकारी विद्यालयों की तुलना की कोशिश नहीं की जा रही, अपितु इस बात को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है कि केवल बेहतर सुविधाओं से बेहतर शिक्षा नहीं होती। उसके साथ शिक्षा को उसके संवैधानिक उद्देश्यों से जोड़कर देखना भी ज़रूरी होता है। हम ऊपर रखे गए कुछ सिद्धान्तों में बच्चे की जगह यदि व्यक्ति कर दें तो हर व्यक्ति अलग होता है, उसकी सोच, उसके सीखने की गति व तरीक़ा आदि अलग होते हैं तो फिर बच्चों की शिक्षा में हम इस तथ्य को क्यों भूल जाते हैं और सभी को एक ही तरीक़े से सीखने के लिए विवश करते हैं। किसी का भी किसी सन्दर्भ में पैदा होना यह निर्धारित नहीं कर सकता कि वह आने वाले समय में पढ़ेगा / पढ़ेगी या नहीं, या फिर वह चोर / पुलिस बनेगा / बनेगी। मुद्दा है सही शिक्षा के मौक़े उपलब्ध करवाने का, मुद्दा है सही शैक्षिक लक्ष्यों को पाने का, मुद्दा है सही ग़लत के भाव से निकलकर उचित का चुनाव करने का। आज की तारीख़ में पढ़े-लिखे इज़्ज़तदार चोर भी हैं और बिना पढ़े-लिखे बदनाम नागरिक भी।

इज़्ज़तदार चोरों में कई डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, प्राइवेट स्कूल मालिक आदि आते हैं जो केवल पैसा कमाने के लिए शिक्षा लेते हैं और उस शिक्षा का समाज पर दम्भ झाड़ने के लिए नामचीन, रट्टू विद्या पर आधारित, घमण्ड की शिक्षा देने वाले विद्यालय होते हैं। वहीं दूसरी ओर ऐसे विद्यालय भी हैं जो पहले तो सभी के लिए हुआ करते थे, पर आज उन्हें ख़ास तरह के लोगों के बच्चों के लिए ही देखा जाने लगा है। परन्तु इस तरह की छाप के साथ वे देश को बेहतर नागरिक देने के लिए प्रतिबद्ध हैं। मानसिकता को बदलने और शिक्षा के सही मायनों को समझने के लिए समाज, शिक्षक और तंत्र को एक होना होगा तभी बेहतर शिक्षा सभी की शिक्षा हो पाएगी।

यशवेन्द्र सिंह रावत ने प्रारम्भिक शिक्षा में शिक्षक के तौर पर दस वर्षों तक कार्य किया। आप शिक्षक-प्रशिक्षण व सामाजिक सरोकार से जुड़े मुद्दों पर पिछले ग्यारह वर्षों से कार्य कर रहे हैं। गणित विषय से सम्बन्धित विभिन्न मान्यताओं, सन्दर्भों और सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं पर कार्य करना आपको रुचिकर लगता है। आप विगत दस वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के साथ जुड़े हैं।

सम्पर्क : yashvendra@azimpremjifoundation.org

क्या स्कूल पुस्तकालय पढ़ने–लिखने और सीखने–सिखाने का अहम हिस्सा है ?

आराधना गुप्ता

पुस्तकालय के बिना किसी भी अच्छे स्कूल की कल्पना नहीं की जा सकती है, क्योंकि ये विद्यार्थियों के लिए पढ़ना-लिखना और सीखने-सिखाने का ज़रूरी हिस्सा है। पुस्तकालय विद्यार्थियों में स्वाध्याय की आदतों का विकास करता है, वहाँ उपलब्ध किताबें बच्चों को ख़ुशी और मनोरंजन का अवसर देती हैं और उनमें चीज़ों के बारे में सोचने-विचारने व सृजनशीलता का विकास होता है। एक सजग और चिन्तनशील शिक्षक द्वारा बच्चों की भाषा और अन्य विषयों के अध्यापन के लिए पुस्तकालय में आयोजित की जाने वाली रचनाशील गतिविधियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस लेख में लेखिका पुस्तकालय के उद्देश्य, बच्चों के जीवन में उसका महत्त्व और पुस्तकों की मदद से भाषा शिक्षण के प्रमुख कौशलों के विकास के लिए सुविचारित गतिविधियाँ सुझाती हैं। सं.

क्या स्कूल पुस्तकालय पढ़ने-लिखने और सीखने-सिखाने का अहम हिस्सा है? मुझे यह लेख लिखने का विचार इसलिए आया क्योंकि मैंने 2014-15, 2018-19 और 2019-20 में सरकारी प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों और बच्चों के साथ, 'पुस्तकालय कैसे सीखने-सिखाने में मदद करता है', विषय को लेकर काम किया था। मैं आपसे प्राथमिक स्कूल के पुस्तकालय का अनुभव साझा करूँगी, क्योंकि यह अभी हाल ही में शिक्षकों और बच्चों के साथ किया गया कार्य है।

मैंने शासकीय पूर्व बुनियादी प्राथमिक शाला, खम्हारडीह, रायपुर, छत्तीसगढ़ में सितम्बर 2019 से मार्च, 2020 तक क़रीब 6 महीने काम किया। स्कूल में 4 शिक्षिकाएँ और एक हेड टीचर हैं। कुल 174 छात्र-छात्राएँ हैं। मैंने पहले भी सरकारी स्कूल के पुस्तकालय पर एक अनुसन्धान किया था जिसका शीर्षक था– 'पुस्तकालय के प्रति शिक्षकों की धारणा।' इस छोटे-से अनुसन्धान से यह बात सामने आई थी कि शिक्षक आमतौर पर पुस्तकालय को सीखने-सिखाने का हिस्सा मानते ही नहीं हैं। उनका मानना है कि पुस्तकालय एक अलग से कोई जगह है। इसलिए मैंने स्कूल के पुस्तकालय को स्थापित करने, इसे बेहतर बनाने और उसका उपयोग कैसे सीखने-सिखाने में हो, इस उद्देश्य को लेकर कार्य किया। मैंने प्राथमिक शाला, खम्हारडीह के भ्रमण का कार्यक्रम बनाया। पुस्तकालय की हर एक गतिविधि कैसे पढ़ने-लिखने और अन्य कौशल में सहयोग करती है, इस समझ के साथ सभी शिक्षकों एवं प्रधान अध्यापक से बातचीत करने के उपरान्त मैंने इस स्कूल को चुना। यहाँ हम पुस्तकालय की स्थापना, उसके उपयोग और उसके बारे में शिक्षकों की धारणा व बच्चों में आए बदलावों को देखेंगे।

पुस्तकालय के उद्देश्य

- विद्यार्थियों में पढ़ने-लिखने की आदत को पोषित करना।
- विद्यार्थियों की रचनात्मकता को बाहर लाने की कोशिश करना।

- विद्यार्थियों में सीखने की रुचि पैदा करना।
- ख़ुशी और मनोरंजन के लिए पढ़ने और ज्ञान एवं कल्पना को मज़बूत बनाने के विचार की एक जगह बनाना / उपलब्ध कराना ।
- विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति रुचि जागृत करना।
- स्वाध्याय के लिए प्रेरित करना।
- बच्चों में साहित्य के प्रति रुचि पैदा करना।
- बच्चों में सोचने, विचारने और कल्पना का विकास करना।

पुस्तकालय की पुनःस्थापना

सबसे पहले स्कूल के पुस्तकालय की साफ़-सफ़ाई के बाद पुस्तकालय की दीवार में कविताओं के कुछ पोस्टर लगाकर सुसज्जित किया गया। वहाँ उपलब्ध पुस्तकों को सभी ने, यानी शिक्षक, बच्चे और मैंने, मिलकर विषयानुसार व्यवस्थित किया और उनका वर्गीकरण किया। स्कूल में कविता, कहानी, विज्ञान, जीवनी और

चित्र : प्रशांत सोनी

कुछ मिले-जुले विषयों की किताबें थीं, अतः इतने ही विषयों को रखा गया। चूँकि यह बच्चे अभी छोटे हैं तो मैंने किताबों के वर्गीकरण के लिए यहाँ पुस्तकालय विज्ञान के DDC (Dewey Decimal Classification) का उपयोग नहीं करके किताबों में विभिन्न रंगों की पट्टी लगवाकर उन्हें विषयानुसार लगाया। अगर अन्य विषय की किताबें आती हैं उन्हें पुनः अन्य रंग से वर्गीकृत किया जाएगा। हमने एक चार्ट पेपर लेकर उसमें प्रत्येक रंग की पट्टी लगाई और उसके आगे विषय का नाम लिख दिया। जैसे–

गुलाबी रंग	–	कहानी
हरा रंग	–	विज्ञान
पीला रंग	–	कविता
नारंगी	–	जीवनी
सफ़ेद	–	अन्य

इसका मतलब है, अगर बच्चे को कहानी पढ़ना है तो वह गुलाबी रंग की पट्टी लगी हुई किताब उठाकर पढ़ेगा और अगर उसे कविता पढ़नी हो तो वह पीले रंग की पट्टी लगी हुई किताब उठाकर पढ़ेगा। अन्त में हमने सभी कक्षाओं के बच्चों को बरामदे में बुलाकर निम्नलिखित बातें कीं–

- क्या आप सभी पुस्तकालय को जानते हैं?
- पुस्तकालय का महत्त्व क्या है?
- हम वहाँ क्या-क्या करते हैं?
- आप लोगों को किताबें पढ़ना अच्छा लगता है कि नहीं?
- पुस्तकालय की किताबें क्यों पढ़नी चाहिए?
- आपने कौन-कौन सी कहानी, कविता और अन्य विषयों की किताबें पढ़ी हैं?
- तरह-तरह की किताबें क्यों पढ़नी चाहिए? आदि विषयों पर चर्चा की।

गतिविधि : पढ़ना-लिखना और अभिव्यक्त करना, इन सभी को जोड़कर हम बच्चों को

विषयों को सिखाने में कैसे मदद कर सकते हैं। इन सबसे सम्बन्धित हमने अनेक गतिविधियाँ कराईं, जो इस प्रकार हैं–

शिक्षकों व बच्चों के साथ अनेक प्रकार की गतिविधियाँ कराने का मेरा उद्देश्य यह रहता है कि बच्चे और शिक्षक पुस्तकालय से जुड़ें, और दोनों समझें कि पुस्तकालय भी स्कूल का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग है। पुस्तकालय में ढेर सारी पुस्तकें रहती हैं। विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ जो पुस्तक में दी गई होती हैं, बच्चे उन्हें करें। उनमें किताब पढ़ने की आदत यानी रीडिंग हैबिट पड़े, और यह तभी सम्भव होता है जब बच्चे यह जान पाते हैं कि ऐसी भी पुस्तकें होती हैं जिनमें से हम विभिन्न प्रकार की चीज़ें बना सकते हैं और इससे बच्चों की रचनात्मकता का विकास होता है। बच्चों को आश्चर्य भी होता है कि पुस्तकों से हम क्या-क्या ऐसी चीज़ें बना सकते हैं और ऐसी कई प्रकार की पुस्तकें पुस्तकालय में रहती हैं जो हमारे लिए उपयोगी हैं। सबकुछ विषय से जुड़ता है, पुस्तकालय कोई अलग जगह नहीं है। सबसे ज़रूरी बात यह है कि प्रत्येक गतिविधि पुस्तक पर ही आधारित होती है।

गतिविधि की योजना : हमें यह जानना ज़रूरी है कि गतिविधि कब करनी है, किस कक्षा में करनी है और कौन-से शिक्षक के साथ करनी है। जिस भी शिक्षक के साथ कोई गतिविधि करनी होती थी, तो पहले मैं उनसे उस गतिविधि का नाम, उसका उद्देश्य और कैसे करना है, आदि बातें पहले ही कर लेती थी और योजना बना लेती थी। मैंने कभी भी शिक्षकों की कक्षा में व्यवधान नहीं डाला। हफ़्ते में एक या कभी-कभी दो बार मेरा स्कूल का भ्रमण होता था। हमेशा लंच के बाद दो कालखण्डों को एक करके और अन्त के आधे घण्टे खेलकूद और पुस्तकालय का लेकर डेढ़ से दो घण्टे में यह गतिविधि होती थी। बच्चों द्वारा किए गए कार्य को कक्षा की दीवारों पर लगाया जाता था। हमने यह गतिविधियाँ किताबों के हिसाब से कीं और कुछ गतिविधियाँ शिक्षकों ने स्वयं डिज़ाइन कीं।

हमने पुस्तकों से सम्बन्धित निम्नलिखित गतिविधियाँ कराईं–

कक्षा 1– टीएलएम एवं किताब को देखना यानी अलटना-पलटना, चित्र की पहचान, मात्रा वाले और बिना मात्रा वाले शब्दों को अलग करना, चित्र देखकर कहानी बताना।

कक्षा 2– शब्द और वाक्य बनाना, शब्दों को पढ़ना, पुस्तक पलटना और चित्र बनाना, मात्रा वाले और बिना मात्रा वाले शब्दों को अलग करना, चित्र देखकर कहानी बताना।

कक्षा 3– किताब का हिसाब, कहो कहानी, अँग्रेज़ी की वर्णमाला (alphabet) और शब्दों (words) की पहचान, कविता को क्रम से जमाओ, मेरी प्रिय पुस्तक, कहानी सुनाओ।

कक्षा 4– शीर्षक बने कहानी, जिन खोजा तिन पाइयाँ, कविता को क्रम से जमाओ, लिखो कहानी अपनी मनमानी, आओ एक्टर बनें।

कक्षा 5– पुस्तक की अन्त्याक्षरी, कविता को क्रम से जमाओ, मेरी प्रिय पुस्तक, आओ एक्टर बनें।

आइए, हम 'शीर्षक बने कहानी' गतिविधि के बारे में जानते हैं कि उसे किस प्रकार किया गया :

यह गतिविधि किताबों के नामों से कहानी बनाने की है। चूँकि कक्षा 4 के 41 में से 26 बच्चे उपस्थित थे। हमने इसे बच्चों को 5 समूह में बैठाकर कराया था। कहानी किताबों में होती है, अगर किताबों के शीर्षक से ही कहानी बन जाए तो कैसा रहे। इस गतिविधि का उद्देश्य बच्चों को पुस्तकालय में उपलब्ध किताबों के नामों से परिचित करवाना और उनमें कल्पना शक्ति का विकास करना है।

पहले सभी बच्चे लाइब्रेरी से अपनी पसन्द की एक-एक किताब लेकर आए। उसके बाद 5 समूह बनवाए गए। शिक्षक द्वारा सभी 5 समूहों के नम्बर कॉलम बनाकर लिखे गए। प्रत्येक समूह से हर एक बच्चा लाइब्रेरी से लाई अपनी किताब का नाम बता रहा था, जिसे श्यामपट्ट पर लिखा जा रहा था। जब सभी की किताबों का नाम लिखना हो गया, तब बच्चों ने पहले *सर्कस* किताब शीर्षक का उपयोग करते हुए एक वाक्य बनाया। अगले समूह के बच्चे ने *मोरपंख* किताब का शीर्षक लेकर वाक्य बनाया। यहाँ नया वाक्य पिछले वाक्य से जुड़ रहा था और हर एक किताब का शीर्षक उस बात को आगे बढ़ा रहा था। बस इसी तरह किताबों के शीर्षक का प्रयोग कर मज़ेदार कहानी बन गई। अन्त में जो कहानी बनी, उसका नाम दिया गया 'त्रिवेणी नगर का सर्कस'। सभी समूहों से एक बच्चा सामने आकर कहानी को बता रहा था, अन्त में सभी बच्चे लाइब्रेरी से लाई किताब पढ़ने लगे। बच्चों को बहुत मज़ा आ रहा था। बच्चों ने मिलकर जब किताबों के शीर्षक से एक नई कहानी को बनाया तो वे बहुत ख़ुश हुए। बच्चों का कहना था कि आप हर हफ़्ते लाइब्रेरी की गतिविधि को कराएँ। शिक्षकों ने कहा कि बच्चे इससे पढ़ना सीख सकते हैं और उनमें पढ़ने के प्रति रुचि भी जागृत होगी।

बच्चों द्वारा पढ़ी गई किताबों के नाम

जब हम पुस्तकालय की बात करते हैं तो स्वाभाविक है कि किताबों का नाम आना चाहिए। जिन किताबों को बच्चों ने इन गतिविधियों को कराने के दौरान एवं पुस्तकालय से स्वयं लेकर भी पढ़ा, वे छत्तीसगढ़ की क्रमिक अधिगम सामग्री पुस्तक, रूम टू रीड और एकलव्य की पुस्तकें थीं। इनमें कहानी, कविता, नाटक, स्वच्छता आदि विधाओं से सम्बन्धित किताबें थीं, जैसे– *मिट्ठू, सर्कस, लाल पतंग, बिल्ली गई दिल्ली, डमरू, जरा मुस्कुराइए, स्वच्छता अभियान, मेरा एक सवाल, पतंग, We Indian, चतुर चूहा और बुद्धू बंदर, अवी और चींटियाँ, चाँद का घर, खिचड़ी, बिल्ली के बच्चे, चूहे को मिली पेंसिल, नाव चली* और कुछ पत्रिकाएँ जैसे– *प्लूटो, चकमक* आदि।

इन गतिविधियों को कभी समूह में तो कभी अकेले-अकेले और कभी पूरी कक्षा को लेकर एक

साथ कराया जाता था। हर गतिविधि के दौरान हम यह सुनिश्चित करते थे कि प्रत्येक बच्चे की भागीदारी हो, सभी को किताब मिले, सभी के नाम ब्लैकबोर्ड पर हों, और सभी को बोलने का मौक़ा मिले। जो भी गतिविधि होती थी उसका नाम शिक्षकों द्वारा ब्लैकबोर्ड पर लिखा जाता था और उसके नीचे सभी बच्चों के नाम होते थे कि उन्होंने कौन-कौन सी किताब पढ़ी। पहले क्रम में ऐसी गतिविधि कराई गई कि बच्चे लाइब्रेरी जाएँ, पुस्तकों से परिचित हों, उन्हें अलटें-पलटें, चित्र देखें एवं पढ़ने की कोशिश करें। द्वितीय क्रम में ऐसी कोशिश की गई कि बच्चे किताब को पढ़ें और चर्चा करें और तृतीय क्रम में पुस्तक पढ़ने के बाद बच्चे अपने मन से लिखें और उसे अपने मन से अभिव्यक्त करें। इस तरह हमने देखा कि बच्चों की किताबों को पढ़ने की रुचि दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। वे इन्तज़ार करते थे कि कब पुस्तकालय की गतिविधि होगी और कब वे किताबें पढ़ेंगे। बच्चों में आत्मविश्वास बढ़ने लगा और उन्होंने सच में जाना कि आख़िर पुस्तकालय होता क्या है।

चित्र : प्रशांत सोनी

गतिविधियों के दौरान के अनुभव : इन सभी गतिविधियों के दौरान मैंने देखा कि–

कक्षा 1 के बच्चे अक्षर और शब्द कार्ड के टीएलएम को अलट-पलट कर पढ़ने की कोशिश कर रहे थे और उसी में रमे हुए थे। रूम टू रीड की किताबें जैसे– *दादाजी का छाता, रंग, जंगल में खुशबू* आदि के चित्रों को देखकर बच्चे उनके बारे में बता पा रहे थे। इन किताबों को देखकर वे बहुत आनन्द ले रहे थे। इस कक्षा में एक छात्रा नन्दिनी कुमारी को छोड़कर कोई भी बच्चा पढ़ नहीं पाता था, लेकिन जब उन बच्चों को चित्रों वाली बड़ी-बड़ी किताबें मिलती थीं तो वे बहुत ख़ुश होते और उन्हें अपने मन से समझने की कोशिश करते थे।

कक्षा 2 के बच्चे भी एकलव्य और रूम टू रीड की किताबों को पढ़ने की कोशिश करते थे। उन्होंने *कुल्हड़ का बाजा, लड्डू, खिचड़ी, बिल्ली के बच्चे, चूहे को मिली पेंसिल, मेंढक का नाश्ता, सो जा उल्लू* आदि किताबों को बहुत पसन्द किया। एक महीने पहले तक बच्चे केवल 'आ' की मात्रा वाले शब्द पढ़ पाते थे, लेकिन आज दो महीने बाद कुछ बच्चे बहुत अच्छे-से पुस्तकालय की किताबों को पढ़ पा रहे थे। यह देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा था। एक बहुत बड़ा बदलाव मुझे देखने को मिला। दरअसल 6 फरवरी 2020 की ही बात है। इस कक्षा की कक्षा शिक्षिका ने मुझसे कहा था कि अभी बच्चे 'आ' की मात्रा वाले शब्द पहचानते हैं, इसलिए हम बच्चों से मात्रा वाले और बिना मात्रा वाले शब्दों को पहचानकर अलग-अलग लिखने को कहेंगे। तब हमने यह गतिविधि टीएलएम के माध्यम से की एवं कुछ शब्दों को श्यामपट्ट पर लिखा। तब उस दिन उपस्थित 24 बच्चों में से 10 बच्चे बिना मात्रा वाले शब्द पढ़ और लिख पा रहे थे,

7 बच्चे बिना मात्रा वाले और मात्रा वाले शब्दों को पहचानकर अलग-अलग लिख भी ले रहे थे और पढ़ भी पा रहे थे, लेकिन बाक़ी 7 बच्चे न तो अक्षर ही पहचान पा रहे थे और न ही पढ़ पा रहे थे। लिखने में उन्होंने कुछ शब्द इस प्रकार देखकर उतार दिए कि जैसे वे शब्द उनके लिए चित्र हों और इनमें से भी 4 बच्चों ने तो कुछ भी उतारकर पेपर में नहीं लिखा। केवल शान्ति, रंजीत, किशन एवं कामिया तेज़ी से पढ़ पा रहे थे। लेकिन 20 दिनों बाद हमने देखा कि कुछ बच्चे पढ़ रहे थे और कुछ पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। मैंने बाद में कक्षा शिक्षिका से इस विषय में बात की और उन्हें अवगत कराया कि बच्चे अब पढ़ पा रहे हैं। पुष्पा मैडम और मैंने भी उस दौरान देखा कि मानसी नाम की छात्रा चुपचाप बैठी रहती थी और ख़ुद को अकेला महसूस करती थी। उसे लगता था कि शिक्षक उसपर ध्यान नहीं देते हैं और इसलिए वह हमेशा स्वयं को अलग व कमज़ोर मानती थी। लेकिन जब पुष्पा मैडम और मैंने उस बच्ची को पढ़ने के लिए प्रेरित किया और विशेष ध्यान दिया, तो वह बोलने भी लगी और पढ़ने भी लगी।

कक्षा 3 में जब 'मेरी प्रिय पुस्तक' की गतिविधि में हमने बच्चों से कहा था कि अब तक आप लोगों ने पुस्तकालय से जितनी किताबें पढ़ी हैं, उनमें से आप अपने मन से उन किताबों में से किसी एक किताब के बारे में लिखें कि वह किताब आपको क्यों अच्छी लगी। इस दौरान हमने देखा कि कुछ ही बच्चे लिख पा रहे थे और अधिकांश बच्चे नहीं लिख पा रहे थे। लेकिन वे *चंदा की कंघी, जंगल में मंगल* आदि जैसी किताबों को पढ़ने में काफ़ी रुचि दिखा रहे थे।

कक्षा 4 में मुहावरों की गतिविधि 'जिन खोजा, तिन पाइयाँ' के लिए उनकी हिन्दी की पाठ्यपुस्तक के पाठ 11 *'जीत खेल भावना की'* से करा रहे थे। इसमें बच्चों को पाठ पढ़कर उसमें से मुहावरे खोजना था और उनके अर्थ बताने थे। लेकिन उन्हें अब तक मुहावरों के बारे में स्पष्टता नहीं थी। हालाँकि इस गतिविधि से बच्चे समझ रहे थे और उनका वाक्यों में प्रयोग कर बता रहे थे। वे ऐसे उदाहरण ले रहे थे जिनको वे जीवन में सुनते थे और वैसे ही मुहावरों का प्रयोग कर रहे थे। बच्चे बहुत आनन्द ले रहे थे और खेल-खेल में बताते भी जा रहे थे। इसमें उन्हें बोरियत भी महसूस नहीं हो रही थी। उदाहरण के लिए, एक मुहावरा आया– 'कहा-सुनी हो जाना', तो एक बच्ची ने इसका वाक्य में इस तरह प्रयोग किया– 'मेरे मम्मी और पापा के बीच कहा-सुनी हो गई'। जबकि शिक्षिका ने हमें बताया कि यह पाठ पहले पढ़ाया जा चुका था, उस समय बच्चे यह नहीं बता पा रहे थे, पर अभी वे इस गतिविधि के दौरान बता पा रहे हैं। इसी कक्षा में एक और गतिविधि 'लिखो कहानी अपनी मनमानी' कराई गई, जिसमें कहानी के एक पैराग्राफ़ को शिक्षक ने ब्लैकबोर्ड पर लिख दिया था और बच्चों को अपने मन से उस

कहानी को पूरा करना था। मतलब उसे उन्हें अपनी कॉपी में लिखना था। कुछ बच्चों को छोड़कर सभी बच्चों ने अपने मन से कहानी को आगे बढ़ाकर लिखा। उनकी कहानी को पढ़कर लगा कि बच्चे कितना आगे तक सोचते हैं!

कक्षा 4 एवं 5 में हमने 'आओ एक्टर बनें' गतिविधि कराई। इसमें बच्चों को अब तक पढ़ी गई किताबों में से पुस्तकालय की किसी एक किताब पर समूह में नाटक प्रस्तुत करना था। इसका उद्देश्य था कि बच्चों की अभिव्यक्ति बाहर आए और उनमें निखार हो। शिक्षकों और मैंने पहले से ही निर्णय ले लिया था कि अमुक दिन हम वह गतिविधि कराएँगे। सभी बच्चों को पहले से ही कहा गया था कि आप लाइब्रेरी की अपनी मनपसन्द किताब से अलग-अलग समूह में नाटक तैयार कर रखेंगे जिसमें शिक्षक आपकी मदद करेंगे। शिक्षकों की अन्य कार्य में व्यस्तता के कारण बच्चों ने स्वयं ही नाटक तैयार किया। इसमें कक्षा 5 के एक समूह के बच्चों द्वारा 'पतंग' एवं 'ज़रा मुस्कुराइए' नाटक प्रस्तुत किया गया। कक्षा 4 के बच्चों ने पहले से ही अपनी कक्षा 4 की हिन्दी की किताब के पाठ 5 'मेरा एक सवाल' से नाटक तैयार कर रखा था।

दरअसल बच्चों ने स्वयं ही समूह बनाए और किसको क्या बनना है, यह भी बच्चों ने स्वयं तय किया। जिस दिन गतिविधि होनी थी उस दिन कक्षा में प्रत्येक समूह नाटक प्रस्तुत करने से पहले सामने खड़े होकर, जिस किताब से नाटक तैयार किया था, उस किताब को सभी को दिखाता था और नाम भी बताता जाता था। इस दौरान बच्चों ने बहुत ही आनन्द लिया। यह गतिविधि अलग-अलग दिन दोनों कक्षाओं में कराई गई। शुरुआत में दो-तीन समूह नाटक प्रस्तुत करने आए। इन बच्चों को देखने के बाद दूसरे बच्चों की भी झिझक टूटी और कई अन्य समूह आए जिन्होंने उसी समय किताब पढ़कर 15 से 20 मिनट में नाटक तैयार कर प्रस्तुत किया। बच्चों को यह सब बहुत अच्छा लगा। हम प्रत्येक कक्षा में हर बच्चे की समान रूप से गतिविधि में भागीदारी करवाते थे ताकि कोई भी बच्चा न छूटे। हालाँकि इस गतिविधि में दोनों कक्षाओं के सभी बच्चों ने भाग नहीं लिया, लेकिन हमने सोचा कि इसके बाद हम पुनः बचे हुए बच्चों को इसमें शामिल करेंगे। पर तभी 16 मार्च से कोविड-19 के कारण लॉकडाउन होने से स्कूल बन्द हो गए।

हमारी योजना थी कि मार्च में बच्चों के सामूहिक पठन-पाठन के लिए वहीं के पुस्तकालय की किताबों से एक पुस्तक मेला आयोजित करेंगे। इसमें हम किताबों को प्रदर्शित करेंगे। सारे बच्चे अपनी इच्छानुसार किताबें पढ़ेंगे। इसमें हम बरामदे को पोस्टर, कोटेशन, अब तक कराई गई गतिविधियों के चार्ट पेपर को लगाने से लेकर अन्य स्कूल के बच्चों एवं शिक्षकों को भी आमंत्रण देने की भी तैयारी कर ही रहे थे कि तभी 16 मार्च से स्कूल बन्द हो गए।

बदलाव : इन 6 महीनों में बच्चों और शिक्षकों के साथ काम करते हुए मैंने देखा कि बच्चे गतिविधियों के दौरान दिलचस्पी लेते थे और किताबों को अपनी रुचि के अनुसार पढ़ते थे। शुरुआत से लेकर अन्त तक किसी भी गतिविधि के दौरान हम सभी बच्चों को 15 से 20 मिनट का समय किताब पढ़ने के लिए देते ही थे और छात्र व् छात्राएँ दोनों ही समान रूप से किताबें पढ़ते थे। यहाँ दोनों शिक्षिकाएँ, ज्योति सोनी और संगीता साहू, पुस्तकालय की गतिविधि को पूरी तरह मन लगाकर करती थीं। प्रत्येक गतिविधि के बाद मैं शिक्षकों से बात करती थी कि वे इसी तरह भाषा, गणित, विज्ञान आदि विषयों को पुस्तकालय की किताबों से सीखने-सिखाने का हिस्सा बना सकते हैं। शिक्षकों का कहना था कि बच्चों का कक्षा में मन नहीं लगता था। तब मैंने शिक्षकों से बात की कि आप लोगों ने भी महसूस किया होगा कि जब भी हम पुस्तकालय की गतिविधियाँ कराते हैं तो बच्चे उन्हें करने के लिए काफ़ी उतावले होते हैं और उस समय बच्चों का कक्षा में मन भी लगता है। ऐसे ही हम सभी विषयों को पुस्तकालय से जोड़कर कराएँगे तो उनका मन लगेगा। इसमें

शिक्षक और बच्चों के बीच संवाद होता है जिसमें बच्चे अपने विचारों को रख पाते हैं।

6 महीनों के बाद मैंने देखा कि पहले एक छोटे-से कक्ष में पुस्तकालय था। मार्च में अब वह कक्षा 4 के बड़े कमरे में स्थानान्तरित हो गया। शिक्षक स्वयं लोहे की चार खुली अलमारी ख़रीदकर लाए और उनमें पुनः उन किताबों को जमाया। जिन गतिविधियों को हमने कराया था उनके नामों की सूची को पुस्तकालय के दरवाज़े पर लगाया गया और पुस्तकालय में पोस्टर व अब तक कराई गई गतिविधियों के विवरण को चार्ट पेपर पर लिखकर लगाया गया।

पुस्तकालय पढ़ने-लिखने और सीखने-सिखाने का स्कूल का अहम हिस्सा है। उसका उपयोग कर शिक्षक स्वयं के और बच्चों के सीखने-सिखाने में इसका बेहतर इस्तेमाल कर सकते हैं, जो इस स्कूल में दिखाई दिया और शिक्षकों ने भी स्वीकारा कि पुस्तकालय का समुचित उपयोग करने से बच्चों में बदलाव आता है। लेकिन शिक्षकों का मानना है कि हम स्कूल के अन्य प्रशासनिक कामों की वजह से यह लगातार नहीं कर पाते हैं।

कुल मिलाकर प्रत्येक स्कूल में किताबें हैं यानी पुस्तकालय हैं। इस स्कूल में शिक्षकों और बच्चों द्वारा विषयवार किताबें खुली अलमारी में रखी गईं। बच्चों द्वारा किताबों के लेन-देन (circulation) की शुरुआत हुई और उन्होंने पुस्तकालय का स्वामित्व लिया अर्थात पुस्तकों का लेना-देना, अगर किताबें फट जाएँ तो उन्हें

दुरुस्त (repair) करना, पुस्तकों को जमाना आदि, और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि बच्चे पुस्तकें पढ़ने लगे और पुस्तकालय जाने लगे। पुस्तकालय की किताबों से ही बच्चों से अनेक गतिविधियाँ कराई गईं। गतिविधियों में धीरे-धीरे सभी बच्चे हिस्सा लेने लगे और बच्चों के कई प्रकार के कौशल विकसित हुए और उनके उत्साह एवं आत्मविश्वास में दिनोंदिन बढ़ोत्तरी हुई। प्रत्येक बच्चे में कोई-न-कोई गुण होता है बस उसे पहचानने की ज़रूरत है। अगर इसी तरह सभी स्कूलों के शिक्षक प्राथमिक स्तर से ही पुस्तकालय में बच्चों के साथ थोड़ा प्रयास करें तो बच्चे स्वतः ही उस दिशा में आगे बढ़ने लगते हैं और स्कूल का पुस्तकालय जीवन्त हो जाता है, बस ज़रूरत है इस दिशा में कार्य करने की।

आराधना गुप्ता ने पण्डित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय से विज्ञान और लाइब्रेरी साइंस की पढ़ाई की है एवं कम्प्यूटर में डिप्लोमा और लाइब्रेरी ऑटोमेशन में कोर्स किया है। रायपुर के महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में क़रीब 7 वर्ष लाइब्रेरियन के पद पर काम किया है। पिछले साढ़े आठ वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में लाइब्रेरी रिसोर्स पर्सन के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : aradhana.gupta@azimpremjifoundation.org

कक्षा अवलोकन के ज़रिए शिक्षण प्रक्रिया को समझना

सुनीता

पढ़ना-लिखना एक साथ चलने वाली प्रक्रियाएँ हैं। ये न केवल साथ-साथ विकसित होती हैं बल्कि एक दूसरे के विकास में भी सहायक होती हैं। साथ ही यह भी अपेक्षित है कि बच्चे भाषा का इस्तेमाल सिर्फ़ पढ़ने-लिखने के लिए ही नहीं, बल्कि तर्क, विश्लेषण, अनुमान लगाने, भावनाओं की अभिव्यक्ति और कल्पना आदि करने के लिए भी करें।

लेख में इस बात को ऊधम सिंह नगर में ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालय की कक्षा 2 पढ़ाने वाली शिक्षिका के कक्षा अवलोकन और बातचीत के द्वारा समझने की कोशिश की गई है।

बच्चा जब विद्यालय में प्रवेश करता है तो वह अपने परिवेशीय सन्दर्भों से परिचित होता है और अपने आसपास की दुनिया को महसूस करते हुए बड़ा होता है। बच्चों के पास अपने परिवेश से जुड़े ख़ूब सारे अनुभव होते हैं और उन्हें वे बख़ूबी बयाँ भी कर पाते हैं। अगर कक्षा शिक्षण में बच्चों के अनुभवों को कक्षा में जोड़कर विस्तार दिया जाए तो बच्चे कक्षा में सक्रिय प्रतिभागिता करते हैं। यह स्वायत्तता शिक्षक के पास होती है कि वह बच्चों के अनुभवों का कक्षा में कैसे इस्तेमाल करते हैं। पर अगर पाठ्यपुस्तकों में भी ऐसे पाठ बुने गए हों जो बच्चों को उनके परिवेश से जोड़ते हों और उनके परिवेश को क़रीब से देखने और अवलोकन के मौक़े देते हों तो शिक्षण प्रक्रियाएँ सहज और प्रभावी हो जाती हैं।

कक्षा 1 व 2 की पाठ्यपुस्तक *रिमझिम* के प्राक्कथन में यह बात स्पष्टता से रखी गई है कि पढ़ना-लिखना एक साथ चलने वाली प्रक्रियाएँ हैं। ये न केवल साथ-साथ विकसित होती हैं बल्कि एक दूसरे के विकास में भी सहायक होती हैं। साथ ही यह भी अपेक्षित है कि बच्चे भाषा का इस्तेमाल सिर्फ़ पढ़ने-लिखने के लिए ही नहीं, बल्कि तर्क, विश्लेषण, अनुमान लगाने, भावनाओं की अभिव्यक्ति और कल्पना आदि करने के लिए भी करें।

इस बात को ऊधम सिंह नगर में ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालय की कक्षा 2 पढ़ाने वाली शिक्षिका के कक्षा अवलोकन और बातचीत के द्वारा समझने की कोशिश की गई है। इस विद्यालय के समीप घना जंगल और एक बड़ा जलाशय भी है। विद्यालय में पढ़ने वाले अधिकतर बच्चों के अभिभावक मज़दूरी, खेती-बाड़ी, मछली पालन और जंगल से लकड़ी बेचने का काम करते हैं।

कक्षा अवलोकन के दौरान शिक्षिका ने उक्त कक्षा के बच्चों के साथ पाठ्यपुस्तक के नौवें पाठ 'बुलबुल' पर काम किया। पाठ में ऐसे अवसर दिए गए हैं जहाँ बच्चे अपने परिवेश में पाए जाने वाले पक्षियों का अवलोकन कर सकें और उनके बारे में अपने अनुभव जोड़ सकें।

पहले दिन शिक्षिका ने कक्षा की शुरुआत कविता 'चिड़िया चिड़िया उड़ती जा' से की। इस कविता से कक्षा को शुरू करने का उद्देश्य यह था कि पाठ 'बुलबुल' चिड़ियों से जुड़ा पाठ है तो कविता के माध्यम से बच्चों का जुड़ाव पाठ

से बन सके। कविता के बाद शिक्षिका ने बच्चों से कहा, "अपनी-अपनी *रिमझिम* की किताब खोलो"। *रिमझिम* का नाम सुनते ही बच्चों ने कहा कि मैडम उसमें की तो लगभग सारी कहानियाँ हम ख़ुद ही पढ़ चुके हैं। शिक्षिका ने बच्चों से कहा कि आपने पढ़ी तो होंगी, पर मैं चाहती हूँ हम उसपर बातचीत करें कि आप सभी ने जो पढ़ा है उससे क्या समझा? फिर शिक्षिका ने 'बुलबुल' पाठ निकालकर बच्चों को दिखाया और बच्चों से निम्न बातचीत की–

शिक्षिका– "बुलबुल क्या होती है?"

बच्चे– "एक चिड़िया होती है।"

शिक्षिका– "चिड़िया क्या करती है?"

बच्चे– "उड़ती है।"

नवीन– "उल्लू भी उड़ता है रात को।"

शिक्षिका– "अच्छा, उल्लू रात को उड़ता है दिन में नहीं उड़ता है?"

बच्चे– "जी नहीं।"

शिक्षिका– "अच्छा, और आपने कौन-कौन सी चिड़ियाँ देखी हैं?"

बच्चे– "तोता, कबूतर, चिरैया, कोयल, मोर, चील, उल्लू।"

शिक्षिका (पाठ को पढ़ते हुए)– "क्या तुमने कभी बुलबुल देखी है? बुलबुल को पहचानने का एक सरल तरीक़ा भी है..."

शिक्षिका– "अच्छा, ये बताओ किसी ने बुलबुल को देखा है?"

एक लड़की– "जी, मेरे खेत में आती है।"

शिक्षिका– "चिड़िया की पूँछ पता है न! आप सबने देखी तो होगी। बुलबुल को पहचानने का एक आसान तरीक़ा है कि अगर उसकी पूँछ के नीचे की जगह लाल हो, सिर काला, बाक़ी का पूरा शरीर भूरा हो और वह तेज़ आवाज़ में बोलती है, तो वह बुलबुल हो सकती है।"

फिर शिक्षिका ने बच्चों से पूछा– "अगर चिड़िया की पूँछ का निचला हिस्सा लाल हो तो वह कौन-सी चिड़िया हो सकती है?" सभी बच्चों ने एक साथ कहा– "जी, बुलबुल होगी"। शिक्षिका ने बच्चों को पाठ में बने बुलबुल के चित्रों को भी दिखाया तो इसपर कुछ बच्चों ने कहा कि यह चिड़िया तो हमने देखी है, यह हमारे खेत में भी आती है। इसके बाद शिक्षिका ने बच्चों से चिड़ियों की आवाज़ पर बात की।

शिक्षिका– "अच्छा ये बताओ, चिड़िया बोलती कैसे है?"

बच्चे– "चीं-चीं, चीं-चीं।"

शिक्षिका– "तोता कैसे बोलता है?"

बच्चे– "टाऊ-टाऊ / टें-टें।"

शिक्षिका– "अच्छा, कोयल कैसे बोलती है?"

बच्चे– "कूँ-कूँ।"

बच्चों ने ख़ूब सारी चिड़ियों की आवाज़ें निकालीं। शिक्षिका ने अन्य पक्षियों के बारे में भी पूछा और बच्चों ने उनकी आवाज़ें निकालकर सुनाईं। बच्चों ने शिक्षिका से कहा कि बुलबुल की आवाज़ कैसी होती है समझ नहीं आ रहा है। फिर शिक्षिका ने बच्चों को यूट्यूब से बुलबुल की आवाज़ सुनाई और कहा कि अब तुम्हें अपने आसपास ऐसी आवाज़ सुनाई देगी तो उस चिड़िया को ध्यान से देखना।

इसके बाद शिक्षिका ने चार्ट पर कुछ पक्षियों के चित्र दिखाए और बच्चों को उनमें से बुलबुल की पहचान करने को कहा। फिर शिक्षिका ने पूछा कि तुम्हें कैसे पता चला कि ये बुलबुल का चित्र है? सभी बच्चों ने जवाब दिया कि इसकी पूँछ नीचे से लाल है, शरीर भूरा और सिर काला है। बुलबुल की पहचान के साथ ही उन्होंने कुछ अन्य पक्षियों की पहचान के बारे में बच्चों से पूछा। जैसे– कौवे की क्या पहचान होती है, तोते की क्या पहचान होती है आदि।

शिक्षिका– "मैना कैसे बोलती है? क्या आप लोगों ने कहीं मैना देखी है?"

नवीन– "मैंने खेत में देखी है।"

शिक्षिका– "जब आप स्कूल में खाना खाते हो, तब मैना और गौरैया भी आती हैं।" फिर शिक्षिका ने बच्चों को बताया कि बुलबुल को लोगों से बिलकुल डर नहीं लगता है, जैसे बाक़ी चिड़ियाँ लोगों से डर जाती हैं। जब तुम बाक़ी चिड़ियों के पास जाते हो तो वह उड़ जाती हैं।

शिक्षिका (पाठ को आगे पढ़ाते हुए)– "शायद एक बुलबुल आपको ऐसी भी दिखे जिसके सिर पर कलगी हो जैसी मोर के सिर पर होती है, उसे सिपाही बुलबुल कहते हैं। अच्छा बताओ तो, उसे सिपाही क्यों कहते होंगे? क्या तुम्हें पता है सिपाही कौन होता है?"

एक बच्चा– "जी, राजा के महल में होता है और चोर को भगाता है। और जब चोर आता है उसको पकड़ता है।" (कुछ बच्चों ने यह भी कहा कि सिपाही तो पुलिस होती है वो सबको पकड़ लेती है।)

शिक्षिका– "क्या पुलिस सबको पकड़ लेती है?"

बच्चे– "सबको तो नहीं पकड़ती है, बस जो चोर होता है उसी को पकड़ती है।"

शिक्षिका– "अच्छा तो सिपाही का काम चोर को पकड़ना है, तो सिपाही बुलबुल क्या करती होगी और इनमें कौन-सी चिड़िया चोर होगी।" (किताब दिखाते हुए)

कुछ बच्चे– "चिड़िया को लेकर जाती होगी पुलिस स्टेशन?"

शिक्षिका (मुस्कुराते हुए)– "अच्छा बताओ, चिड़िया का पुलिस स्टेशन कौन-सा होगा?"

कुछ बच्चे– "उसका घोंसला होगा।"

शिक्षिका– "घोंसले से चोर का क्या मतलब होगा?"

बच्चे– "कौवा है, वो चिड़िया का घोंसला तोड़ देता होगा और अण्डे भी फोड़ देता होगा।"

शिक्षिका– "तो क्या सिपाही बुलबुल कौवे को पकड़ती होगी?"

नवीन– "कौवा सिर पर भी चोंच मारता है।"

नीरज– "मैडमजी, शायद सिपाही बुलबुल बच्चे देती होगी।"

इसी बातचीत में नीरज ने अपना एक अनुभव रखा कि उसके घर के पास एक पेड़ था और पेड़ पर एक चिड़िया का घोंसला था और उसमें बच्चे थे तो वो गिर गए थे। अचानक सभी बच्चों ने कहा कि मैडमजी, नीरज ने उसे गिराया था और फिर नीरज की माँ ने उसकी पिटाई की थी। नीरज चुप रहा तो शिक्षिका ने इसी पर बच्चों से बात की कि अगर नीरज की माँ से कोई उसे छीनकर ले जाएगा तो उसे कैसा लगेगा? सभी का कहना था कि उसे दुःख होगा। इसपर शिक्षिका ने समझाया कि तुम्हें चिड़िया के बच्चों को वहीं छोड़ देना चाहिए था, उसकी माँ उन्हें उठाकर ले जाती। आगे से सभी बच्चे यह ध्यान रखेंगे कि वो किसी भी चिड़िया का घोंसला नहीं तोड़ेंगे, चिड़िया को भी बुरा लगता है और वह विलाप करती है। फिर उन्होंने सिपाही बुलबुल पर चर्चा आगे बढ़ाई कि घोंसले में अण्डे होते हैं, और अगर कोई भी पक्षी या कौवा घोंसले में अण्डे चुराने आएगा तो सिपाही बुलबुल फटाफट अण्डों को बचाने आ जाएगी। जैसे पुलिस चोरों से रक्षा करती है, वैसे ही सिपाही बुलबुल अण्डों की रक्षा करेगी।

फिर पाठ को आगे पढ़ते हुए शिक्षिका ने बताया कि बुलबुल पीपल और बरगद के पेड़ से कीड़े ढूँढ़कर खाती है और वह हमारी तरह फल और सब्ज़ी भी खाती है।

शिक्षिका– "हम फल और सब्ज़ी खाते हैं न?"

सभी बच्चे– "जी।"

शिक्षिका– "कौन-कौन से फल खाते हैं?"

बच्चे– "सेब, सन्तरा, अमरूद, आम, चीकू।"

शिक्षिका– "सब्ज़ी कौन-कौन सी खाते हैं?"

बच्चे– "लौकी, आलू, हरी सब्ज़ी, गोभी, बैंगन।"

शिक्षिका ने बताया कि बुलबुल को अमरूद और मटर काफ़ी पसन्द हैं, वह इनपर तेज़ी से हमला करती है। पाठ में आगे बुलबुल के घोंसले का ज़िक्र था तो शिक्षिका ने बच्चों को बताया कि बुलबुल अपना घोंसला सूखी घास और तिनके से बनाती है। बच्चों, आपने देखा होगा उसके घोंसले में घास के तिनके और छोटे पौधों की पतली जड़ें होती हैं। शिक्षिका ने श्यामपट्ट पर घोंसले का चित्र बनाते हुए बताया कि वह कटोरे की तरह घोंसला बनाती है। कुछ बच्चों ने कहा कि जब हवा बहती है तो उसका घोंसला बिगड़ जाता है। फिर उन्होंने बच्चों को बताया कि हल्की हवा से उसका घोंसला नहीं बिगड़ता, पर जब बहुत ज़ोर से आँधी चलती है तब घोंसला टूटता है। और वो भी कभी-कभी। घोंसला हवा से नहीं, आँधी से गिरता है।

यह बात सुन एक बालिका आशा ने अपना अनुभव बताया कि मेरे घर के पास पेड़ पर एक घोंसला था। जब ज़ोर से आँधी आई तो वो घोंसला टूट गया था। फिर पाठ के अन्त में शिक्षिका ने बच्चों को बताया कि बुलबुल एक बार में 2 या 3 अण्डे देती है उसके अण्डों में लाल और बैंगनी बिन्दियाँ होती हैं। अन्त में उन्होंने पाठ से सम्बन्धित कुछ सामान्य प्रश्न पूछे, जैसे– कहानी किस बारे में थी?, बुलबुल को हम कैसे पहचानेंगे? आदि। पाठ पढ़ाने और चर्चा के बाद शिक्षिका ने बच्चों को बुलबुल का चित्र बनाने और उसमें रंग भरने को कहा। सभी बच्चे चित्र बनाने में व्यस्त हो गए। मैंने देखा कि बच्चों ने चित्र बनाते समय और रंग भरते समय यह ध्यान रखा कि बुलबुल की पहचान कैसे करेंगे।

इस पूरी प्रक्रिया में बच्चे अपने अनुभवों को पाठ से जोड़ रहे थे और शिक्षिका ने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि बच्चों को अपनी बात रखने के पूरे मौक़े मिल सकें।

दूसरे दिन की शुरुआत शिक्षिका ने बच्चों के साथ पिछले दिन की बातचीत से की। उन्होंने पूछा कि हमने जो पाठ पढ़ा था उसका नाम क्या था? तुम्हें याद होगा न कि किसी को सिपाही क्यों कहा जाता होगा? हम बुलबुल को कैसे पहचान सकते हैं? सिपाही बुलबुल को कैसे पहचान सकते हैं? आदि।

इसपर बच्चे कक्षा में हुई पिछले दिन की बातचीत से बुलबुल के बारे में बता पा रहे थे। इस बातचीत के बाद शिक्षिका ने बच्चों से अन्य कलगी वाले पक्षियों के बारे में बातचीत की।

शिक्षिका ने बच्चों से पूछा– "क्या तुमने कोई और पक्षी भी देखे हैं जिनके सिर पर कलगी होती है?"

सभी बच्चे एक साथ– "मोर, मुर्ग़ा।"

शिक्षिका– "मोर के सिर पर कैसी कलगी होती है?"

बच्चे– "हरी।"

शिक्षिका– "और मुर्ग़ी के?"

बच्चे– "लाल।"

शिक्षिका ने शिक्षण सामग्री के उपयोग से बच्चों को एक मोर और एक मुर्गे का चित्र
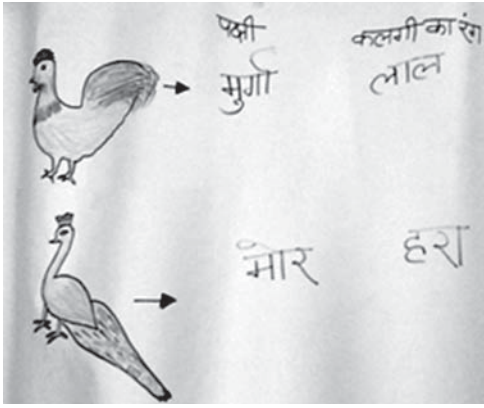
दिखाया और कहा कि देखकर बताओ यह कौन-कौन से पक्षी हैं। बच्चों ने उनके नाम और कलगी के रंग के बारे में बताया और शिक्षिका ने उनका नाम और कलगी के रंग के बारे में बच्चों के सामने ही चार्ट पर लिखा। जैसे– मोर – हरी कलगी, मुर्ग़ा – लाल कलगी।

शिक्षिका– "अच्छा ये बताओ कि कलगी वाले कितने पक्षियों के बारे में हमें पता चला?"

सोनू– "दो (मुर्ग़ी और मोर)।"

नवीन– "तीन, बुलबुल भी।"

इसके बाद शिक्षिका ने बात की कि बुलबुल तेज़ आवाज़ में बोलती है। क्या तुम भी तेज़ आवाज़ में बात करते हो? सभी बच्चों ने अपनी-अपनी बात बताई कि वे कब-कब तेज़ आवाज़ में बोलते हैं। शिक्षिका ने साथ-साथ उनकी बात को
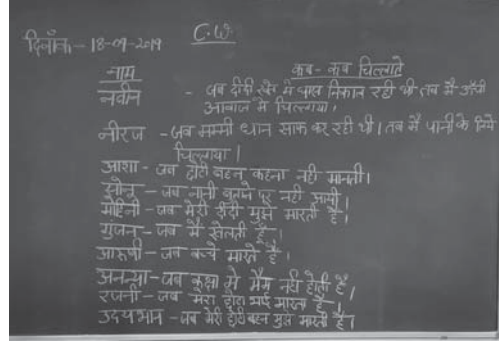
श्यामपट्ट पर भी लिखा। सभी की बात लिखने के बाद उन्होंने सभी बच्चों को एक-एक कर बुलाया और अपनी-अपनी बात पढ़ने को कहा।

पढ़ने के बाद शिक्षिका ने बच्चों का ध्यान पाठ में दिए गए अभ्यासों की तरफ़ दिलाया और कहा कि मेरी बात ध्यान से सुनना। मैं कुछ चीज़ों के नाम लूँगी और आप सब मुझे बताना कि ये सब हैं क्या? शिक्षिका ने एक चार्ट निकालकर बच्चों से पूछा कि गोभी, आलू, भिण्डी क्या हैं? बच्चों ने उत्तर दिया, सब्ज़ी। बातचीत करते हुए उन्होंने बच्चों को कहा कि जैसे हमने कुछ चीज़ों के समूह को एक नाम दिया वैसे ही हम इन्हें भी एक नाम देंगे। तुम लोग मुझे इनके नाम बताना और मैं इन्हें चार्ट पर लिखूँगी। बच्चे जैसे-जैसे नाम बताते गए, शिक्षिका ने उन्हें चार्ट में भी बच्चों के सामने ही दर्ज किया।

फिर शिक्षिका ने बच्चों के साथ उनकी पसन्द की सब्ज़ियों पर बातचीत की और उस बातचीत को पाठ से भी जोड़ा। उन्होंने पूछा– "बुलबुल को कौन-सी सब्ज़ी पसन्द थी?"

बच्चों ने कहा– "मटर, फल और अमरूद।"

कुछ बच्चों ने हरी सब्ज़ियों के नाम भी लिए तो शिक्षिका ने उन्हें सराहा और कहा– "अरे वाह! आपको पालक और मेथी भी पसन्द है। ये तो हरी सब्ज़ियाँ हैं और सबको खानी चाहिए, इनमें आयरन होता है। अच्छा, और कौन-कौन सी हरी सब्ज़ियाँ होती हैं?"

बच्चों ने कहा– "हरा साग, पत्ता गोभी, मेथी, पालक, बथुआ, मूली के पत्ते, बंगाली साग।"
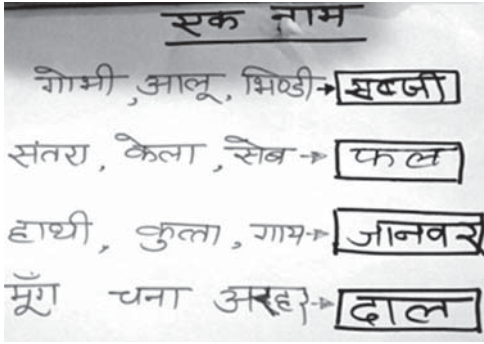
इसके बाद शिक्षिका ने कहा कि बुलबुल वाले पाठ में हमें बहुत-सी जानकारी मिली और अब मैं आपसे कुछ पूछूँगी, तुम लोग मुझे उसके बारे में बताना। शिक्षिका (चार्ट पेपर दिखाते हुए)– "इसको पढ़ो तो इसपर क्या लिखा है?"

लगभग सभी बच्चे– "बूझो तो जानें।"

शिक्षिका– "अब मैं पढ़ूँगी, सभी ध्यान से सुनना और जिस बच्चे का नाम लूँगी अब वही बोलेगा। आरुषि बताएगी, मैं काली हूँ मीठा गाना गाती हूँ।"

आरुषि– "कौवा।"

नवीन– "लड़की।"

आशा– "कोयल।"

शिक्षिका– "हरे रंग का हूँ चोंच मेरी लाल है।"

सोनाली– "तोता।"

शिक्षिका– "सूप जैसे कान हैं, मोटे-मोटे पैर हैं।"

नवीन– "चुड़ैल।"

सोनू– "हाथी।"

शिक्षिका– "घरों में आता हूँ चीज़ें कुतरता हूँ।"

सभी बच्चे– "चूहा।"

शिक्षिका– "सिर पर ताज है दुम पर पैसा और बादल देखकर नाचता हूँ।"

सभी बच्चे– "मोर।"

इन अभ्यासों के बाद शिक्षिका ने बच्चों को कहा कि बुलबुल के बारे में 5 लाइन में लिखो कि वो क्या-क्या करती है। कोई कविता भी बना सकता है।

कक्षा अवलोकन में देखने को मिला कि लगभग सभी बच्चों ने बुलबुल के बारे में चार-पाँच वाक्य बनाए, केवल कुछ ही बच्चे ऐसे थे जिन्होंने मात्राओं की ग़लतियाँ की थीं। शिक्षिका ने बच्चों द्वारा लिखे को जाँचने के दौरान उन्हें बताया कि क्या ग़लत लिखा हुआ था और फिर उसे सुधारा और पढ़कर सुनाया। अपनी गति से सीखने वाले जिन बच्चों ने 2-3 वाक्य लिखे, शिक्षिका ने उन्हें चित्र बनाने के लिए भी कहा।
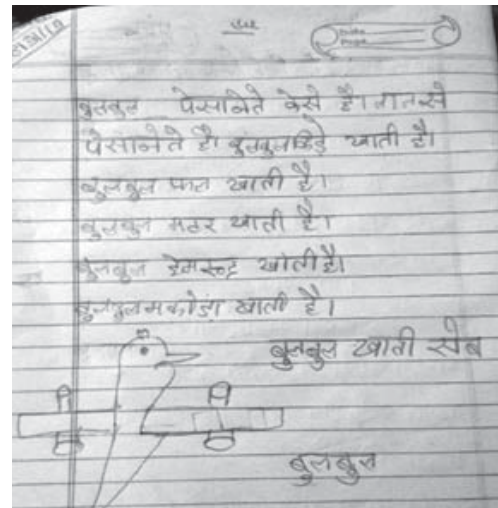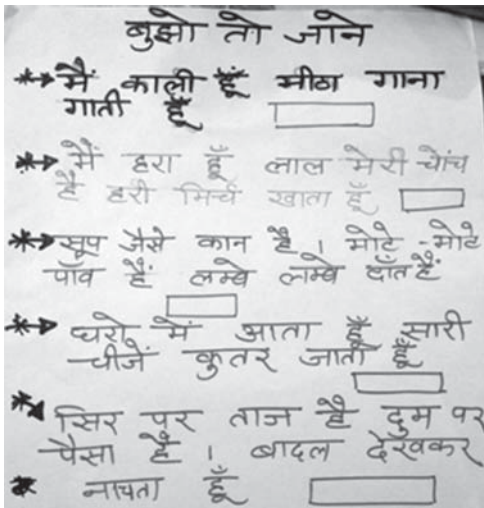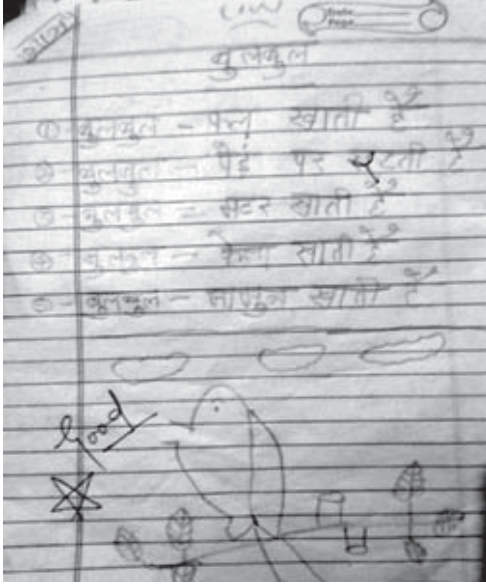
कक्षा अवलोकन के पश्चात शिक्षिका से उनकी शिक्षण विधियों पर बातचीत हुई तो शिक्षिका ने बताया कि मैं बच्चों के साथ काम करने के दौरान यह कोशिश करती हूँ कि किसी भी पाठ को पढ़ाने से पहले बच्चों के साथ कुछ खेल गतिविधियाँ की जाएँ ताकि बच्चे कक्षा में सक्रिय प्रतिभागिता कर सकें। प्राथमिक कक्षाओं में बातचीत बच्चों को अभिव्यक्ति के मौक़े देती है और पढ़ने-लिखने में विस्तार का काम करती है।

इसीलिए बच्चों को कक्षा में अपनी बात रखने के भरपूर मौक़े देना ज़रूरी है। इससे बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ता है और वे पढ़ने-लिखने में रुचि लेते हैं।

कक्षा में जब बच्चों की स्वयं की बात कही गई बात को अनुमान से पढ़ने और लिखने के अवसर दिए जाते हैं तो उन्हें यह विश्वास होता है कि जो बोला जाता है उसे पढ़ा और लिखा जा सकता है और इससे बच्चों के मन में यह विश्वास भी जागृत होता है कि मैं पढ़ सकता हूँ।

जब बच्चे शुरुआत में पढ़ना-लिखना सीखते हैं तो ग़लतियाँ होना स्वाभाविक प्रक्रिया है। अगर शिक्षक उन ग़लतियों की परवाह न करके बच्चों को प्रोत्साहित करें तो बच्चों के मन से ग़लत लिखने और पढ़ने का डर निकल जाता है, किन्तु जब शिक्षक ग़लतियों पर बच्चों को टोक देते हैं तो बच्चे डर के कारण प्रयास करना ही छोड़ देते हैं।

कक्षा में जिस कहानी, कविता और चित्रों पर काम हो रहा हो, उनके पोस्टर प्रदर्शित करने और बच्चों के द्वारा किए गए कार्यों को भी कक्षा में स्थान देने से भाषा समृद्ध माहौल बनता है। लिखित टेक्स्ट के अधिक-से-अधिक उदाहरणों का शिक्षण प्रक्रियाओं में इस्तेमाल होने से उनपर बच्चों की नज़र बार-बार पड़ती है और उन्हें अनुमान से पढ़ने-लिखने में मदद होती है।

सुनीता दो दशक से भाषा शिक्षण के क्षेत्र में सक्रिय हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में उत्तराखण्ड के ऊधम सिंह नगर में भाषा स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : sunita1@azimpremjifoundation.org

खेल गीतों के सहारे खुलती पठन की दुनिया

शारदा कुमारी

इंसान की एक ख़ास उपलब्धि अपनी बात को लिपि में बाँधकर बताना और फिर उस लिपि को पढ़कर बात को जान पाना है। लिखा हुआ एक रचित रहस्यभरा संसार है और उसे पढ़कर जान पाने का हुनर एक ऐसी अनूठी चाबी है जो इस रहस्य का ताला खोलती है और पूरा संसार खुल जाता है।

वंचित समुदाय के बच्चे, जिनके जीवन में लिखित सामग्री और पढ़े जाने का व्यवहार दोनों ही लगभग शून्य हैं, उन्हें, उनके बीच गाए जाने वाले एक खेल गीत को आधार बनाकर लेखिका ने पढ़ने वाली चाबी थमाने की जीवन्त कोशिश की है। यह आलेख उसी कोशिश का सिलसिलेवार ब्योरा पेश करता है। सं.

इस दुनिया के किसी भी भूखण्ड पर पहुँच जाइए, हर जगह सैकड़ों तरह की विविधताएँ होते हुए भी सामान्य रूप से एक बात तो समान ही पाएँगे, और वह है बच्चों का एक साथ मिलकर खेलना।

बच्चों के ये सामूहिक खेल हमारी साझी सामूहिकता के सजीव उदाहरण हैं और इन खेलों के दौरान सामूहिक रूप से गाए जाने वाले खेल गीत अपने-आप में अनूठे हैं।

देश के कोने-कोने में गाए जाने वाले खेल गीतों के कुछ नमूने प्रस्तुत हैं।

- हरा समन्दर गोपी चन्दर

  बोल मेरी मछली कितना पानी?

  इतना पानी

- पोशम्पा भई पोशम्पा

  डाकुओं ने क्या किया

  ताला तोड़ा घड़ी चुराई

  अब तो जेल में जाना पड़ेगा

  जेल की रोटी खानी पड़ेगी

  ये आए धप

- कोकिला छिपाकी जिमे रात आई है

  कोड़ा जमाल खाई, पीछे देखी मार खाई

- राजा राजा हाँ मेरी परजा

- रिंगा रिंगा रोज़ेज़

  पॉकेट फ़ुल ऑफ़ पोज़ेज़

  वी ऑल फ़ॉल डाउन

- छुक छुक छलनी, और कने जा जंगली

- डोकरी माँ डोकरी माँ का करे है

- टिप्पी टिप्पी टॉप

  व्हॉट कलर डू यू वान्ट

  आई वान्ट, आई वान्ट आई वान्ट

  पर्पल... आदि आदि।

न जाने कितनी तुकबन्दियाँ इन सामूहिक खेलों के साथ जुड़ी हैं। रोमांचित कर देने वाली

बात तो यह है कि हिमालय के दुर्गम क्षेत्र में बसने वाले बच्चें हों या मैदानी शहरी इलाक़ों के बच्चे, ये खेल गीत अपनी क्षेत्रीयता की अनूठी पुट लिए हर जगह मिल जाएँगे।

इन खेल गीतों का आविर्भाव कब हुआ, कहाँ से हुआ और कैसे हुआ, ऐसी जानकारी न तो समाजशास्त्री जुटा पाए हैं और न ही भाषा वैज्ञानिक। पर इतना ज़रूर है कि सभी ज्ञानी चाहे वे भाषा के क्षेत्र से हों या बाल विकास, बाल मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, या किसी भी अन्य क्षेत्र से क्यों न हों, सभी ने इन खेल गीतों को बहुत तरजीह दी है।

इन खेल गीतों को सिर्फ़ संस्कृति और सामूहिकता का प्रतीक ही नहीं माना गया, अपितु बच्चों के सामाजिक, संवेगात्मक, और भाषिक विकास के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण भी माना गया है। सुर, लय व ताल के साथ गाई जाने वाली इन तुकबन्दियों में बच्चों ने कभी अर्थ ढूँढ़ने की कोशिश की हो ऐसा किसी भी समाज के इतिहास में नहीं हुआ होगा, फिर भी बिना प्रयास के कण्ठस्थ कर लेना और पूरे जोश व आनन्द के साथ गाना, यह हर जगह देखने को मिल जाएगा।

अपनी तमाम महत्त्वपूर्ण उपयोगिताओं के साथ-साथ ये खेल गीत किस तरह से पढ़ना सिखाने का ज़रिया बन सकते हैं, ऐसा अनुभव मैं आपके साथ साझा करना चाहती हूँ।

सम्भवतया आपके मन में सवाल उठे कि आज के समय में तो एक से बढ़कर एक रंगीन चित्रों वाली पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध हैं, आकर्षक चार्ट पेपर 'वर्णमाला व बारहखड़ी के' हैं, और भी तरह-तरह की बच्चों के स्तर की पठनीय सामग्री है तो फिर खेल गीत ही क्यों चुना गया पढ़ना सिखाने के लिए?

तो इस प्रश्न का पहला जवाब तो यह है कि 'पढ़ना' सिखाने के लिए यह ज़रूरी नहीं कि हमारे और हर बच्चे के पास पाठ्यपुस्तक हो या कहानी-कविताओं की पुस्तकें हों। अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में बच्चे जो भी बोलते हैं, जैसा भी बोलते हैं, उसके आधार पर बच्चों को पढ़ना सिखाया जा सकता है।

अब मैं खेल गीत के माध्यम से पढ़ना सिखाने की शुरुआत का अनुभव साझा करती हूँ। यह अनुभव देश के राज्य दिल्ली के दक्षिण-पश्चिम ज़िले की एक बस्ती का है जिसे कंजड़ बस्ती के नाम से जाना जाता है। जहाँ एक तरफ़ कनॉट प्लेस देखने से देश की समृद्धि और इसके आधुनिक एवं प्रगतिशील होने का भाव मिलता है, वहीं इस बस्ती को देखकर अपनी दरिद्रता, फटेहाली और पिछड़ेपन का संज्ञान होता है। इस बस्ती में रहने वाले सभी परिवार घुमन्तू समुदायों से हैं। आज की तारीख़ में भी इनका मुख्य पेशा विवाह जैसे अवसरों पर ढोल बजाना है। इसी समुदाय के बच्चों की दिनचर्या समीपस्थ बस्ती नॉगल राया के मुख्य बाज़ार में कूड़ा-करकट बीनने से आरम्भ हो जाती है। सुबह 6 बजे से लगभग ग्यारह बजे तक कूड़ा बीनना, समीप के सामुदायिक केन्द्र के पास उसका ढेर लगाना, फिर घर या भण्डारे, जहाँ से भी भोजन का प्रबन्ध हो, भोजन करके सोना, खेलना-कूदना, टेलीविज़न देखना, यही कुल मिलाकर इन बच्चों की दिनचर्या थी।

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के लागू होने के पूरे छह वर्ष बाद यह संज्ञान में आया कि इस बस्ती के लोगों व बच्चों के लिए स्कूल नाम की संस्था कोई भी मायने नहीं रखती है।

दाख़िला अभियान, दाख़िला उत्सव जागरूकता शिविर जैसे सशक्त अभियानों व कार्यक्रमों ने भी इन लोगों के आगे हार मान ली। इन सभी का यह मानना था कि 'सकूल जाके भी जिनगी जूं तो रैवे फिर टाबरा मोटी-मोटी कमाई कर लावे कचरा बीड-बाड के तो तुम सब के पेट मरोड क्यों उठें, मेनत मजूरी

करके जिनगी की रेल चलावे। सकूल में कुछ न धरा।'

इस बस्ती के बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने की ज़िम्मेदारी मुझे दी गई।

यह काम किस प्रकार से मेरे पास आया, मैंने किस तरह से बस्ती में अपनी जगह बनाई, किस तरह से उनके मानस में यह बात बैठाने में कामयाब हुई कि चलिए स्कूल न जाएँ तो न सही, यहीं बस्ती में तो पढ़ाई शुरू हो सकती है, यह सब लम्बी कहानी है। मैं सीधे उस दिन पर आती हूँ जब उन बच्चों द्वारा गाए जाने वाले खेल गीत से पढ़ना सीखना सम्भव हो पाया।

यदि आपके ज़ेहन में यह सवाल उपज रहा हो कि पाठ्यपुस्तकें नहीं थीं क्या? तो शुरू में ही बताना ठीक है कि कॉपी, पेंसिल, स्लेटें, कैलेण्डरनुमा श्यामपट्ट, चॉक, चार्ट पेपर और *रिमझिम* सभी कुछ था। मेरे सामने लगभग 4 वर्ष से 8 वर्ष तक की आयु के लड़के थे। बस्ती में लड़कियाँ भी थीं, पर समुदाय की तरफ़ से अभी उन्हें अपनी कक्षा में शामिल करने की अनुमति नहीं मिली थी।

उन बच्चों को कुछ अपने-से सीखे बालगीत सुनाए और कुछ उनके गीत सुने।

उनका एक गीत था :

आमलेट, सड़क पे लेट, आई मोटर फट गया पेट
मोटर का नम्बर एटीएट, मोटर का मालिक चंदू सेठ
चंदू सेठ ने मारी लात, वहाँ पे बन गई कुतुब मीनार
कुतुब मीनार से आई आवाज़, चाचा नेहरू ज़िन्दाबाद
वीट वीट जय हिन्द, मधुबाला गरम मसाला
सब्ज़ी में डाला पड़ गया काला, सीता गोरी रावण काला
उसको ले गया मूँछों वाला, सबकी हिम्मत पर पड़ गया ताला

यह गीत सभी ने बहुत ही तन्मयता के साथ गाया। उन्होंने बताया कि शाम को जब वे रेल पटरी पर 'चिक्कन पो' खेलते हैं, तो यही गीत गाते हैं।

इस कोरस का सभी ने जमकर मज़ा लिया और समाप्ति पर ज़बरदस्त ठहाके लगे।

ठहाकों की आवाज़ जैसे ही थोड़ी मद्धिम हुई, मैंने आधे-अधूरे आत्मविश्वास के साथ

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

कहा– "साथियों, कितना सुन्दर गीत है न ये, क्या तुम इसे लिखवा सकते हो?"

मेरे इस प्रश्न पर जो सन्नाटा छाया, उसे बयाँ करने के लिए मैं इतनाभर कह सकती हूँ कि पुराने जमाने की कहानियों में वर्णित, 'जंगल की नीरवता' का सा माहौल उत्पन्न हो गया था वहाँ। मैं भी अचकचा गई थी कि भला मैंने ऐसा क्या कह दिया, यह तो भला हो प्रहलाद का जिसने सन्नाटे से उबारा। उसने बहुत ही सशंकित होकर पूछा– "दीदी! जे बाले गाने को लिखने की बात है क्या?"

"हाँ हाँ, यही आमलेट वाला जो अभी तुम सबने गाया।"

मेरी इस बात पर मेरा मज़ाक़ बनाने वाली समवेत हँसी जो शुरू हुई तो वह मेरे डपटने पर ही शान्त हुई।

उन बच्चों का यह मानना था कि हम जैसे खच्चड़ लोगों की बातें भी लिखी जा सकती हैं, यह सम्भव नहीं। बड़े लोगों की, ऋषि-मुनि लोगों की बातें ही लिखी जा सकती हैं। मेरे लिए इस बात की कल्पना भी करना मुश्किल था कि इक्कीसवीं सदी के भारत के बहुत-से बच्चे इस बात से अनजान हैं कि जो कुछ भी बोला जाता है, वह लिखा जा सकता है। आमजन की कही गई बातें और ख़ास के मुँह से निकली बातें, सभी लिखी / छापी जा सकती हैं।

'हाथ कंगन को आरसी क्या'। अपने इन विद्यार्थियों के संशय को दूर करने के लिए पास ही रखे चार्ट पेपर से मार्कर उठा मैंने लिखने का उपक्रम किया। मुझे बस पहला ही शब्द याद था 'आमलेट'। मैंने भारी भरकम आवाज़ में उन्हीं के अन्दाज़ में गाया 'आमलेट' और आवाज़ के साथ-साथ लिखती गई, 'आ म लेट'।

मेरा बोलना और साथ-साथ उसी शब्द को लिखना इन सब बच्चों के लिए बहुत बड़ा अजूबा था। मैं फ़र्श पर बैठी झुककर लिख रही थी और चारों तरफ़ से बच्चे मुझे घेरकर मेरे लिखने को देख रहे थे। वे अभी भी शंका में थे कि मैंने 'आमलेट' ही लिखा है या कुछ और। चूँकि मुझे आगे की पंक्तियाँ याद थीं नहीं, इसलिए चार्ट पेपर पर झुके-झुके ही बोली– "हाँ भई, आगे नहीं लिखवाओगे क्या? बोलोगे तभी न लिख पाऊँगी मैं।" अब तक मैं जान चुकी थी कि इस समूह में किन-किन की चलती है यानी कि कौन लीडर है, सो उन्हीं तीन-चार लीडरनुमा बच्चों को देखते हुए मैंने संकेत दिया कि आप आगे गाएँगे तो उसी के सहारे ये लेखनी आगे बढ़ेगी।

वे तीनों-चारों एक दूसरे को कनखियों से देखने लगे। उनमें से एक ने कहा, "आप हमें .... (असंसदीय शब्द) तो नहीं बना रहीं?" उनका आशय यह था कि मैं उन्हें बेवकूफ़ तो नहीं बना रही हूँ।

मैंने उन्हें यक़ीन दिलाया कि इस दुनिया के हर व्यक्ति द्वारा कही गई बात लिखी जा सकती है।

अब पुनः उसी बच्चे ने सशंकित भाव से पूछा– "मतबल कि हम सब जो कुछ कहते-सुनते हैं वो सब-का-सब लिख सकते हैं और लिख सकते हैं तो पढ़ा भी जाएगा न।"

"दुरुस्त, एकदम दुरुस्त। सभी कुछ लिखा-पढ़ा जा सकता है। और जिन गालियों का तुम लोग इस्तेमाल करते हो न, वह भी लिखा जा सकता है पर मैं लिखूँगी नहीं।"

थोड़ी देर के सन्नाटे के बाद, उसी बच्चे पुत्तन ने प्रौढ़ता भरे अन्दाज़ में कहा, "चलो, अगर तुम कहती हो तो मान लेते हैं, चलो लिखो," और पुत्तन के साथ-साथ बाक़ी ने भी बोलना शुरू किया– "आमलेट, सड़क पे लेट ..."

उनके बोलने की गति के मुताबिक़ मेरे लिखने की गति धीमी थी, फिर वे इतना चीख-

चीख कर गा रहे थे कि मैं शब्द पकड़ ही नहीं पा रही थी।

मैंने लिखना रोककर, थोड़ा खीझ के साथ कहा– “अपनी स्पीड तो कम करो भई। इतना जल्दी हाथ चलता है क्या?”

मेरा इतनाभर कहना था कि अपनी जाँघों पर हाथ मारते हुए पुत्तन ने कहा– “हो गई सिट्टी-पिट्टी गुम। मे के रिया था कि आप फ़ालतू का ड्रामा कर रही हो।”

इससे पहले कि पुत्तन के संकेत पर बच्चों की जमात उठे, मैंने उन्हें हल्के से गुस्से के अन्दाज़ में फिर से समझाया और अपना गीत धीमी गति से गाने के लिए लगभग अनुनय विनय की।

अब फिर से लिखना शुरू हुआ। छठी पंक्ति के समाप्त होते ही पुत्तन व गोकुल ने सबको रोका और तीसरी पंक्ति पर हाथ रखकर कहा– “जे बोल के दिखाओ। का है जो?”

मैंने पढ़कर सुनाया– “आई मोटर फट गया पेट।”

इस पंक्ति के बाद जो भाव बच्चों के चेहरों पर आए, उन्हें शब्दों में बयाँ करना मुश्किल है। वे सब-के-सब विस्फारित नेत्रों से मेरी ओर और चार्ट पेपर पर लिखी पंक्तियों की ओर देख रहे थे।

आश्चर्य और आशंकाओं के माहौल में गीत किसी तरह से पूरा हुआ और अब इस गीत के ज़रिए पढ़ना सिखाने की बारी आई। मैंने दूसरा चार्ट पेपर उठाया और बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहा कि आपके इस गीत का पहला शब्द मैं इसपर लिख रही हूँ। आप ध्यान से देखें।

मैंने आमलेट शब्द को ‘साइट शब्द’ बनाया और जैसे-जैसे बोलती, वैसे-वैसे उन्हीं वर्णों पर अंगुली रखती।

फिर सबसे बुलवाया– आ म ले ट।

मैंने ये ध्यान रखा कि उनकी आवाज़ और मेरा संकेत मेल खाएँ। बच्चों का ध्यान आवाज़ और वर्ण के चित्र पर दिलाया। मैं बोली जाने वाली आवाज़ और उसके चित्र (वर्ण की बनावट) पर ध्यान दिला रही थी।

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया
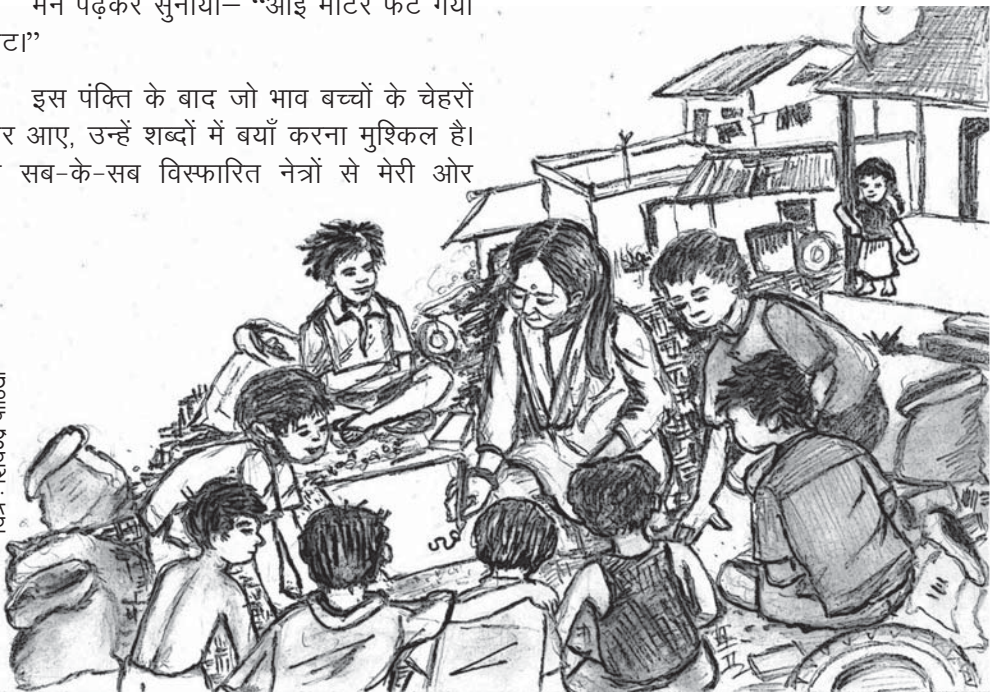
इसके बाद मैंने 'दूसरे चार्ट पर' पर 'आ' वाले शब्द लिखे, जैसे–

आधा	आटा	आपका	आम
आठ	आफ़त	आदत	आरती
आराम	आगे	आना	आढ़तिया

बच्चों से पूछा कि 'आमलेट' की कौन-सी तस्वीर इन शब्दों में नज़र आ रही है। मेरा उद्देश्य 'आ' सिखाना था। बच्चों ने थोड़े से समय में ही हर शब्द के 'आ' पर गोला लगाया और हर्ष का विषय था कि आम शब्द पर तो पूरा-पूरा गोला लगाया और यह शब्द बोलते-पढ़ते समय असीम सुख और अचरज की अनुभूति उनके चेहरे पर देखी जा सकती थी।

मैं आज की कक्षा समाप्त करना चाह रही थी, पर बच्चों के आग्रह पर दूसरा शब्द लिया गया :

पहले वाली प्रक्रिया दोहराई गई। इस बार 'परमजीत' के 'म' पर ध्यान देर से गया परन्तु बाक़ी शब्दों के 'म', यहाँ तक कि 'मौसम' के 'मौ' पर भी ध्यान गया। और उसके लिए चनुआ का सवाल था कि "यहाँ पर मा ने छतरी क्यों तान रखी है?"

इस तरह से 'आमलेट' में आने वाले सभी वर्णों के साथ काम किया गया। यद्यपि मैं उन बच्चों को 'आ म ले ट' लिखवाना भी चाह रही थी, पर सभी का ध्यान आकृतियों की पहचान करने में अधिक था।

सभी बच्चे खेल, थकान, ऊधम, खाना सब भूल चुके थे और अगली पंक्ति पर जाना चाह रहे थे, परन्तु मेरे लिए रुकना सम्भव न था। मुझे कहते हुए स्वयं से ग्लानि महसूस हो रही है।

अगले दिन का दृश्य परी कथाओं के सुखद अंजाम जैसा था। पिछले दिन के चार्ट पेपर को देख-देख कर बोलने-पढ़ने का काम चल रहा था।

आज मैंने कल की युक्ति के स्थान पर पूरी-की-पूरी पंक्ति को आधार बनाया :

आमलेट, सड़क पे लेट
आ गई मोटर फट गया पेट

मैं हर शब्द पर अँगुली रखते हुए बोलती जा रही थी और चार बार ऐसा करने के बाद बच्चों से भी बुलवाया। इसके बाद आम, सड़क, लेट, फट, पेट इन शब्दों की पहचान अलग से करवाई।

इस काम में लगभग तीन घण्टे लग गए थे। मुझे लगा, आज अब बस करना चाहिए या कुछ कहानी-कविता कहनी चाहिए पर बच्चों को अभी उकताहट या थकावट हुई हो, ऐसा जान नहीं पड़ा। मैं आगे की युक्ति सोचकर नहीं आई थी। मैंने तुरन्त कविता की पहली दो पंक्तियों को आधार बनाते हुए मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा :

एक सड़क थी।
सड़क पे मोटर आई।
न जाने कैसे मोटर का टायर फट गया।
चनुआ मोटर चला रहा था।
चनुआ मोटर से उतरा। पेट के बल लेटकर टायर चेक किया।

मैंने यह सामग्री बच्चों के आगे की और पूछा कि क्या इसे पढ़ना चाहोगे?

एक आवाज़ आई– "हमारे गाने का क्या हुआ?"

दूसरी आवाज़– "इतना मज़ा आ रहा था। काहे का भौकाल मचा रखा है?"

तीसरी आवाज़– "अरे! इसमें आमलेट तो है ही नहीं, वह कहाँ गया?"

चौथी आवाज़, लगभग चार्ट पेपर पर गिरते

हुए– "देख-देख ये 'सड़क' लिखा है बे .... (गाली) ये कहाँ से आ गई।"

जिस तरह से उनके गीत को पढ़कर 'प्रत्येक शब्द पर अँगुली रखते हुए' सुनाया गया था, ठीक उसी तरह यह टुकड़ा भी सुनाया गया। मुझे अपने-आप में गुदगुदी-सी हो रही थी कि बच्चे अधिकांश शब्दों को स्वयं पहचान पा रहे थे।

इस छोटे-से अनुच्छेद में 'चनुआ' नाम आते ही लगभग सभी बच्चे उछल-से पढ़े और आवाज़ें आने लगीं–

- ओय होय चनुआ उस्ताद। भूतनी के, मोटर चलाएगा?

- ये मोटर चलाएगा तो टायर फुस्स ही होएगा।

- आपने 'चनुआ' से क्यों चलवाई मोटर।

- हमारा नाम भी लिखो, हमारा नाम भी लिखो।

तो साथियों, उस अनुच्छेद से चनुआ का नाम हटाना ही पड़ा। किसी भी तरह के द्वन्द्व से बचने के लिए मैंने वहाँ अपना नाम लिख दिया। और एक अलग चार्ट पेपर पर सबके नाम मोटे-मोटे अक्षरों में लिखे गए।

अब सबका कहना था कि पहले अपने नाम लिखना सीखेंगे, उसके बाद आमलेट वाला गीत सीखेंगे।

साथियों, इस तरह से बच्चों के इस अजब से गीत के ज़रिए पूरी टोली ने पढ़ने की दुनिया में प्रवेश किया। कहीं हमारी टोली बिदक न जाए, इस डर से पाठ्यपुस्तक से भी पढ़ाना शुरू कर दिया पर जो आनन्द रस शुरुआती दिनों में आ रहा था वह अवर्णनीय है।

शारदा कुमारी ने शिक्षा मण्डल शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर के पुरम्, नई दिल्ली में बतौर प्राचार्य काम किया। राष्ट्रीय शैक्षिक परिषद्, नई दिल्ली की पाठ्यपुस्तकों एवं प्रशिक्षण निर्देशिकाओं के विकास एवं लेखन में सक्रिय योगदान। दिल्ली राज्य के लिए प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा एवं देखभाल पाठ्यक्रम का विकास। भिन्न-भिन्न स्तरों पर अध्यापक क्षमतासंवर्धन कार्यक्रमों का आयोजन एवं समन्वयन। 'अध्यापकों का भाषाई व्यवहार एवं जेण्डर सम्बन्धी रूढ़ छवियाँ' पर शोध कार्य।

सम्पर्क : ajai_cs@yahoo.com

मेरे स्कूली अनुभव

मुकेश मालवीय

फोटो : मुकेश मालवीय

एक शिक्षक के अपने शिक्षण के अनुभव क्या हैं? इस बात पर अनौपचारिक (चलता-फिरता संवाद) और औपचारिक (लिखने-पढ़ने और औरों को बताने के लिए किया गया गम्भीर संवाद या लेख), दोनों तरीक़ों में अपेक्षा होगी कि कोई शिक्षक अपने शिक्षण के तरीक़ों पर, बच्चों के सीखने पर, पाठ्यपुस्तकों पर, पाठ्यक्रम पर, टिप्पणी करेंगे, पर हमें ज़्यादातर संवादों में सरसरी बातें ही पता चलती हैं। ये बातें या तो बच्चों के लेकर पुरानी मान्यताओं, न सीखने के परम्परागत कारणों, ग़ैर-शैक्षणिक व्यस्तताओं, व्यवस्थाओं आदि को लेकर होती हैं या आधुनिक प्रचलन जैसे– खेल-खेल में शिक्षा, गतिविधि-आधारित शिक्षा, पुस्तकालय के प्रयोग आदि पर सर्वमान्य विचारों के उद्‌गार के रूप में पता चलती हैं।

असल में शिक्षण प्रक्रिया हम ज़्यादातर शिक्षकों के लिए एक रुटीन दिनचर्या की तरह है और इस शिक्षण प्रक्रिया के अनुभव अधिकांश शिक्षकों के पास लगभग एक जैसे ही हैं। इसलिए इसमें 'विशेष' का बोध हमारी स्मृति में नहीं आता। चूँकि शिक्षा की बातचीत और विषय, शिक्षण की विधियों, पाठ्यपुस्तकों की सामग्री, विषयों की अवधारणाओं एवं इनके मूल्यांकनों आदि पर ही केन्द्रित होते हैं। इसलिए इन बातों में आदर्श या विशिष्टता (अलगपन) के अनुभव की स्मृतियाँ गिने-चुने शिक्षकों के पास ही हैं।

यदि हम स्कूल और शिक्षा की बातचीत के विषयों के दायरे में थोड़ा फैलाव लाएँ और किसी शिक्षिका या शिक्षक को छूट दें कि वे स्कूल से जुड़ी कुछ बातें, जो उन्हें सहज ही याद आ जाती हैं, बताएँ। निश्चित ही तब हमें बहुत-सी ऐसी बातें पता चलेंगी जिन्हें हम शायद शिक्षा के घर में न सही, पड़ोस में ज़रूर रखना चाहेंगे।

यदि यही बात कोई मुझसे कर रहा होता कि मुझे शिक्षा के कार्य अनुभव में अनायास ही क्या याद आता है तो मैं यह सब बताना चाहूँगा।

मुझे अपने स्कूल की नौकरी के शुरुआती दिन याद आते हैं। मैं अपने घर से लगभग 10 किलोमीटर दूर सायकिल से एक जंगलभरे रास्ते से स्कूल जाता था। वह पगडण्डी वाला रास्ता, पेड़, पत्थर, नदी, नाले और रास्ते में मिलने वाले लोग और जानवर, ये सब 10 वर्षों तक नियमित मिलने के कारण मेरे लिए व्यक्तिवाचक संज्ञा बन गए थे। इन सबसे मिलकर मेरे स्कूल पहुँचने की याद बनती है। मेरे पहुँचने के पहले ही स्कूल खुल जाता था। स्कूल बच्चों का था, और उन्हें मालूम था कि उसे कब खोलना है और स्कूल खोलने के बाद क्या-क्या करना होता है। यह स्कूल मुझपर केन्द्रित नहीं था। जबकि मैं इस स्कूल का ही नहीं, उस गाँव का भी इकलौता शिक्षक था।

स्कूल और गाँव की ज़रूरत और ज़िम्मेदारी हम एक दूसरे को बताए बिना सीख रहे थे। स्कूल में बच्चों की पढ़ाई की कोई विशेष याद मुझे नहीं है, पर यह याद आता है कि हर साल हम स्कूल की मरम्मत करते थे जिसमें बच्चे स्कूल की छत के कवेलू छाने से लेकर चारों तरफ़ बागड़ (बाँस और लकड़ी की बाउण्ड्री) करने का काम करते थे। उस समय स्कूल के पास से गुज़रने वाला कोई-न-कोई ग्रामवासी इस काम में शामिल हो ही जाता। उस स्कूल की याद में मुझे बच्चों का खेलना याद रह गया है जहाँ लड़कियाँ नए-नए खेल ईजाद करतीं। हर दस-पन्द्रह दिन में उनके खेल बदल जाते। वो कूदने का खेल खेलतीं जिसमें ऊँचाई हाथ के दो पंजों से शुरू होती जो हाथ दो हाथ पीट ऊची पीट इस तरह बढ़ती जाती। कुछ पुराने खेल होते जिन्हें मैंने भी खेला था, तो कुछ बिलकुल नए। इन खेलों में बच्चे नियम बनाते फिर कुछ दिनों तक इसे परम्परा की तरह निभाते। मैं इनके खेलों को ध्यान से देखा करता, उनका खेलों में चुनौती का स्तर बदलते रहना, सहकार के साथ खेलना, सामूहिक नेतृत्व करना, रोचकता बनी रहे इसके लिए नए बदलाव करना, आदि। मुझे लगता कि इन्हें अधिकतर समय स्कूल में खेलना ही चाहिए और इस स्कूल में अलग-अलग तरह से ऐसा होता भी था। बच्चे कक्षा के अन्दर बैठे होते तब भी कुछ-न-कुछ खेल ही रहे होते। मैंने इसी स्कूल में बच्चों से ये 'गीत खेल' सीखा जिसमें वे दो समूहों में बँटकर यह पंक्ति गाते :

एक समूह – घोटल मोटल खोपरा खाए
दूसरा समूह – गाड़ी पे बैठकर जतरा जाए।

कुछ देर बाद ये पंक्ति बदलने लगती। इसमें खाने की चीज़ का नाम बदल जाता। फिर जाने की जगह बदल जाती। बैठकर जाने वाला वाहन बदल जाता और घोटल मोटल के नाम भी बदल रहे होते। अब हर बार एक बिलकुल नई पंक्ति बोली जाती। जैसे–

कुंती दसिया जलेबी खाए
सायकिल पे बैठकर बाज़ार जाए।

कभी वे गिनती का खेल खेलते जिसमें गोले में बैठकर गिनती क्रमशः बोलते जिसमें गिनती आगे बढ़ने का क्रम उनकी हाथ की दिशा पर तय होता। उसी दौरान मैंने भी इस तरह के आगे बढ़ाने वाले गीत सीखे थे, जिनमें हरेक को अपना नया वाक्य या वस्तु जोड़नी पड़ती थी। जैसे– हम तो सो रहे थे हमें मुर्ग़ी ने जगाया बोली, 'कुकड़ूँ कूँ'। अगले बच्चे को जगाने वाले और कैसे जगाया, यह पंक्ति नई तरह से जोड़ना होती। इसी तरह का एक और खेल था– 'मैं जाऊँगा रंगून, वहाँ से जाऊँगा देहरादून।' इसमें हरेक बच्चे को पिछली बोली हुई सारी जगहों के नाम बोलते हुए अपने एक नए शहर का नाम जोड़ना होता। इस तरह कुछ गतिविधियाँ कभी मेरी उपस्थिति में या अकसर मेरी अनुपस्थिति में इन कमरों में चल रही होतीं। मुझे याद आता है कि हमने सर्वे करने का खेल ईजाद किया था। साल में एक बार मुझे गाँव का सर्वे करना होता था जिसमें कुछ बच्चे मेरे साथ होते थे। इस सर्वे के आँकड़े मैं बच्चों को बताता था जैसे कि इस साल हमें 5 से 6 वर्ष वाले 15 बच्चे मिले हैं इन्हें पहली कक्षा में दर्ज करेंगे। कुछ सवाल मैं बच्चों के सामने रखता, जैसे– हमारे इस गाँव में कितने परिवार रहते हैं। बच्चों

के अन्दाज़े सही नहीं होते। हम बातचीत करते कि हमें हमारे गाँव के हरेक घर के बारे में तो पता है कि कहाँ कौन रहता है, पर कुल घरों की संख्या पता करने के लिए हमें सारे घरों को गिनना पड़ेगा। सर्वे में बच्चों की रुचि को देखते हुए हमने बच्चों के समूह बनाकर गाँव में जाकर कुछ छोटे-छोटे सर्वे किए। गाँव के परिवारों के पास बकरियों, गाय, भैंस आदि की संख्या पता करना, कितने घरों के आसपास पेड़ लगे हैं, गाँव में कुल कितने नीम के पेड़ हैं। कुछ सर्वे कक्षा की बातचीत में भी होते, जैसे— पता करना कि कक्षा 5 में किस बच्चे के घर में कितने लोग रहते हैं। आज किसने नहाया या किस-किस के घर में आज मक्के की रोटी बनी है।

इन कक्षाओं में बच्चे एक पंक्ति से उठकर दूसरी पंक्ति या दूसरे कमरे के बच्चों के बीच जाकर बैठ सकते थे और उनके किए जा रहे काम में हस्तक्षेप कर सकते थे। मेरे नियोजन से नहीं बल्कि यह बच्चों द्वारा बनाई गई व्यवस्था थी जिसे मैंने स्वीकार कर लिया था। स्कूल के दौरान सारे बच्चे स्कूल के अन्दर होंगे ऐसा कम ही होता था। कुछ स्कूल के आसपास, कुछ स्कूल से थोड़ी दूर वाली नदी के आसपास, तो कुछ और ज़्यादा दूर तक दिखाई दे सकते थे।

ये बातें समझने के लिए कुछ परिस्थितियों का उल्लेख भी करना चाहता हूँ ताकि विश्वसनीयता का धागा जुड़ा रहे। स्कूल में दो छोटे कमरे हैं और एक छपरपट्टी है। इसमें 100 से अधिक बच्चों को बैठना है। बच्चों की बाह्य सौन्दर्य की छवि शहरी और सम्पन्न बच्चों की तरह तो नहीं है, पर दयनीय भी नहीं है। ये आत्मविश्वास से भरे हुए बच्चे एक थैले में स्कूल से दी हुई पाठ्यपुस्तकों के साथ एक स्लेट लिए सुबह होने के दो-तीन घण्टे बाद स्कूल के आसपास आ जाते हैं या कई-कई दिन स्कूल के समय के दौरान स्कूल की तरफ़ झाँकते भी नहीं। एक तरह का स्वतंत्र व्यक्तित्व लिए ये घर और परिवेश के उन्मुक्त (दबावरहित) माहौल में बड़े हो रहे होते हैं। इनपर पराए नियमों का पालन बाध्यकारी नहीं हो सकता। यह समझ मैंने इस गाँव में लगभग दस वर्ष की अन्तरंगता से हासिल की। ये बड़ों की तरह घर की बहुत सारी ज़िम्मेदारियों का निर्वहन कर रहे होते हैं। स्कूल इन्हें तभी आकर्षित कर सकता है जब वहाँ इन्हें अपनी स्वतंत्रता और आनन्द का माहौल उपलब्ध हो।

मुझे इस स्कूल में बहुत-सी ऐसी सामग्री दिखी जो सालों से बन्द होने की वजह से कबाड़ बन गई थी। इसमें से कुछ को मैंने बच्चों की जद में ला दिया। इसमें कुछ किताबें थी— कहानियों की, कविताओं की, चित्रों की। ये रोचक किताबें थीं जिन्हें पढ़ने में मुझे आनन्द आता था, तो लगभग सारी किताबें मैंने पढ़ डालीं और कुछ बच्चों ने भी।

एक मोटी रस्सी भी इस भण्डार में मुझे मिली। स्कूल के चारों तरफ़ आठ पेड़ थे। एक पेड़ पर इस रस्सी का झूला डाल दिया गया। यह झूला उन पेड़ों की तरह स्कूल का होते हुए भी स्कूल से स्वतंत्र था।

बीस साल पुरानी इस स्कूल की याद में दस-बारह बच्चों की छवि और नाम मुझे आज

फोटो : मुकेश मालवीय

भी याद हैं। राजू रमसा, डोमू, गुलाब, दसिया, शिवकली, मोकल आदि। ये क्यों याद हैं मुझे? इनमें से पढ़ने में कोई अव्वल नहीं था, पर असाधारण जुड़ाव की स्मृतियाँ मेरे लिए इन्हें यादगार व्यक्तित्व बनाती हैं। राजू रमसा भोला भाला था। उससे प्रेरित होकर मैंने एक कहानी लिखी थी जो *चकमक* में प्रकाशित हुई थी। डोमू की माँ नहीं थी, यह मुझे बहुत बाद में पता चला। वह स्कूल की ज़िम्मेदारी में सबसे आगे रहता था। गुलाब और दसिया बच्चों के झगड़े निपटाने में अपनी पहचान क़ायम किए हुए थे। इसी तरह मोकल सिंग को चौथी कक्षा में ही ईंट जुड़ाई करना आ गया था और वह अपने पिता के साथ यह काम करने चला जाता था।

कुछ ऐसी बातें भी मुझे याद आती हैं जो निराश करती हैं। सोचता हूँ इन्हें नहीं होना था। जैसे एक दूसरे स्कूल में शुरू-शुरू में जब मैं बच्चों से अपरिचित था तब बच्चों के बारे में यह जानकारी इकट्ठी करनी थी कि हरेक बच्चे के पिता कौन-सा काम करते हैं। कक्षा 6 में जाकर मैं हरेक बच्चे से यह पूछ रहा था। मैं बच्चों का नाम पुकारता और बच्चे अपने पिता के काम के बारे में बताते। ज़्यादातर किसान, मज़दूर, मिस्त्री, कारपेंटर जैसे शब्द बोल रहे थे। एक लड़की का नाम पुकारने पर उसने धीरे से कुछ कहा। मुझे ठीक से समझ नहीं आया तो मैंने दुबारा पूछा। तब भी उसने जो बोला वो मुझे समझ नहीं आया। मैंने झल्लाकर ज़ोर से बोलने को कहा तो लड़की ने तब भी धीरे से बोला और उसकी आँखों में आँसू आ गए। इस बार मुझे सुनाई दिया था, उसने कहा था कि पिताजी जेल में हैं। मैं अवाक् था, भौचक था, अपने-आप से शर्मिन्दा था, मुझे सूझा ही नहीं कि क्या करना चाहिए। मैं सिर्फ़ इस क्षण को जितना छोटा हो सके उतना छोटा और सहज करने की कोशिश में तुरन्त अगले बच्चे का नाम पुकारने लगा।

जब मैं पहवाड़ी के मिडिल स्कूल में था तब वहाँ कक्षा आठवीं की एक लड़की थी, जो पास के गाँव से पढ़ने आती थी। बोर्ड की परीक्षा में वो पहले ही दिन पेपर देने के समय तक नहीं आई। मैं उसे ढूँढ़ने उसके घर गया तो पता चला कि वह महुआ बीनने चली गई। मैं उसके छोटे भाई को लेकर वहाँ पहुँचा और उसे वहीं डाँटने लगा। उसने रोते हुए कहा कि मुझे पेपर नहीं देना। उसकी माँ एक साल पहले नहीं रही और अभी चार दिन पहले ही उसके पिताजी ने दूसरी शादी कर ली थी। ख़ैर, मैंने उसे समझाकर पेपर देने के लिए किसी तरह मनाया।

एक और बालक के साथ अपने व्यवहार को लेकर मैं शर्मिन्दा हूँ। वह कक्षा 6 का बालक था और प्राय: कक्षा में नेतृत्वकर्ता की भूमिका में रहता था। हमारे स्कूल में एक नई मैडम, जो पहली बार ही बच्चों को पढ़ा रही थीं, कुछ दिनों से इस कक्षा को पढ़ा रही थीं। उनकी शिकायत थी कि यह बालक कक्षा में बहुत शैतानी करता है और मेरा रोब बिलकुल नहीं मानता। एक दिन मैं एक दूसरी कक्षा में पढ़ा रहा था और पास की कक्षा में बहुत होहल्ला हो रहा था। मैंने उस कक्षा में झाँका तो नई मैडम परेशान थीं और बच्चे उन्हें सुन नहीं रहे थे एवं यह बालक इधर-उधर घूम रहा था। जाने मुझे क्या हुआ कि मैं ज़ोर से चिल्लाया और उस कक्षा में जाकर इस बालक को पकड़कर, उसके कन्धे झकझोरते हुए उसे उसके स्थान पर बैठा दिया। सभी बच्चे शान्त हो गए। यह बालक बहुत भयभीत हो गया था। कुछ समय बीत गया, पर उस दिन से इस बालक के मन में मेरी छवि ख़राब हो गई। मैंने उससे प्यार जतलाने की कई कोशिशें कीं, पर उसने लगभग सालभर मुझसे बात नहीं की। मैं सोचता हूँ कि उस दिन मैंने ऐसा क्यों किया। मैं किसपर अपना रोब झाड़ना चाहता था— बच्चों पर या उस नई मैडम पर।

एक दो बार ऐसा भी हुआ कि बच्चे मेरी कोई ग़लती पकड़ लेते थे। जैसे, एक बार मैं सम पंचभुज के कोणों की माप को लेकर ग़लतफ़हमी या शिक्षकीय दम्भ में था और बच्चों के उत्तरों को ग़लत ठहरा रहा था। जब पाँच-सात बच्चों का उत्तर एक जैसा ही आया तो मैंने उनपर

नक़ल करने का आरोप भी लगा दिया। बच्चे उस दिन मेरी ग़लत बात मान गए, अगले दिन मुझे अपनी ग़लती का एहसास हुआ तब भी मैं खिसियाता हुआ बच्चों को झूठे स्पष्टीकरण देता रहा। बाद में मुझे लगा कि मेरे अन्दर कितना कमज़ोर शिक्षक है जो बच्चों के सामने अपनी ग़लती स्वीकारने से डरता है।

स्कूल में हरेक बच्चा अपनी व्यक्तिगत पहचान के साथ होता है, पर मैं कितने कम बच्चों को उनकी इस पहचान के साथ जानने की कोशिश करता हूँ। स्कूल बच्चों की व्यक्तिगत पहचान को समूह की पहचान में तब्दील करने पर आमादा होते हैं। स्कूल में बच्चे हमारे लिए समूहवाचक संज्ञा बन जाते हैं।

तो मैं वापस यादों पर लौटना चाहता हूँ। कुछ अच्छी यादें हैं जो सुकून देती हैं। मैंने अभी के अपने नए स्कूल में दो बड़े ब्लैकबोर्ड बाहर की दीवार पर लगाए जिनमें बच्चों को अपने मन की बात लिखने का आग्रह किया गया। यह स्कूल बड़ा स्कूल है जिसमें मेरे अलावा भी दस शिक्षक हैं। मैं बच्चों से साधारण बात, जो उनकी मौलिक हो, लिखने के लिए कहता लेकिन बच्चे ऐसी बातें लिखते जिन्हें नीति वाक्य कहते। अन्य शिक्षकों का भी यही निर्देश होता। तो हमने एक बोर्ड पर नीति वाक्य और एक पर मन की बात लिखना चालू किया। मौलिक बात क्या हो, इसकी शुरुआत बच्चों के जन्मदिवस की बधाई और शुभकामनाओं से हुई। इसमें जिस बच्चे जन्मदिन होता उसके नाम के साथ उसके लिए अपने विचार लिखने के लिए कुछ बच्चे आगे आए। फिर इसमें अन्य छोटी मोटी घटनाओं का लेखन भी होने लगा।

छुट्टी से पहले एक कालखण्ड खेल का होता है। इसमें मैंने देखा कि कुछ बच्चे खेलने के बजाय एक जगह बैठकर बातचीत करते। इससे मुझे आइडिया आया कि क्यों न हम एक कमरे में गुफ़्तगू का कालखण्ड शुरू करें। तो हमने 'आओ बात करें' नाम से एक कमरे में लगभग एक घण्टे की बातचीत शुरू की। हर दिन एक नए विषय पर बातचीत रखी जाती, जिसमें बच्चों को अपनी बात रखने और उन बातों को गम्भीरता से सुनने, उनपर अपना तर्क रखने और समझ ज़ाहिर करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता। जैसे, एक दिन इस चर्चा में 'डर' पर संवाद हो रहा था कि आपको किस-किस से डर लगता है और क्यों लगता है? तो एक-दो बच्चों ने कहा कि हमें शिक्षकों से डर लगता है क्योंकि वे हमें मार सकते हैं। मैंने कहा कि तुम दोस्तों में भी तो झगड़ा और मारपीट भी हो जाती है, तो क्या तुम्हें अपने दोस्तों से भी डर लगता है। इसपर एक बच्चे ने कहा कि दोस्त से डर नहीं लगता। यदि कोई दोस्त मारता है तो हम भी उसको मार सकते हैं। बड़े लोगों से डर लगता है और टीचर डाँटते हैं इसलिए उनसे डर लगता है। तब मैंने कहा कि घर में माता-पिता बड़े होते हैं और वे भी तो डाँटते हैं, तो क्या उनसे डर लगता है। एक लड़की ने कहा कि माता-पिता से तो रिश्ता होता है न, इसलिए उनसे क्यों डर लगेगा। अच्छा, मैंने कहा कि क्या किसी को अपनी बराबरी वाले से भी डर लगता है। एक लड़की ने कहा कि हाँ, लड़कों से डर लगता है वे हमें कुछ भी बोल सकते हैं। अन्य लड़कियों ने कहा कि नहीं, लड़कों से डर नहीं लगता। क्या लड़कों को लड़कियों से डर लगता है, इस तरह बात आगे बढ़ती रही।

इस बातचीत के कालखण्ड का आकर्षण बच्चों में बढ़ने लगा था। इसमें मेरी कोशिश होती कि बच्चे अधिक-से-अधिक बोलें। जब कोई बोल रहा है तो उसकी पूरी बात को सुना जाए। जो बच्चे नहीं बोल रहे हैं उनसे पूछना कि उनका क्या मत है। बात को तय विषय पर केन्द्रित रखने की कोशिश करते रहना, बातचीत में गम्भीरता का माहौल बनाए रखना, और बच्चों को बातचीत से ही यह एहसास कराना कि उनके द्वारा बोली गई बात महत्त्वपूर्ण है।

एक और नई प्रक्रिया हमने प्रारम्भ की। स्कूल में एक मासिक पर्चा निकालना प्रारम्भ किया। इसमें हम किसी एक विषय, जैसे– छुट्टियों की

बातें, बारिश ओ बारिश, परीक्षा आई, आदि पर उनके लिखित विचारों को इकट्ठा करते और इन्हें एक या दो कार्ड शीट पर लगाकर प्रकाशन बोर्ड पर लगा दिया जाता। इस लेखन का एक नमूना यह है।

कुछ बातें खेलों पर भी करना चाहते हैं। स्कूल में शिक्षक की उपस्थिति में खेले जाने वाले खेल वर्षों से एक जैसे ही हैं, जैसे– लड़कियों के लिए कुर्सी दौड़, रस्सी कूदना, खो-खो, दौड़ आदि और लड़कों के लिए कबड्डी, क्रिकेट, फ़ुटबॉल, दौड़ आदि। खेल कालखण्ड में शिक्षक बच्चों के साथ कम ही होते हैं। बच्चे जब ख़ुद ही खेल रहे होते तो वे कई नए खेल बना रहे होते हैं। मैंने एक दिन उन्हें छोटी गेंद से फ़ुटबॉल की तरह खेलते देखा। इतनी छोटी गेंद को पैर से मारना मुश्किल होता है तो मैंने उन्हें नए खेल सुझाए। गेंद को सिर पर रखकर सन्तुलन बनाकर इस तरह चलना कि गेंद सिर से गिरे नहीं। फिर हमने गेंद को दो बच्चों को पीठ में दबाकर, फिर गालों में दबाकर और दो नाकों से दबाकर चलने को कहा। और इसका एक फ़ोटो भी है मेरे पास।
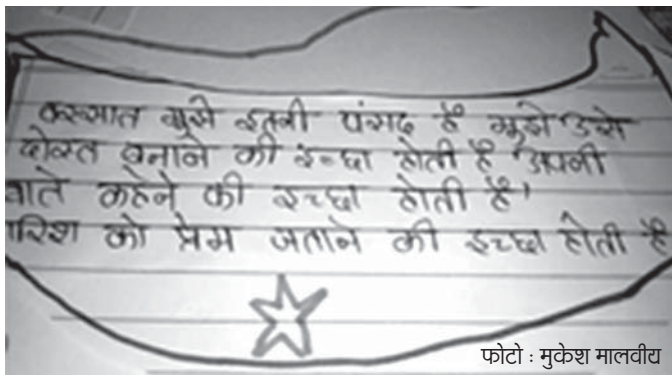
फोटो : मुकेश मालवीय

इस तरह नए खेल हमने ईजाद किए जिनमें चुनौतियाँ और नई तरह की बाधाएँ हर्ष और मनोरंजन का उत्कर्ष ला देतीं। हमने लड़कियों को भी इन खेलों में बराबरी से शामिल किया, चाहे वो पेड़ पर चढ़ना, रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ना जैसे साहसिक खेल ही क्यों न हों।

अब बस करते हैं। यादें तो जितना याद करो उतनी बढ़ती ही जाती हैं। यह अलग बात है कि इन बातों के कोई शैक्षिक निहितार्थ हो सकते हैं या नहीं।

फोटो : मुकेश मालवीय

मुकेश मालवीय पिछले दो दशक से भी ज़्यादा समय से स्रोत शिक्षक के रूप में सरकारी और ग़ैर-सरकारी भूमिकाओं में सक्रिय हैं। कक्षा अनुभवों को लेकर सतत लिखते रहते हैं। वर्तमान में अनुसूचित जाति विकास विभाग के शासकीय आवासीय ज्ञानोदय विद्यालय, होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) में शिक्षक पद पर कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mukeshmalviya15@gmail.com

नन्दिनी का स्कूल

कमला बाजपेई

स्कूल बच्चों के जीवन में अनायास आया हुआ हस्तक्षेप है, जो अगर बहुत सोचा-परखा, सुनियोजित व संवेदनशील न हो तो उनके शुरुआती दिनों को असहज बना सकता है। बच्चों का शुरुआती जीवन सीखने और समझ बनाने के एक सहज प्रवाह की तरह होता है। उसमें आसपास अवलोकन, आपसी अनौपचारिक बातचीत, मौलिक अभिव्यक्ति और सामूहिकता के लिए पर्याप्त अवसर होने बहुत जरूरी हैं। स्कूल में नन्दिनी की असहजता के उदाहरण के बहाने, लेखिका प्राथमिक स्कूल में सीखने-सिखाने के तौर-तरीक़ों और शिक्षक की तैयारी पर रोशनी डालती हैं। सं.

नन्दिनी का स्कूल

इस लेख में स्कूल कैसे बच्चों का समाजीकरण करता है, स्कूल की प्रक्रियाएँ बच्चों के मन मस्तिष्क में किस तरह की छवियाँ बनाती हैं, उसके बारे में बातचीत है। पहले नन्दिनी की कहानी है, और फिर मेरे बचपन के स्कूल का ज़िक्र भी है, नन्दिनी के साथ हुए मेरे अनुभव ने मुझे मेरे बचपन के स्कूल के अनुभवों की याद दिला दी। नन्दिनी के स्कूल में प्रवेश लेने और स्कूल के समुदाय से जुड़ने के दौरान क्या-क्या और कैसे घटा इसका अवलोकन करते हुए मैंने स्कूल की प्रक्रियाओं, शिक्षकों के व्यवहार और उनकी बातों का बच्चों पर प्रभाव इनके सन्दर्भ में क्या-क्या समझा और सीखा, इस बारे में मैंने लिखने की कोशिश की है।

नन्दिनी के साथ जुड़ने का अनुभव

नन्दिनी आज पहली बार स्कूल आई थी। नन्दिनी, 7 वर्ष की वह बच्ची, जो मन में उल्लास और कौतूहल से भरी एक दुनिया लेकर स्कूल की पहली कक्षा के कमरे में प्रवेश करती है। वह अपनी मौसी के साथ रायपुर के कुशालपुर इलाक़े में रहती है। उसके माता-पिता बलौदा बाज़ार के भाटापारा के पास एक फ़ैक्ट्री में काम करते हैं। नन्दिनी ने पहले दिन स्कूल में आते ही अपनी चहकती आवाज़ में शिक्षकों को नमस्ते कहते हुए अपनी उपस्थिति को दर्ज करवाया। बहुत ही खुली अभिव्यक्ति और चंचल स्वभाव की नन्दिनी आज स्कूल में घूम-घूम कर सभी को अपनी उपस्थिति का एहसास करवा रही थी। इसके अतिरिक्त वह स्कूल की सभी चीज़ों को छूकर उन चीज़ों के साथ जुड़ना चाहती थी। नन्दिनी के इस जुड़ाव को शिक्षक सहज तरीक़े से नहीं ले पा रहे थे, जैसे– उसे कुर्सी पर बैठने से रोका, किताबों को छूने से रोका, चॉक से बोर्ड पर लिखने से कई बार रोका। सभी बच्चों के बैग को खोलना और उनमें से किताबों को बार-बार निकालना, अपने बैग को कभी इस स्थान पर रखकर बैठना तो कभी दूसरे स्थान पर, नन्दिनी के यह सभी कार्य शिक्षकों को असहज कर रहे थे। ऐसा शिक्षकों के चेहरों के भावों में दिख रहा था, और कई बार तेज़ आवाज़ में शिक्षकों द्वारा नन्दिनी को चुप करवाने का प्रयास भी किया गया।

आज नन्दिनी का स्कूल में पाँचवाँ दिन था। अब नन्दिनी अपनी कक्षा में बच्चों के साथ हिल मिल गई थी, उसके कुछ दोस्त भी बन गए थे। नन्दिनी जब कक्षा में पढ़ती तो कुछ शब्दों को ठीक से नहीं बोल पाती थी, जैसे– बदला को 'बलदा' बोलना, हाँ को 'हाव' बोलना और हमेशा वह 'हमर मन' बोलती थी। कभी-कभी वह अन्दाज़े से किताब को खोलती और जो चित्र होते उन्हें देखकर अपनी कहानी सुनाती। कॉपियों में यूँ ही या तो कुछ चित्र बनाती या फिर कुछ लिखती, जिसका शिक्षकों के लिए कुछ अर्थ नहीं होता। शिक्षकों के अनुसार उसे दूसरी कक्षा में होना चाहिए और उसे किताब पढ़ना चाहिए, इसीलिए शिक्षक शिक्षा का अधिकार क़ानून (RTE) को कोसने का कोई मौक़ा नहीं छोड़ते। इसके अतिरिक्त, शिक्षक नन्दिनी के माता-पिता को भी दोषी बनाने के लिए उन तमाम शब्दों का इस्तेमाल करते जो कि किसी भी इंसानियत को चुनौती देते थे।

सिलसिला आगे बढ़ता रहा और अभी सत्र के 4 से 5 महीने गुज़र गए। अब नन्दिनी की उस चंचलता, खुली अभिव्यक्ति को जैसे कहीं किसी ने कोस दिया हो, अब सुबह नन्दिनी स्कूल आती और जो शिक्षक सामने मिल गए, उनसे नमस्ते किया और अपनी कक्षा में चली गई। कक्षा में चुपचाप किताब निकालकर जो भी शिक्षक बोलते, उसे अपने आसपास के बच्चों के सहयोग से पूरा करना और शिक्षकों से कॉपी को चेक करवा लेना जैसे उसकी नियमित दिनचर्या बन गई थी।

नन्दिनी से मेरी बातचीत की शुरुआत – पहला घटनाक्रम

एक दिन जब मैं स्कूल गई उस समय अतिशेष चल रहा था और सभी बच्चे स्कूल मैदान में खेल रहे थे, लेकिन नन्दिनी झूले के पास बहुत उदास बैठी थी। मैंने पास जाकर पूछा, "क्या हुआ नन्दिनी, यहाँ अकेले क्यों बैठी हो?" नन्दिनी ने सहज ही कहा, "नहीं, कुछ नहीं मैडम, बस यूँ ही।" लेकिन उसके चेहरे के भाव यह साफ़-साफ़ बयान कर रहे थे कि कुछ तो चल रहा है नन्दिनी के मन में, जो उसे इस स्कूली माहौल में परेशान कर रहा है। लेकिन वह अपने मन की बात कह पाए, ऐसा उसका मेरे साथ रिश्ता शायद नहीं बना था। तभी मैंने सभी बच्चों को एक खेल खेलने के लिए कहा। बच्चे खेल का नाम सुनते ही ख़ुश हो गए और एक साथ इकट्ठे हो गए। नन्दिनी पास में आकर बोली, "आप भी खेलेंगी मेरे साथ मैडमजी!" मैंने कहा, "हाँ, क्यों? मैं नहीं खेल सकती क्या?" नन्दिनी ने कहा, "नहीं, क्योंकि मैडम लोग हमारे बच्चों के साथ थोड़े न खेलती हैं।" 'बोल भाई कितने, आप कहें जितने' खेल शुरू हुआ, लेकिन नन्दिनी अभी तक खेल में शामिल नहीं हुई थी और वहीं झूले के पास बैठी खेल को देख रही थी। बीच-बीच में नन्दिनी के चेहरे पर हँसी के भाव आ रहे थे। अतिशेष समाप्त होने की घण्टी लगी और सभी बच्चे अपनी-अपनी कक्षा में चले गए। नन्दिनी कक्षा में नहीं गई, वह अभी भी बैठी थी उसी स्थान पर। मैं फिर से नन्दिनी के पास गई और पूछा, "कक्षा में नहीं गईं?" नन्दिनी ने कहा, "अभी मैडम किताब पढ़ाएँगी, वह मेरे से नहीं बनता, मुझे पढ़ना नहीं आता, मैं बाद में जाऊँगी।" मैंने कहा, "अच्छा यहीं किताब लेकर आ जाओ हम मिलकर पढ़ेंगे।" नन्दिनी ख़ुशी से गई और मैडम से यह कहकर अपना बैग ही लेकर आ गई कि मुझे बाहर जो मैडम बैठी हैं उन्होंने पढ़ने के लिए बुलाया है। शिक्षिका ने कुछ नहीं कहा। नन्दिनी अपने बैठने के लिए एक टाट पट्टी भी साथ में लाई। हम दोनों वहीं बैठ गए। अभी तक मैं नन्दिनी की समस्या को इतना समझ पाई थी कि शायद शिक्षकों के साथ नन्दिनी सहज नहीं है और नन्दिनी को कक्षा में वह माहौल नहीं मिल पा रहा है जिसमें वह अपनी बात को कह सके और उसके सवालों और बातों को शिक्षकों के द्वारा स्वीकार्यता मिले। हम दोनों ने कक्षा दो की किताब से 'तितली और कली' का पाठ निकाला और तितली के बारे में हम दोनों चर्चा करने लगे। इस चर्चा में अगर मैं एक

सवाल पूछती तो नन्दिनी उसके 5 से 7 जवाब देती। जैसे– मैंने पूछा कि तितली देखी है? तुमने, कभी पकड़ी भी है क्या? वह ख़ुश होकर हँस-हँस कर तितली के बारे में चर्चा कर रही थी। तितली के बारे में चर्चा करते-करते बाग़, घर की बाड़ी, किस फूल पर तितली अधिकतर बैठती है और क्यों? यह तमाम अनुभव नन्दिनी शेयर कर रही थी। अपनी चर्चा में नन्दिनी ने यह भी बताया कि अभी वातावरण उतना साफ़ नहीं है, यानी कि गाड़ियों के धुएँ और प्रदूषण के चलते अब तितलियाँ कम दिखाई देती हैं। पढ़ने और चर्चा के इस क्रम में मैंने पाया कि किताब पढ़ना नन्दिनी को नहीं आ रहा है, लेकिन उस पाठ में जो सीखने के कौशल शामिल हैं वह सभी नन्दिनी के साथ हो रही इस चर्चा में शामिल हैं। रही बात किताब के टेक्स्ट को पढ़ने की तो उसे मौखिक से किताब का टेक्स्ट पढ़ने तक कैसे ले जाया जाए, इसपर काम करने के कुछ और तरीक़े हो सकते हैं। जैसे– चर्चा के बाद मैंने नन्दिनी के साथ किताब के उस पाठ की एक-एक लाइन को उँगली रख-रख कर पढ़ा। इसके अतिरिक्त मैंने बीच-बीच के शब्दों के बारे में पूछा और नन्दिनी ने अधिकतर शब्दों की छवि को पहचानते हुए सही जवाब दिए। हमने आपस में जो मौखिक बात की उसके बारे में एक चित्र नन्दिनी को बनाने के लिए कहा, इस चर्चा ने नन्दिनी को मेरे साथ जोड़ा। अधिकतर जब मैं स्कूल से चलने लगती, नन्दिनी ज़रूर पूछती, "अब कब आओगी मैडम?" जिस दिन मैं स्कूल जाती, नन्दिनी आकर पूरे सप्ताह में क्या-क्या हुआ, क्या अच्छा नहीं लगा, उसकी पूरी कहानी सुनाती। मैंने इसी चर्चा के दौरान यह भी समझने की कोशिश की कि आख़िर नन्दिनी को कक्षा में बैठना क्यों पसन्द नहीं है। मैंने कुछ सवाल नन्दिनी से चर्चा में शामिल किए। जैसे– क्यों आपको कक्षा में बैठना अच्छा नहीं लगता? आप इतना चुप क्यों रहती हो, जबकि पहले तो आप सभी से बहुत बात करती थीं? आपके परिवार में कौन-कौन हैं? क्या-क्या काम करके आप स्कूल आती हो? क्या आपको माँ की याद आती रहती है? इन तमाम सवालों ने मुझे इस निष्कर्ष तक पहुँचाया कि बच्चों, ख़ासकर नन्दिनी, का अपना अनुभव शिक्षक शिक्षण में शामिल नहीं कर पा रहे हैं। न पढ़ पाने का संकोच और झिझक किस तरह अपमान का हिस्सा बन जाती है जो कि नन्दिनी जैसे तमाम बच्चों को कक्षा में शामिल होने से रोकती है। बच्चों को किताब की भाषा और रटा-रटाया तरीक़ा बड़ा ही निराश लगता है, जिसमें बच्चे भी यह मान बैठते हैं कि शिक्षक जो बताएँगे उसे ही उन्हें करना है और वह ही पढ़ना है। शिक्षक भी यह मान लेते हैं कि कोर्स पूरा करना है, इसलिए कक्षा को समय और पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु से बाँधना ही होगा। यह बन्धन बच्चों को कक्षा में मिलकर कुछ नया करने और आपस में अपने अनुभवों से सीखने के अवसरों को कम कर देता है।

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

दूसरे घटनाक्रम का अनुभव कुछ और भी अलग रहा है, आइए देखते हैं क्या हुआ

एक और दिन की घटना का ज़िक्र करूँगी। मुझे लगता है कि जो कुछ नन्दिनी के साथ हुआ वैसा और भी बहुत सारी बच्चियों के साथ होता होगा। ऐसे में एक शिक्षक का क्या रोल हो सकता है उस तरह की घटना से बच्चों को बाहर लाने में? नन्दिनी जब स्कूल आई

थी उस समय वह सभी बच्चों के साथ खेलने, जैसे– पकड़म पकड़ाई, छूने, कसकर पकड़ने का खेल, आदि में यह भेदभाव बिलकुल नहीं देखती थी कि वह लड़की है तो सिर्फ़ लड़की को ही पकड़ना है, लेकिन धीरे-धीरे नन्दिनी ने उसकी कक्षा में जो सहपाठी लड़के थे उनके साथ खेलना छोड़ दिया था। अभी वह किसी भी लड़के से बात तक नहीं करती थी, भले वह पहली कक्षा का ही क्यों न हो। एक दिन तो जब हम गोला बनाकर एक दूसरे का हाथ पकड़कर 'चकई के चकदूम' खेल रहे थे, तब नन्दिनी ने अपनी जगह केवल इसलिए बदली कि उसके बग़ल में दूसरी कक्षा का सूरज खड़ा था। तीन-चार दिन लगातार अवलोकन करके यह बात समझ में आ गई कि कुछ तो हुआ है नन्दिनी के साथ। नन्दिनी की कक्षा शिक्षिका के साथ इस बात पर चर्चा की गई कि नन्दिनी के व्यवहार में आए इस बदलाव को कैसे समझा जाए कि क्या हुआ है? इसे कैसे पता लगाया जाए कि यह बच्ची इतनी असहज क्यों हो गई है, जिसके चलते नन्दिनी ने खेलों में शामिल होना भी बन्द कर दिया था। हम दोनों ने तय किया कि हम सीधे बात न करके समझने का प्रयास करें कि क्या-क्या बदलाव इसी विषय की तरह से जुड़े हैं जैसे– खेल में न शामिल होना, खाना खाते समय लाइन में न बैठना, अपनी बात को साझा न करना, और क्या-क्या होता है पूरे दिन में। हमने 3 से 4 दिन अवलोकन किया और हमारा विश्वास पक्का होने लगा कि किसी ने ज़रूर कुछ कहा है नन्दिनी से।

एक दिन जब नन्दिनी खाना खा रही थी तब मैं भी अपना टिफ़िन लेकर उसके पास बैठ गई। "क्या लाई हो, हमें भी दोगी?" मैंने पूछा। नन्दिनी ने अपना टिफ़िन बढ़ाया तो मैंने उसमें से चावल, रोटी और थोड़ी टमाटर की चटनी ले ली। "स्कूल का खाना नहीं लिया तुमने?" मैंने पूछा। नन्दिनी ने कहा, "नहीं, मैं घर से लाई थी।" "अच्छा, घर में खाना किसने बनाया था आज?" मैंने कहा। नन्दिनी हँसने लगी और कहा, "माँ ही रोज़ बनाती हैं।" मैंने कहा, "क्यों, पापा नहीं बनाते?" बहुत ज़ोर से हँसी नन्दिनी और कहा, "नहीं, लड़के लोग नहीं बनाते।" मैंने पूछा, "क्यों?" नन्दिनी ने कहा, "मम्मी लोग बनाती हैं, दीदी लोग बनाती हैं।" मैंने कहा, "नहीं, मेरे घर में तो बाबू बनाता है।" नन्दिनी ने कहा, "हाँ, लेकिन शादी होने के बाद नहीं बनाएगा।" मैंने पूछा, "क्यों?" उसने कहा, "क्योंकि उसकी पत्नी आ जाएगी वह बनाएगी।" मैंने कहा, "हम लोग तो ख़ूब मस्ती करते हैं और साथ में खेलते हैं।" नन्दिनी ने कहा, "हाँ, शादी जो हो गई है आपकी। शादी के बाद साथ-साथ खेलने में कोई दिक़्क़त नहीं है।" "अच्छा, ऐसा किसने कहा?" मैंने पूछा।

नन्दिनी ने कहा, "बड़े गुरुजी कह रहे थे कि अब बड़ी हो गई हो लड़कों से दूर रहा करो।" मैंने कहा, "अच्छा, तो यह बात है इसीलिए आप नहीं खेलती हो और लाइन में बैठकर खाना भी नहीं खाती हो। लेकिन आपकी कक्षा की बाक़ी लड़कियाँ तो खेलती भी हैं और लाइन में बैठकर खाना भी खाती हैं, उनसे भी तो गुरुजी ने कहा होगा।" नन्दिनी ने कहा, "हाँ, कहा था मेरे सामने ही, लेकिन मैंने गुरुजी की बात मान ली और वह लोग नहीं माने हैं। गुरुजी की बात तो माननी चाहिए नहीं तो पाप लगता है।" मैंने पूछा, "अच्छा ऐसा किसने कहा?" नन्दिनी ने उत्तर दिया, "अरे गुरुजी ने कहानी सुनाई थी 5 सितम्बर को कि जो बच्चे गुरुजी की बात नहीं मानते उन्हें पाप लगता है।" हमारा खाना ख़त्म हुआ और उसी के साथ बात भी, लेकिन यह समझ आ गया कि शुरुआत कहाँ से हुई है। अब इसे ख़त्म कैसे और कहाँ किया जाए, इसकी चर्चा शिक्षिका के साथ करनी थी। हमने यह अनुभव कक्षा शिक्षिका के साथ साझा किया। उन्होंने भी स्वीकारा कि हाँ सही है यही हुआ होगा शायद, क्योंकि हमारे हेड टीचर इस तरह की बातें बोलते हैं। उनसे बात करनी चाहिए हम लोगों को, लेकिन उनसे भी सीधे बात नहीं करनी चाहिए बल्कि कुछ ऐसा करें जिससे वह समझ जाएँ।

अगले दिन से मैंने और शिक्षिका ने मिलकर काम करना शुरू किया। अभी खेल में हमारी एक तरफ़ हाथ पकड़े नन्दिनी होती और दूसरी तरफ़ सूरज, बीच में पानी पीने के बहाने मैं नन्दिनी को सूरज का हाथ पकड़ाकर चली जाती और नन्दिनी खेलती रहती। इसी तरह मैं खाना खाने बैठती और हमारी एक तरफ़ नन्दिनी और दूसरी तरफ़ कोई एक लड़का। हम बारी-बारी से दोनों से बात करते, इस बातचीत में नन्दिनी भी बीच-बीच में बोलती रहती। धीरे-धीरे वह खेलने में सहज होने लगी थी। जिस दिन मैं स्कूल नहीं जाती उस दिन बहुत सचेत तरीक़े से शिक्षिका इसी काम को करतीं। लेकिन बड़े गुरुजी ने जो कहा था उसे चर्चा में कैसे लाया जाए। इसके लिए एक दिन हमने कक्षा में कहानी पर काम करना तय किया और उसमें बड़े गुरुजी को भी शामिल किया, बिना इस चर्चा के उद्देश्य को बताए हुए। उद्देश्य यह था कि किसी तरह से वह बात चर्चा में आए और उसके अतिरिक्त उसके दूसरे हिस्सों पर भी गुरुजी कुछ बोलें। हमने कहानी चुनी 'आज्ञाकारी बच्चा'। एक बच्चे को शिक्षक बनाया और दूसरे एक बच्चे को छात्र का रोल दिया गया। इस कहानी को नाटक के द्वारा प्रस्तुत करने की तैयारी बच्चों के साथ की गई। दोनों बच्चों के साथ, शिक्षक और बच्चों के बीच डायलॉग को इस तरह से बनाया गया कि किसी तरह से 'पाप पड़ेगा' यह बात आ जाए और शिक्षक उसे नकारे कि नहीं, ऐसा नहीं होता है।

नाटक की प्रस्तुति की सहमति और हेड टीचर की उपस्थिति को सुनिश्चित किया गया। प्रस्तुति के समय हेड टीचर, नन्दिनी की कक्षा की शिक्षिका और मैं क्लास में उपस्थित थे। 17 बच्चे नन्दिनी की कक्षा में थे जिसमें से उस दिन 14 बच्चे उपस्थित थे।

दोनों बच्चों ने इस गीत से प्रस्तुति शुरू की कि 'हम भारत के बच्चे, गुरुजी माँग रहे हैं आपसे, ऐसी शिक्षा जिसमें प्यार हो दुलार, छोटे-छोटे गीत हों थोड़ा-सा संगीत हो, हँसी हो मज़ा हो, खेल हो खिलौने'।

शिक्षक के रोल में बच्चे ने अपने डायलॉग की शुरुआत की– "अरे राजू, ये कुर्सी इधर लाओ।"

बच्चे (स्टूडेंट) के रोल में बच्चे का डायलॉग– "जी गुरुजी, अभी आया।"

शिक्षक– "अरे राजू, क्या कर रहे हो? जल्दी आओ।"

बच्चा– "जी गुरुजी।"

शिक्षक– "क्या हुआ, कहाँ मर गया रे?

कुर्सी बनाने लगे हो क्या?''

बच्चा– ''नहीं गुरुजी, पहले से बनी रखी है कुर्सी, बस लाना है।''

शिक्षक– ''अरे आ गया, इतना देर कहाँ लगाया?''

बच्चा– ''गुरुजी बस कुछ नहीं, यूँ ही पेड़ के पास खड़ा था।''

शिक्षक– ''मैंने कहा था कि बड़ों की बात को पहले मानो। तुम खेलने लगे थे। बड़ों का अपमान करना, कहना न मानना, इससे सरस्वती माँ नाराज़ हो जाती हैं, पाप लगता है। पहले भी कहा है कई बार, तुम्हारी समझ में नहीं आता!''

बच्चा– ''यह पाप क्या होता है गुरुजी? आपने देखा है इसे! जैसे हम पानी को देख सकते हैं, छू सकते हैं, पी सकते हैं, आपने कभी पाप को देखा है, छुआ है!

शिक्षक– ''नहीं, पाप देखने की चीज़ नहीं है वह तो बस लग जाती है।''

बच्चा– ''अच्छा, जैसे हमें मेहँदी लग जाती है, भूख लग जाती है, ऐसे ही न!''

शिक्षक– ''अरे नहीं, यह ऐसी ही चीज़ है जो बस लग जाती है।''

बच्चा– ''अरे गुरुजी, ऐसे कैसे लग जाती है? कुछ तो होगा, नहीं तो बिना दिखने वाली चीज़ कैसे लग जाती है किसी को।''

शिक्षक– ''मैं कल और सोचकर बताऊँगा।''

शिक्षक के द्वारा यह बात कहते ही सभी बच्चे तालियाँ बजाने लगे। हेड टीचर खड़े हो गए और दोनों बच्चों को गले से लगा लिया और कहा, ''मेरे प्यारे बच्चों! मैं बताता हूँ आपको कि पाप क्या होता है। सच में मुझे भी इस बात का एहसास हो गया है कि पाप जैसी कोई बात होती ही नहीं है। मैं भी ऐसे ही आप सभी को कह-कह कर डराता था। आज से इस पाप जैसे शब्द को मैं अपनी डिक्शनरी से निकलता हूँ।'' बच्चे ही शिक्षक से नहीं सीखते, शिक्षक भी बच्चों से सीखते हैं। जो 14 बच्चे इस नाटक को देख रहे थे उनमें सबसे ज़्यादा ख़ुशी नन्दिनी के चेहरे पर थी। नन्दिनी ने तो जैसे मानो कोई बड़ा इनाम हासिल किया हो। गुरुजी के द्वारा इस बात को कहने के बाद नन्दिनी दौड़ती हुई आई और हेड टीचर से हाथ मिलाने लगी। नन्दिनी को ऐसा करते हुए देखकर सभी बच्चे हेड टीचर से हाथ मिलाने लगे। हेड टीचर के चेहरे पर भी एक अजीब-सी मुस्कुराहट और सन्तोष की लकीर साफ़ दिखाई दे रही थी।

नन्दिनी के साथ लगातार कक्षा के बाहर और कक्षा में चलाई गई इस औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रक्रिया ने उसके चेहरे की ख़ुशी और अभिव्यक्ति को वापस लाने में काफ़ी सहयोग किया। इस प्रक्रिया में नन्दिनी की कक्षा शिक्षिका भी शामिल हुईं। उन्होंने इस बात को महसूस किया कि कक्षा में उनका अधिक हस्तक्षेप उनके और बच्चों के बीच दूरी पैदा करता है। उन्होंने, नन्दिनी के साथ जिस तरह औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षण प्रक्रिया चलाई जा रही है, उसे अपनी कक्षा में कैसे लेकर जाएँ इसपर चिन्तन करते हुए अपने शिक्षक समूह में चर्चा की और मेरे साथ भी चर्चा करते हुए कुछ प्रक्रियाओं को कक्षा में लागू किया। जैसे– उन्होंने किसी भी पाठ को पढ़ाने के पहले एक दिन बच्चों के अनुभवों को शामिल करने के लिए उसी विषय से जुड़े कुछ सवाल देकर आपस में चर्चा करके बताने के लिए अवसर पैदा किए। उन्होंने कक्षा में बातचीत के अवसर अधिक पैदा किए जिसमें 'आज की बात' प्रमुख गतिविधि रही। कक्षा में समूह बनाए और आपस में एक दूसरे के साथ बात करके सीखने की प्रक्रिया को अपनाया। उनकी कक्षा में अब बच्चे समूह में ही बैठते हैं। कौन-सा बच्चा किस तरह से कक्षा में शामिल हो पा रहा है और कौन-सा नहीं, उस बच्चे के

साथ अलग से अनौपचारिक चर्चा करना शुरू किया। मैडम के द्वारा जो प्रयास किए गए उनसे नन्दिनी की तरह ही कक्षा के दूसरे 6 से 7 बच्चे भी अब शिक्षण में शामिल होने लगे हैं। नन्दिनी अभी अपनी किताब को रुक-रुक कर पढ़ पाने तक पहुँची है। नन्दिनी और कक्षा के ऐसे ही कुछ और बच्चों के साथ प्रयास अभी जारी हैं।...

(नन्दिनी एक परिवर्तित नाम है। सहमति न होने के चलते शिक्षिका और स्कूल का नाम शामिल नहीं किया गया है।)

और अब मेरे बचपन के अनुभव से कुछ बातें जो मुझे अभी तक याद हैं और जिन्होंने शायद मुझपर बहुत असर डाला। इसे मैं कुछ समेकित करके लिख रही हूँ। आप देखेंगे कि इसका बड़ा हिस्सा नन्दिनी के बचपन के अनुभव जैसा ही है, किन्तु यह एक दूसरी दृष्टि यानी बच्ची की दृष्टि से है।

बचपन में सीखने का उत्साह और स्कूल में उसकी जगह

मेरा बचपन उल्लासों और कौतूहल से भरा हुआ एक ऐसा अनुभव रहा है जिसमें सवालों का जाल और विचारों का अथाह समन्दर था। लेकिन बच्चों को सवाल पूछने नहीं चाहिए, चुपचाप बड़ों की बातों का आदर करना चाहिए, ऐसी मान्यताएँ जितनी गहरी उस समय के समाज में थीं उतनी ही गहरी आज के समाज में भी मुझे दिखाई देती हैं। छोटे बच्चों का बड़ों से सवाल पूछना सही नहीं माना जाता है, यह बात उस समय तो समझ नहीं आती थी जितनी कि आज स्पष्ट रूप से समझ में आती है। बच्चों को अपनी जागीर मानने का अधिकार बड़ों के हाथ में होता ही है, यह बात आज तमाम चर्चाओं में से बहुत ही स्पष्ट रूप से सामने आती है।

बड़े होकर स्कूल जाना है, ऐसा कहते हुए सुना था दादाजी को। लेकिन दोस्तों और बड़े भाई के माध्यम से बनी स्कूल की छवि ने हमारे मन में स्कूल को लेकर एक भय पैदा कर दिया था। स्कूल एक ऐसी जगह है जहाँ अनुशासन का होना पहली अनिवार्यता होती है, दोस्तों की ऐसी बातों को सुन-सुन कर मैंने भी अपने मन में स्कूल की छवि एक ऐसी जगह के रूप में बना ली कि जिसमें मैं जब भी जाऊँगी मार खानी ही पड़ेगी। इस छवि ने मेरे मन में स्कूल के लिए डर और उत्साह दोनों पैदा किए। डर इस बात का कि स्कूल जैसी कोई जगह है जिसमें मार पड़ती है, और उत्साह इस बात का कि बिना कोई ग़लती किए कैसे कोई किसी को मार सकता है।

स्कूल की एक और छवि मेरे मन में बनी कि स्कूल में बहुत सारे नए-नए दोस्त मिलेंगे, जिनके साथ खेल सकते हैं और ख़ूब सारी बातें की जा सकती हैं। क्योंकि दोस्त लोग स्कूल की तमाम वह बातें भी करते थे, जैसे– आज कबड्डी खेलने में क्या मज़ा आया, आज पिट्ठू में तो दूसरी टीम को हरा दिया, आज एक नए साथी ने स्कूल में नाम लिखवाया उससे दोस्ती हो गई। इस तरह की चर्चा दोस्तों के बीच सुनकर ऐसा भी लगता था कि कितना मज़ा आता होगा स्कूल में। दोस्त ख़ूब सारे गीत गाते थे, कहानियाँ सुनाते थे। अभी मन में रोज़ स्कूल जाने और इन दोस्तों के अनुभवों को स्वयं महसूस करके देखने का कौतूहल जन्म लेने लगा। मेरे मन में ये सवाल बन गए कि मैं भी स्कूल जाकर देखती हूँ, क्या सच में स्कूल ऐसी कोई जगह है जहाँ खेलने को भी मिलता है और मार भी पड़ती है। इसी कौतूहल के साथ एक दिन सुबह-सुबह मैं दोस्तों के पीछे-पीछे स्कूल में पहुँच गई।

जिस दिन मैं पहली बार स्कूल गई, चुपचाप इस क्लास से उस क्लास में घूमती रही। कभी किसी से कुछ भी नहीं बोलती इसलिए कोई शिक्षक भी कोई बात नहीं करता। लेकिन पूरे दिन जो भी प्रक्रियाएँ होतीं, उनको देखती रहती और अलग-अलग प्रक्रियाओं से अलग-अलग छवि मन में बनाने लगी। जैसे– प्रार्थना में लाइन से खड़े होंगे, गुरुजी के पैर छूने हैं, छोटे बच्चे आगे

बैठेंगे, जिनका नाम लिखा है वही बच्चे श्यामपट्ट पर कुछ लिखेंगे, गुरुजी डाँटेंगे तो उस समय चुप रहना है, क्लास में भी चुप रहना है। कुछ प्रक्रियाओं का असर मेरे व्यवहार में भी दिखाई देने लगा। इस बात का एहसास मेरे घर में मेरी माँ को सबसे पहले हुआ, और वह इस तरह से कि जो बच्ची इतना ज़्यादा बोलती थी कि बोलने के लिए उसे डाँट पड़ती थी, वह अचानक चुप कैसे हो गई? स्कूल की बहुत सारी ऐसी प्रक्रियाएँ जिनका प्रभाव बच्चे के सीखने से लेकर उसके व्यवहार में बदलाव और तर्क करने की क्षमताओं में सीधे-सीधे देखा जा सकता है, उनमें ऐसी ही एक प्रक्रिया है स्कूल की प्रार्थना सभा। उस समय स्कूल में जो प्रार्थना होती थी उसकी कुछ लाइनें मैं आप सभी के साथ साझा कर रही हूँ : 'वह शक्ति हमें दो दयानिधे कर्तव्य मार्ग पर डट जाएँ, पर-सेवा पर-उपकार में हम जगजीवन सफल बना जाएँ'।

इस प्रार्थना को रोज़-रोज़ गाते-गाते मैंने जो छवि बनाई, उसमें यह प्रमुख रहा कि कोई दयानिधि नाम का सुपरपॉवर है जो लोगों को बड़ा-छोटा, अमीर-ग़रीब बनाने में भूमिका निभाता है। वही एक अमूर्त शक्ति है जिसके प्रति सभी को 'कर्तव्य परायण' रहना है। लेकिन जो व्यक्ति किसी को दिखाई नहीं देता, जिसको कभी किसी ने देखा नहीं उसके बारे में यह कहा जाना कि वही सब कुछ है कितना सही होगा। पर यह दूसरा सवाल करने का साहस नहीं था और वह सवाल मन में ही रहा, यह सवाल आज भी बना हुआ है। ऐसी ही स्कूल में तमाम प्रक्रियाएँ थीं जो मुझे परेशान भी करती थीं और सोचने के लिए तैयार भी करती थीं।

प्रार्थना सभा का एक पक्ष था ऊपर लिखी हुई अमूर्त शक्ति के प्रति सवाल। लेकिन इसकी दूसरी प्रक्रियाएँ और भी गहरे सवालों की तरफ़ मुझे ले जाने लगीं, जैसे— नियमित कुछ ख़ास बच्चों के द्वारा की जाने की प्रक्रिया से जो बदलाव मुझमें दिखने लगे वह और भी चौंकाने वाले थे। जैसे— इस प्रक्रिया से जो कुण्ठा मन में उत्पन्न हुई, वह थी कि प्रार्थना वो बच्चे करवाएँगे जिनकी सुरीली आवाज़ हो, साफ़ सुथरे कपड़े पहने हों, शिक्षक उन्हें प्यार करते हों, पढ़ने में बहुत तेज़ हों, कक्षा में सबसे पहले बोलेंगे, आगे बैठेंगे, आदि आदि। इस कुण्ठा ने मुझे देर से स्कूल जाने के लिए तैयार किया। अब मैं घर से चली जाती और खेत की मेड़ पर बैठी रहती इस बात के इन्तज़ार में कि जब प्रार्थना समाप्त होगी तब जाएँगे। हमसे कौन पूछेगा? शिक्षक तो हमारे जैसे लोगों से बात भी नहीं करेंगे। मेरे मन में क्लास में भी शिक्षकों के प्रति नकारात्मक नज़रिए का विकास होने लगा, जिसके चलते मैं शिक्षकों के द्वारा कही बातों को नज़रअन्दाज़ करने लगी। यह बात थी मेरी।

आपसी बातचीत सीखने में मददगार

बच्चों की भाषा का सम्बन्ध उन अनुभवों से है जिन्हें वे अपने हाथों और शरीर से ख़ुद करते हैं। यह सम्बन्ध उन वस्तुओं से भी है जिनके सम्पर्क में वे आते हैं। बच्चे जिन चीज़ों के सम्पर्क में आते हैं उनसे और घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने के लिए वे शब्दों की मदद लेते हैं। बड़ों

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

की तरह बच्चे भी अकसर भाषा का प्रयोग बीते हुए को याद करने के लिए करते हैं, जैसे– कोई घटना, व्यक्ति या कोई चीज़ जो बच्चों के आसपास है उसे बच्चे अपनी चर्चा में शामिल करते हैं। इस समय अगर कक्षा में बच्चों द्वारा शामिल की गई बात को स्थान नहीं मिलता, तो बच्चे को लगता है कि उसकी बात का कक्षा में कोई प्रयोजन नहीं है। इस प्रक्रिया में कई बार बच्चे ये भी मानने लगते हैं कि उन्होंने जो कहा वो शायद ग़लत था इसीलिए उसे शामिल नहीं किया गया। इस प्रक्रिया में कई बार शिक्षक ये भी बोलने की ग़लती कर बैठते हैं कि तुम चुप रहो, कम बोलो।

बच्चे अकसर चीज़ों और अनुभवों को इसीलिए कक्षा में प्रस्तुत करते हैं कि उनके द्वारा कही गई बात को स्वीकार किया जाए (शायद किसी भावनात्मक स्तर पर)। बच्चे कई बार अपने डर, अपनी योजनाएँ, अपेक्षाएँ और किसी अजीब परिस्थिति में क्या हो रहा होगा, इसपर अपने विचार प्रकट करते हैं। स्कूल हो या घर, दोनों में ही बच्चों का बात करना प्रायः ग़लत समझा जाता है। ये माना जाता है कि यदि कोई बच्चा बात कर रहा होगा तो वो ठीक से पढ़ाई नहीं कर रहा होगा। इसीलिए जैसे ही शिक्षक बच्चों को बात करते हुए देखते हैं उन्हें तुरन्त रोकते हैं। आपस में बात करने का मौक़ा बच्चों को सिर्फ़ भोजन अवकाश जैसे अवसरों के दौरान ही मिलता है। बातचीत के प्रति उपेक्षा की वजह से हम शिक्षा में बातचीत के माध्यम से एक दूसरे के अनुभवों से सीखने के अवसरों को कम करते जा रहे हैं। अगर कक्षा में हर बच्चा यह महसूस करे कि वह जो कहेगा उसे सुना जाएगा एवं सभी बच्चे यह महसूस करें कि शिक्षक को उनका बातचीत करना और बोलना अच्छा लगता है, तो फिर कक्षा का माहौल उन तमाम सम्भावनाओं से भर जाएगा जो सभी बच्चों के सीखने में सहयोग कर रहा होगा।

निष्कर्ष

लेख के अन्त में, मैं अपने अभी तक के अनुभव के आधार पर यही कहना चाहूँगी कि शिक्षक को किताबों की दुनिया और आम जीवन की दुनिया के बीच के सम्बन्ध को कक्षा में बहुत ही योजनाबद्ध तरीक़े से लेकर आना चाहिए। बच्चे के बचपन की जिज्ञासा और उठ रहे कौतूहल एवं सवालों को कक्षा में रखने के लिए पर्याप्त और सकारात्मक माहौल बनाया जाए। टेक्स्ट बुक की सीमाएँ एवं बच्चों के अनुभवों के कक्षा में जगह के महत्त्व के सम्बन्ध की समझ एक शिक्षक के रूप में होना कक्षा की पहली आवश्यकता है। यह समझ अगर एक शिक्षक के पास नहीं होगी तो वह न तो अपनी क्लास में सही तरीक़े से काम कर पाएगा और न ही बच्चों के साथ न्याय कर पाएगा। बच्चों के पढ़ने-लिखने को समग्रता में समझने की ज़रूरत है। इसके लिए कक्षा में बच्चों के साथ नियमित बातचीत हो, बच्चों को अपने अनुभवों को साझा करने का मौक़ा मिले, बच्चों को अपने आसपास के परिवेश के बारे में सोचने का अवसर मिले, बच्चों के बीच पढ़ने का माहौल बनाने के लिए उन्हें पाठ्यपुस्तक के अलावा अन्य बाल पुस्तकें एवं कहानियाँ आदि पढ़ने के पर्याप्त अवसर और सामग्री उपलब्ध हो। बच्चों द्वारा पढ़ी गई कहानियाँ, बाल साहित्य आदि के सम्बन्ध में अनुभवों पर चर्चा होनी चाहिए और बच्चों को अपने अनुभवों को लिखने का अवसर भी मिलना चाहिए।

कमला बाजपेई का शिक्षा में 20 वर्षों से ज़्यादा का अनुभव रहा है। वे शाला और समुदाय के बेहतर रिश्तों और जेण्डर के मुद्दे पर 'लोकमित्र' रायबरेली, उत्तर प्रदेश के साथ लम्बे समय तक जुड़ी रही हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन रायपुर, छत्तीसगढ़ में कार्य कर रही हैं। यहाँ प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों के साथ जुड़ाव बनाते हुए बच्चों में प्रारम्भिक गणित व पढ़ने–लिखने के कौशलों को विकसित करने में भूमिका निभाती हैं।

सम्पर्क : kamla.bajpai@azimpremjifoundation.org

गतिविधि–आधारित गणित शिक्षण

दुर्गेश

गणित की प्रकृति ही कुछ ऐसी होती है जिससे प्रारम्भिक कक्षाओं के बच्चों में गणित के प्रति भय और निराशा का भाव पैदा हो जाता है। ऐसी स्थिति में गणित शिक्षण में आने वाली कठिनाइयों को अध्यापन में गतिविधियों के माध्यम से दूर किया जा सकता है। लेख गणित शिक्षण के मूल उद्देश्यों, गणितीय गतिवधियों से आशय और शिक्षण में इनके महत्त्व आदि के बारे में विचार रखता है। लेख में गणित को अन्य विषयों से जोड़ने व इसके ज़रिए सामाजिक मूल्यों के विकास के महत्त्व पर भी चर्चा की गई है। सं.

गणित के प्रति बचपन से ही हमारे मन में भय विकसित हो जाता है, वह ज़िन्दगीभर हमारा पीछा नहीं छोड़ता। क्या कुछ ऐसे तरीक़े हो सकते हैं, जो गणित के प्रति भय नहीं, बल्कि उत्सुकता एवं लगाव पैदा करें? शिक्षकों के परिप्रेक्ष्य में भी देखें तो शिक्षक साथी गणित शिक्षण में अथक प्रयास करते हैं, पर बच्चों में अपेक्षित परिणाम नज़र न आने के कारण मन में चिन्ता और निराशा का भाव व्याप्त होने लगता है। गणित की कक्षा में बहुत सारे बच्चों में अपेक्षित परिणाम न मिलने के क्या कारण हो सकते हैं? और इसके क्या समाधान हो सकते हैं? इस तरह के प्रश्नों का जवाब ढूँढ़ने का प्रयास करें तो एक तरीक़ा गणितीय गतिविधियों के रूप में सामने आता है।

गतिविधियों द्वारा गणित शिक्षण बच्चों के लिए रोचक होता ही है, साथ ही यह गणित के मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने में भी मदद करती हैं। यदि गतिविधियों का निर्धारण बच्चों के पूर्वज्ञान तथा उनके दैनिक जीवन के अनुरूप किया जाए तो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया और सरल एवं स्पष्ट होती है। गणित विषय की प्रकृति के कारण, शिक्षण के दौरान आने वाली कठिनाइयों को गतिविधियों द्वारा कम किया जा सकता है। गणित शिक्षण के दौरान किए गए ठोस कार्य, एक शिक्षक को ऐसे अनेक मौक़े उपलब्ध कराते हैं, जब वे गणित को अन्य विषयों से जोड़ सकते हैं और सामाजिक मूल्यों पर चर्चा भी कर सकते हैं। इस तरह के कार्यों द्वारा, शिक्षक के लिए जानना आसान होता है कि विद्यार्थी को कहाँ कठिनाई है और उसे किस तरह के सहयोग की आवश्यकता है। तो चलिए, एक आपसी समझ बनाने का प्रयास करते हैं कि गणित में गतिविधि का क्या तात्पर्य है, गतिविधि का गणित शिक्षण में क्या महत्त्व है और यह गतिविधियाँ गणित की प्रकृति, उसके उद्देश्य व सामाजिक मूल्य जैसे मसलों पर किस प्रकार एक शिक्षक की मदद कर रही होती हैं। सबसे पहले गणित विषय में गतिविधि या गणितीय गतिविधि का क्या आशय है, यह समझने का प्रयास करते हैं। गणितीय गतिविधियों से तात्पर्य ऐसे अनुभवों से है, जिनमें बच्चा गणितीय अवधारणाओं / संक्रियाओं की समझ / प्रक्रियाओं को स्वयं ठोस वस्तुओं (TLM) के माध्यम से करके देखे। इस समझ / प्रक्रियाओं को महसूस करते हुए स्वयं का ठोस अनुभव प्राप्त करे, और गणितीय अवधारणाओं / संक्रियाओं को अपने अनुभव में लाकर, उन्हें अपने जीवन से जोड़ सके। इस प्रकार की प्रक्रिया को गणितीय गतिविधियाँ कहा जा सकता है। कक्षा-कक्ष में की जाने वाली हर प्रक्रिया को गतिविधि नहीं कहा जा सकता। गतिविधियों के अपने कुछ गुणधर्म होते हैं, जिन्हें

अगर विस्तार से जानने का प्रयास करें तो वह हमें इस प्रकार दिखाई देते हैं : गतिविधियों में किसी अमूर्त अवधारणा को ठोस रूप देने के लिए किसी सामग्री का उपयोग हो सकता है, कोई खेल, वास्तविक जीवन से जुड़ा कोई अनुभव, और कोई भागदौड़ शामिल हो सकती है। हर गतिविधि के पीछे उद्देश्यों का होना आवश्यक है। ये उद्देश्य अलग-अलग हो सकते हैं, जैसे– किसी संघर्ष / चुनौती की शुरुआत करना, क्षमता के विकास के लिए अभ्यास, अवधारणाओं की प्रस्तुति, किसी विचार की ज़रूरत को महसूस करना, नए हुनर के विकास के लिए अवसर आदि। गतिविधियाँ अकेले या समूह में हो सकती हैं। हो सकता है कि इसमें पूरी कक्षा या आसपास के लोग भी शामिल हों। गतिविधियों की कई ख़ूबियाँ होती हैं, अर्थात वे रोचक, सार्थक व तर्कसंगत होती हैं। कुछ प्रक्रियाएँ गतिविधि के अन्तर्गत नहीं आतीं, जैसे– याद करना, नक़ल उतारना, बार-बार बोलना।

मैं आपके साथ अपना एक अनुभव साझा करना चाहूँगा। कुछ दिनों पहले मैं, कक्षा 5 में गणित विषय के अन्तर्गत, क्षेत्रफल पर हो रही कक्षा का अवलोकन कर रहा था। शिक्षण विधि कुछ इस प्रकार थी कि शिक्षक पहले पुस्तक पढ़ते, फिर उसमें लिखी बातों को बोलकर बच्चों को समझाने का प्रयास करते। इसी दौरान पुस्तक में एक गतिविधि लिखी थी जिसमें बच्चों को मेज़ पर पुस्तकें जमाते हुए, मेज़ का क्षेत्रफल पुस्तकों की संख्या के रूप में पता करना था। पर हुआ कुछ ऐसा कि इस गतिविधि को भी बोलकर ही समझाया गया। अन्त में शिक्षक ने बच्चों को एक-दो सूत्र बताए, और फिर सूत्रों की सहायता से उत्तर प्राप्त करने का सिलसिला प्रारम्भ हो गया। अवलोकन के दौरान मुझे महसूस हुआ कि यह कक्षा बच्चों के लिए न तो रोचक थी और न ही अधिकतर बच्चों ने इस कक्षा में ज़्यादा कुछ सीखा था। बच्चों से हो रही चर्चा से यह स्पष्ट था कि वे क्षेत्रफल को सिर्फ़ सूत्रों पर आधारित संक्रिया के रूप में देख रहे थे। यदि पाठ्यपुस्तक में दी गई इस गतिविधि (मेज़ का क्षेत्रफल पुस्तकों की संख्या के रूप में पता करना) के अनुरूप, बच्चे मेज़ पर पुस्तकों को जमाकर, मेज़ का क्षेत्रफल पुस्तकों की संख्या के रूप में ज्ञात करते, तो बहुत हद तक सम्भव है कि बच्चे क्षेत्रफल का अर्थ बेहतर समझ पाते (किसी वस्तु द्वारा घेरे गए क्षेत्र को क्षेत्रफल कहते हैं) और क्षेत्रफल को अन्य सन्दर्भों में भी देख पाते। साथ ही यह भी जान पाते कि क्षेत्रफल मापने के लिए सिर्फ़ मानक इकाइयों का ही नहीं, बल्कि अन्य वस्तुओं (जैसे– पुस्तक आदि) का भी उपयोग किया जा सकता है। जबकि इसी शीर्षक पर गतिविधियों द्वारा शिक्षण का मेरा अच्छा अनुभव रहा था, जब हमने कक्षा में बोर्ड पर अलग-अलग आकृतियों को एक समान फ़ोम के टुकड़ों से ढँककर, इन आकृतियों का क्षेत्रफल टुकड़ों की संख्या के रूप में प्राप्त किया था। इस तरह की कक्षाओं के अवलोकन एवं कुछ शैक्षणिक संवादों में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया पर चर्चा के दौरान ऐसा प्रतीत होता है मानो गणित शिक्षण का उद्देश्य केवल संख्या, संक्रिया और सूत्र याद कर हल करना भर है। यदि बच्चा यह करने में सक्षम हो गया, मतलब गणित शिक्षण पूर्ण हुआ। पर गणित के मूल उद्देश्यों (logical and critical thinking, problem solving, generalization, optimization, visualization, approximation etc.) को कम ही कक्षाएँ छूती नज़र आती हैं। सामान्यतः गणित शिक्षण के दौरान कलन विधि (algorithmic process) पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है न कि अवधारणात्मक समझ (conceptual understanding) पर (जैसा कि बताए गए मेरे अनुभव में देखने को मिलता है)। इसका दुष्परिणाम सामने तब आता है जब बच्चे के सामने कोई नई तरह की समस्या

चित्र : प्रशांत सोनी

आती है, अर्थात जब बच्चे हासिल वाले सवालों पर कार्य कर रहे होते हैं, यदि उसी दौरान बिना हासिल वाले सवाल आएँ तो कुछ बच्चे हासिल लेने की ही प्रक्रिया अपनाते हैं, यानी 27–15 = ? जैसे प्रश्नों में भी हासिल (Regrouping) की प्रक्रिया को अपनाते हैं।

एक और उदाहरण लें जो बहुतायत में देखने और सुनने (शिक्षकों द्वारा) को मिलता है कि इबारती सवालों में कौन-सी संक्रिया लगाना है, बच्चे यह तय नहीं कर पाते और शिक्षकों से पूछते हैं जबकि उन्हें संक्रिया करना बख़ूबी आता है। इस समस्या का मुख्य कारण यह होता है कि बच्चा जो कलन (algorithm) कर रहा है, उसने उसे किसी ठोस वस्तु के साथ करके नहीं देखा है। जैसे– हासिल वाले सवालों में बण्डलों (दहाई, सैकड़ा आदि) की Regrouping होना एवं इबारती सवालों को रोल-प्ले, नाटक आदि के माध्यम से करना। इस प्रकार के ठोस अनुभवों की कमी होती है। उसने तो बस एक विधि याद कर ली है जिसके अनुसार उसे उत्तर प्राप्त करना है। इस विधि में बच्चे के अपने कम ही तर्क शामिल होते हैं, जबकि *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* शिक्षण के लिए रचनावादी सिद्धान्त की पैरवी करती है। इसमें कहा गया है कि 'स्वयं करके सीखें' और पाठ्यपुस्तकों का निर्माण भी इसी के अनुरूप किया जा रहा है। जब बच्चा गणितीय गतिविधियों को स्वयं करके देखेगा तभी वह अलग-अलग तरह की समस्याओं को अपने तर्कों द्वारा हल करने में सक्षम होगा और गणित शिक्षण के उद्देश्यों जैसे– logical & critical thinking, visualization, optimization और अवधारणात्मक समझ को प्राप्त किया सकता है।

गतिविधियों में सहायक पूर्वज्ञान एवं अनुभव

गणित शिक्षण के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो यहाँ पूर्वज्ञान और पिछले अनुभव का महत्त्व अन्य विषयों से ज़्यादा दिखाई पड़ता है क्योंकि गणितीय संक्रियाओं में क्रमबद्धता देखने को मिलती है। जैसे– संख्या पहचाने बिना संक्रियाएँ नहीं की जा सकतीं, अतः पूर्वज्ञान एवं बच्चों के अनुभव का सटीक आकलन करना आवश्यक हो जाता है। पूर्वज्ञान और गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में मेरा एक अनुभव, कक्षा एक में स्थानीय मान पर कार्य के दौरान का है। इस शिक्षण के दौरान बच्चे बण्डल शब्द के बजाय ढेरी (स्थानीय भाषा में 'समूह') शब्द ज़्यादा बेहतर समझ रहे थे। अतः ढेरी शब्द ने बेहतर कार्य किया और अन्त में इस शब्द को इकाई, दहाई से जोड़ा गया। एक अन्य अनुभव कक्षा 5 में त्रिभुजाकार आकृतियों पर चर्चा के दौरान हुआ, जहाँ मैंने त्रिभुज को रेल्वे के पुलों और बड़ी इमारतों से जोड़ा जबकि बच्चों ने त्रिभुज को पानी टंकी के स्टैण्ड, दरवाज़े और हाई टेन्शन ट्रांसमिशन लाइन के टॉवर में देखा। त्रिभुज की उपयोगिता तो दोनों ही जगहों में एक जैसी थी, पर हमारे अनुभवों में अन्तर देखने को मिलता है। हमारे और बच्चों के बीच अनुभवों का यह अन्तर सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को बड़े पैमाने पर प्रभावित कर सकता है।
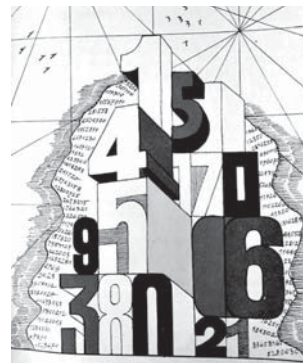
सतत मूल्यांकन में सहायक

गतिविधियाँ सतत मूल्यांकन में भी सहायक होती हैं। इस मुद्दे पर जब भी चर्चा होती है, मुझे कक्षा 5 में शिक्षण का वह समय याद आता है जब हम ज्यामिति पर चर्चा कर रहे थे और इसी दौरान बच्चों ने जियो बोर्ड के माध्यम से अलग-अलग तरह के त्रिभुज बनाए जो उन्हें रुचिकर लगा। बच्चों द्वारा बनाए गए कुछ त्रिभुज ऐसे थे जिनकी एक भी भुजा क्षैतिज (horizontal) नहीं थी, अतः कोण के मापन को लेकर एक नई तरह की समस्या सामने आई। चूँकि हमें न्यूनकोण त्रिभुज, समकोण त्रिभुज एवं अधिक कोण त्रिभुज की पहचान करना था, अतः त्रिभुज के कोणों को मापना आवश्यक हो गया था। जब भी कोण का आधार क्षैतिज (horizontal) नहीं होता बच्चों को कोणों का अनुमान (न्यूनकोण

या अधिक कोण या समकोण) लगाने में दिक़्क़त होती, अतः हमें 2 दिन कोण पर कार्य करना पड़ा। इसका मतलब यह निकलता है कि गतिविधियाँ हमें यह समझने में मदद करती हैं कि बच्चों को कहाँ कठिनाई हो रही है और उन्हें किस प्रकार की व कितने सहयोग की आवश्यकता है।

हमने पहले चर्चा की थी कि गणित और गणितीय गतिविधियाँ सामाजिक मूल्यों को भी व्यक्त करने का एक अच्छा ज़रिया हो सकती हैं। इन सामाजिक मूल्यों का हमारे जीवन से गहरा रिश्ता है। गणित को अगर दैनिक जीवन में देखना है तो इसकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है– सामाजिक मूल्य। आजकल सामान्यतः एक बात सुनने को मिलती है कि बच्चों में सामाजिक मूल्यों का लगातार ह्रास हो रहा है। इस ह्रास का कारण जानने का प्रयास करें तो एक प्रमुख कारण यह सामने आता है कि समाज और शिक्षक दोनों ही वर्गों का प्रमुख उद्देश्य ज़्यादा अंकों के साथ किसी विषय को उत्तीर्ण करना है। चूँकि अंक प्राप्त करने के लिए शिक्षण हो रहा है, अतः किसी विषय के शिक्षण के मूल उद्देश्य तो पीछे छूट ही रहे हैं, साथ ही शिक्षण से शिक्षा के मूल्यों का कोई लेना-देना भी नहीं है। अतः मूल्यों के ह्रास का यह मामला सामने आता है, और यह कुछ हद तक सही भी है, क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र (कुछ को छोड़कर) में जिस तरह के कार्य हो रहे हैं उनसे इसी तरह के परिणामों की अपेक्षा की जा सकती है। जहाँ तक सामाजिक मूल्यों की बात है, तो वे उपदेशों द्वारा या जबरन थोपने से तो बच्चों में आएँगे नहीं।

गणित के परिप्रेक्ष्य में हम शिक्षण के दौरान ऐसी गतिविधियों का उपयोग कर सकते हैं जिनमें कहानी-कविताएँ शामिल हों। इनके माध्यम से शिक्षा के मूल्यों पर भी बातचीत की जा सकती है। इसे लेकर मुझे उस कक्षा की याद आती है जब हमने 'भिन्न' पढ़ने के दौरान 'अकबर-बीरबल' की कहानी पर रोल प्ले करते हुए चर्चा की थी। इस कहानी में 3 लालची दरबान बीरबल से उसके इनाम का क्रमशः 1/10, 2/5 और ½ हिस्सा माँगते हैं और अकबर, बीरबल को इनामस्वरूप 100 कोड़े मारने का आदेश देते हैं। इस कहानी पर चर्चा के दौरान बच्चों को शिक्षण का यह तरीक़ा रोचक लगा, साथ ही हमने सामाजिक मूल्यों पर भी विस्तार से चर्चा की। इस प्रकार की चर्चाओं के दौरान मेरा अनुभव रहा है कि जब गतिविधियों के साथ बच्चों से इस तरह की बातें सही तरीक़े से की जाती हैं, तो बच्चे उन बातों को अच्छे-से समझते हैं। ख़ासकर प्राथमिक शाला में कक्षा 4 और 5 के बच्चे। इसी प्रकार, यदि हम 'भिन्न' पर चर्चा कर रहे हैं तो बॉक्स में दी गई कविता जैसी कविता बताई जा सकती है।

> भूख लगी थी चुन्नू को
> भूख लगी थी मुन्नू को
> घर में थी बस एक ही रोटी
> गोल-गोल और मोटी-मोटी।
> मुन्नू बोला 'तू खा भैया'
> चुन्नू बोला 'तू खा भैया'
> माँ बोली तुम दोनों खाओ
> आधी रोटी दोनों पाओ।
> तभी वहाँ पर आया सोनू
> साथ में उसके आया मोनू
> चुन्नू बोला तुम भी आओ
> साथ हमारे रोटी खाओ।
> आधी की भी आधी रोटी
> बाँटी उन चारों ने रोटी
> चौथा हिस्सा सबने पाया
> मिल-बाँट कर प्रेम से खाया।

कविता गायन के बाद कुछ इस तरह की चर्चाएँ की जा सकती हैं कि दूसरों की ज़रूरतों का ध्यान रखना व दूसरे का ख़्याल रखना चाहिए, यही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। यहाँ माँ का व्यवहार न्याय से परिपूर्ण है, वह दोनों को बराबर भाग देना चाहती है। पड़ोसी से प्रेम भावना व मिल-बाँट कर खाने की प्रवृत्ति का यह स्पष्ट उदाहरण है। इसी प्रकार, दूसरी कविता में लिंग भेदभाव पर बात की जा सकती है। सार रूप में समझने का प्रयास करें तो गतिविधियों को ऐसे अनेक आयामों में देखा जा सकता है, जब गतिविधियाँ गणित शिक्षण के साथ-साथ शिक्षा के और भी कई पहलुओं को छूती नज़र आती हैं। अतः हमें गतिविधियों को बड़े स्वरूप में देखने की ज़रूरत है।

दुर्गेश ने शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, सूरजपुर, छत्तीसगढ़ में 2 वर्षों तक अध्यापन किया है। शिक्षा के विषयों पर लगातार लिखते रहते हैं। *रेनबो* जैसी पत्रिकाओं में कुछ लेख प्रकाशित हुए हैं। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में 2 वर्ष की फ़ेलोशिप के दौरान प्राथमिक विद्यालय के बच्चों के साथ गहन कार्य किया है। पिछले छह वर्षों से शिक्षण एवं प्रशिक्षण के क्षेत्र में कार्यरत हैं। साल 2018 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में गणित व भाषा विषय सन्दर्भ व्यक्ति के रूप में छत्तीसगढ़ के रायपुर ज़िले में कार्यरत हैं।
सम्पर्क : durgesh.bisen@azimpremjifoundation.org

भाषा शिक्षण में बातचीत क्यों ज़रूरी है ?

इन्दु पंवार

अपने विद्यालय के अनुभवों के आधार पर लेखिका बताती हैं कि स्कूल में बच्चों से बातचीत करना क्यों ज़रूरी है? कक्षा में बच्चों के साथ बातचीत कैसे-कैसे शुरू की जा सकती है। वे इसके उदाहरण साझा करती हैं। वे यह भी चर्चा करती हैं कि बच्चों के साथ बातचीत विभिन्न भाषाई कौशल सीखने में तो अहम है ही, पर यह बच्चों के साथ जुड़ने, उनको जानने-समझने, उनका शिक्षक व स्कूल के साथ सम्बन्ध बनाने में भी बहुत अहम भूमिका निभाती है। सं.

बातचीत हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा है। वह समाज में हमारे होने का एहसास कराती है। सामान्य बातचीत से सार्थक संवाद की ओर बढ़ने का काम स्कूल में ही सम्भव है। बेहतर संवाद के द्वारा ही बच्चों और समाज में लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है। हम अलग-अलग व्यक्तियों (अपने बच्चे से, स्कूल के बच्चों से, मित्रों से, बड़ों से, रिश्तेदारों से आदि) से अलग-अलग तरह के संवाद करते हैं। यही बात लेखन में भी लागू होती है क्योंकि लिखना एक तरह का संवाद ही है। हमारा लिखना तभी सार्थक होता है जब हमें मालूम होता है कि उसका पाठक कौन है? किस पाठक वर्ग के लिए कितना और क्या लिखना है? उसका उद्देश्य क्या है? यह सब तभी सम्भव हो पाता है, जब हमारे पास पर्याप्त शब्द भण्डार हो, उसका उपयोग करने की समझ व अनुभव हो, साथ ही हमारे परिवेश में बातचीत के ढेर सारे अवसर उपलब्ध हों। इसी प्रकार, प्रत्येक बच्चे के पास समय, अवसर, आज़ादी हो, ताकि वह अपनी बात को कह सके और दूसरे की बात को सुन सके व इस कहने-सुनने के एहसास को समझ सके। शुरुआती कक्षाओं में और आगे की कक्षाओं में बच्चों में समझ का विस्तार हो, इसके लिए बातचीत के उद्देश्य क्या हों और विषय क्या हों, इसके बारे में सोचना महत्त्वपूर्ण है।

स्कूल में अकसर हम इन चुनौतियों से जूझते हैं, जैसे– स्कूल में बच्चों का मन न लगना, उनका नियमित रूप से स्कूल न आना, या हमें यह लगना कि बच्चे बेवजह बोलते और शोर करते हैं, या यह सोच कि जब बच्चों से अधिक बात या मित्रता कर लीजिए तो वे सिर पर चढ़ने लगते हैं आदि। यदि इन बिन्दुओं को समझने की कोशिश की जाए तो बच्चों के इस व्यवहार के कारण समझ में आने लगते हैं। अधिकतर बच्चों का स्कूल न आने का एक कारण उनका आर्थिक परिवेश है। वे दैनिक कार्यों में अपने माता-पिता का हाथ बँटाते हैं। स्कूल में बच्चों का मन इसलिए नहीं लगता क्योंकि उन्हें घर जैसा माहौल, यानी वह प्यार और आदर, नहीं मिलता, और उन्हें अपने मन से काम करने की आज़ादी नहीं मिलती।

बच्चे जब पहली बार स्कूल आते हैं तो उनका सामना अपरिचित बच्चों-शिक्षकों, एक निश्चित अनुशासित दिनचर्या और मानक भाषा (अर्थहीन प्रतीकों या चिह्नों) से होता है, जो बच्चों में भय पैदा करते हैं और वह बोलना / बात करना कम कर देते हैं।

बच्चों को ढेर सारे विषयों में अपनी बात, अपने अनुभव कहने होते हैं, पर किसी सुनने वाले के अभाव के कारण वे नहीं कह पाते। यहाँ

तक कि अपने घर में भी उन्हें सुनने वाला कोई नहीं रहता। लेकिन उनकी इस गुफ़्तगू को शोर समझ लिया जाता है। स्कूल में ख़ाली समय में आपस में बहुत-सी बातें करते हैं, उस समय भाषा शिक्षण के बुनियादी कौशलों की दक्षताओं का आकलन करना बेहतर रहता है। हम अक़्सर बच्चों से केवल औपचारिक बातचीत ही करते हैं और पाठ्यपुस्तकों तक ही सीमित रहते हैं। अधिकतर बातचीत हमारे द्वारा दिए गए आदेश या निर्देश से सम्बन्धित होती है।

संवाद की आवश्यकता

यदि हम कक्षा में बच्चों के साथ पढ़ाई-लिखाई के अलावा अन्य प्रकार का कोई संवाद स्थापित नहीं करते, तो ऐसी कक्षा में बच्चे अधिक डरे-सहमे और समाज व स्कूल से अपने-आप को कटा महसूस करते हैं। दूसरी ओर, यदि हम अपने छात्रों के मध्य उनसे उनके घर, परिवार और उनके बारे में जानने के लिए सहज संवाद करते हैं तो कक्षा के बच्चों में हमें अधिक खुलापन नज़र आता है। इस तरह के संवाद से अध्यापक और छात्र के मध्य अच्छे, सजीव और मधुर सम्बन्ध स्थापित होते हैं, जिससे छात्रों में झिझक समाप्त होती है और उनमें आत्मविश्वास जागृत होता है। हमें बच्चों को मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से समझने के लिए ख़ुद को संवाद के ज़रिए बच्चों की दुनिया और विचारों से जोड़ना होगा तभी उन्हें शिक्षण प्रक्रिया में शामिल करने में आसानी होगी। अनेक भाषाई कौशलों के साथ विभिन्न विषयों पर सोच और तर्कशील समझ विकसित करना संवाद का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। जिस प्रकार कोई भी बीज बोने से पहले हम ज़मीन को तैयार करते हैं, उसी तरह पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया को शुरू करने से पहले बातचीत का होना ज़रूरी है।

अपने विद्यालय में छात्रों से बातचीत करने के कुछ तरीक़े, जो मैं प्रयोग में लाती हूँ, निम्नलिखित हैं–

1. पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया शुरू करने से पहले अपने और बच्चों के बीच जान पहचान। इसके लिए सामान्य बातचीत, जैसे– उनका नाम पूछना, उनके घर के सदस्यों के बारे में बातचीत करना आदि जिससे हम दोनों का संकोच दूर होता है और इसका सीधा प्रतिफल यह होता है कि बच्चों को प्रारम्भिक दिनों में स्कूल आने में डर भी नहीं लगता और वे ख़ुशी-ख़ुशी स्कूल आने लगते हैं।

2. बच्चा जब स्कूल आता है उसके पास मौखिक भाषा का भण्डार होता है, जिसे स्कूली भाषा से जोड़ना शिक्षक का काम बन जाता है। प्रारम्भिक कक्षाओं में जब बच्चे स्कूल आना शुरू करते हैं वे विद्यालय को अजनबी स्थान समझकर अचम्भित हो सकते हैं। भाषा की विविधता, उसका सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश उन्हें भिन्न लग सकता है, हम उन्हें विविधता का महत्त्व सिर्फ़ बातचीत से ही समझा सकते हैं और उन्हें सुरक्षा की भावना महसूस करा सकते हैं। मुझे स्मरण है कि मेरी कक्षा में एक बच्ची थी जो शुरू में स्कूल तो ख़ुश होकर आती थी, लेकिन जब भी पढ़ने के लिए कहा जाता वह गम्भीर होकर चुपचाप बैठ जाती। इसपर मैंने उससे बातचीत की और पूछा कि तुम स्कूल आकर क्या करना चाहोगी उसने तपाक से उत्तर दिया– ड्राइंग करना चाहूँगी। मैंने उसे रंगीन चाक दिए और श्यामपट्ट पर अपनी रुचि के चित्र बनाने को कहा। उसने सुन्दर चित्र बनाने शुरू किए और साथ ही स्वयं उन चित्रों के नामों का भी उच्चारण करना शुरू कर दिया। मैंने उसकी इसी रुचि को स्कूली भाषा से जोड़ने का उपक्रम बनाया।

चित्र : हीरा धुर्वे

3. बच्चों से बातचीत करने से शिक्षक के लिए उनका आकलन करना भी आसान हो जाता है। उनसे बातचीत करके उनके सोचने के ढंग और तर्कशक्ति का सहज ज्ञान हो जाता है। मैंने कक्षा में बच्चों से पूछा कि तुम्हारे घर में कौन-कौन से जानवर पाले जाते हैं अधिकांश बच्चों का जवाब था— गाय, बकरी, कुत्ता, बिल्ली, मुर्ग़ी आदि। बातचीत के क्रम को आगे बढ़ाते हुए मैंने फिर प्रश्न किया कि गाय, बकरी, बिल्ली, मुर्ग़ी आदि कैसे एक दूसरे से अलग हैं, बच्चों का जवाब था कि गाय दूध देती है, लेकिन मुर्ग़ी अण्डे देती है। किसी ने कहा कि मुर्ग़ी के पंख भी होते हैं, तो किसी बच्चे ने कहा कि दूध तो बकरी भी देती है लेकिन हम सिर्फ़ गाय का दूध पीते हैं। बातचीत में यह भी आ गया कि बकरी का भी दूध पिया जाता है।

4. बच्चों के लिए बातचीत के जितने ज़्यादा मौक़े कक्षा में निर्मित किए जाएँगे, उतना ही बच्चे पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया के लिए जल्दी तैयार होगे। यानी, उन्हें समूहों में बाँटकर अपने अनुभवों को साझा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। उदाहरण के लिए, तुम्हारे घर में जब मेहमान आते हैं तो तुम क्या तैयारी करते हो। ऐसे में जो बच्चे झिझक महसूस करते हैं वे भी इस बातचीत में हिस्सा लेने लगते हैं और नि:संकोच अपनी बात सुनाने लगते हैं जो पढ़ने-लिखने से पूर्व की एक आवश्यक क्रिया है।

5. बातचीत को पढ़ने-लिखने से कैसे जोड़ा जाए— अनुभव सुनाकर या बच्चों की मनपसन्द चीज़ों की बातचीत से। उदाहरण के लिए, किसी बच्चे ने कोई अनुभव सुनाया तो इसका सीधा-सा अभिप्राय यह है कि उसके पास शब्द भण्डार है, जिसके कारण वो अपने अनुभवों को सुनाने में सफल रहा। उन्हीं अनुभवों को श्यामपट्ट पर लिखा जाए, जिससे बच्चों में आत्मविश्वास आता है कि उसकी बात को सुना जा रहा है, समझा जा रहा है और वह जो कह रहा है, अर्थपूर्ण है। मैंने कक्षा में बच्चों से पूछा कि तुम्हें खाने में कौन-सी सब्ज़ी पसन्द है। इसपर एक बच्चे का जवाब था— भिण्डी। बातचीत के लिए आधार मिलने पर मैंने पूछा कि उसका रंग कैसा होता है, बच्चे ने कहा— हरा। इस तरह बातचीत के लिए सूत्र खुलते गए और मैंने बातचीत के क्रम को आगे बढ़ाते हुए प्रश्न किया कि क्या हरे रंग की और भी सब्ज़ियाँ होती हैं, बच्चे उन सब्ज़ियों के नाम स्वयं बोलने लग गए। बच्चों से उनका मनपसन्द रंग पूछने पर बातों-बातों में बच्चों को रंगों की जानकारी हो गई। इसी तरह बच्चों से उनके पसन्द के खेल-खिलौनों की बातचीत करना और उसी बातचीत को आधार बनाकर उसे अन्य मनपसन्द खेलने की चीज़ों तक लाना भी इस सम्बन्ध में अच्छा अभ्यास सिद्ध होता है। इसी तरह थोड़े बड़े बच्चों को हम बातचीत से डायरी लेखन तक आसानी से पहुँचा सकते हैं।

6. बातचीत द्वारा ध्वनि और संकेतों से जोड़ना— बच्चों को उनके मनपसन्द चित्र बनाने के लिए स्वतंत्र छोड़कर उनसे उन चित्रों का मौखिक उच्चारण करवाया। जैसे— किसी बच्चे ने आम बनाया, तो आम बोलना 'आ' ध्वनि से परिचय कराकर 'आ' का संकेत जोड़ दिया। इस विधि को भी मैंने प्रभावी पाया।

7. बातचीत को हम प्रोजेक्ट से भी जोड़ सकते हैं। अगर हम सीधे बच्चों को कहें कि प्रोजेक्ट बनाओ, तो ये शब्द स्वयं में ही बड़ा नीरस और कठिन है। मैंने एक दिन बच्चों से कहा कि अपना जन्मदिन और जन्म का माह बताओ, तो छोटे-बड़े सभी बच्चे उत्तर देने को उत्सुक दिखे। मैंने छोटे बच्चों से मौखिक रूप से बोलने और बड़े बच्चों को चार्ट पेपर देकर लिखने को कहा। बच्चों ने चार्ट पर बहुत ही ख़ूबसूरत तरीक़े से लिखा। फिर मैंने बच्चों द्वारा दर्ज माह की विशेषता लिखने को कहा और इसके लिए घर पर बातचीत कर दूसरे दिन चार्ट पर लिखने को कहा। बच्चे बड़ी स्तरीय जानकारी घर वालों से पूछकर लाए। इसी तरह, जो त्योहार वे मानते हैं, उनपर भी बातचीत सार्थक रही।

8. बातचीत से ही बच्चों की सृजनात्मकता को विकसित किया जा सकता है। जैसे— किसी चित्र को देखकर ख़ूब बातचीत करना, कहानी सुनकर उन्हें तर्क करने को प्रेरित करना व उसी तरह की कहानी को सुनना आदि।

बातचीत करने की मान्यताएँ और बातचीत के तरीक़े

1. बड़ों के जैसे ही बातचीत करने का गुण और प्रवृत्ति बच्चों में भी समान रूप से पाई जाती है। इसपर कुछ लोगों का ये मानना हो सकता है कि तब इसके लिए बच्चों को विशेष समय / वातावरण / ध्यान दिए जाने की क्या आवश्यकता है। लेकिन मेरा अनुभव रहा है कि शुरुआती भाषाई कौशलों को दृढ़ करने के लिए उन्हें अलग से बातचीत के मौक़े देने पड़ेंगे।

2. बातचीत से ही बच्चों की कल्पनाशीलता में वृद्धि की जा सकती है। आज भी ये मिथक बरक़रार है कि बच्चे स्कूल आने से पूर्व कोरी स्लेट होते हैं। मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि उन्हें बातचीत और अभिव्यक्ति के पूरे मौक़े देकर हम उनका आत्मविश्वास तो जगाते ही हैं, साथ ही उन्हें कुशलता से अपनी बातों को रखने के योग्य भी बना देते हैं। हमारी बातचीत ऐसे हो कि बच्चा सुनने में रुचि ले। कहीं ऐसा न हो कि हमने तो अपने स्तर से बातचीत कर ली, लेकिन बच्चों ने अपने अनुकूल न होने के कारण उसपर ध्यान ही नहीं दिया।

3. बातचीत करते समय सभी बच्चों का ध्यान रखा जाए और सभी बच्चों को अपनी बातें रखने के समान मौक़े दिए जाएँ। बच्चों के साथ जब भी बातचीत करें, यह ज़रूरी है कि उस बातचीत की एक पूर्व योजना निरूपित की जाए। एक विषय पर लगातार कुछ देर ख़ूब बातचीत की जाए तभी उसे शिक्षण से जुड़ने में मदद मिलेगी। प्रश्न तैयार हों। बच्चों को प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित किया जाए। इसके लिए अच्छा अवसर होता है कि उनके उत्तरों में ही सवाल बनाया जाए और बातचीत को विस्तार दिया जाए।

4. बातचीत दो तरह की हो सकती है। एक वह होती है जिसमें किसी एक विशेष बात को महत्त्व न देकर बातचीत का रुख बदला जाता है जबकि कोई बातचीत किसी विशेष घटना, अनुभव या परिवेश पर भी हो सकती है। मेरा मानना है कि कक्षा में ऐसी बातचीत बच्चों को ज़्यादा भाती है। इससे बच्चों में अभिव्यक्ति के कौशल के साथ स्वाभाविक रूप से व्याप्त हिचकिचाहट को दूर करने में मदद मिलती है और उनमें आत्मविश्वास भी पैदा होता है।

स्कूल में ऐसी दिनचर्या बनाई जानी चाहिए, जिसमें छात्रों के साथ अकेले-अकेले या समूह में संक्षिप्त अनौपचारिक बातचीत की जा सके। कक्षावार भाषा विषय के अधिकतर लर्निंग आउटकम संवाद की भूमिका से सीधेतौर पर जुड़ते हैं।

बच्चे की मौखिक भाषा और विद्यालयी भाषा को जोड़ने में बातचीत की मुख्य भूमिका है। इससे हमें आसानी से बच्चों का आकलन करने में सहायता मिलती है और योजना बनाकर छात्रों को पढ़ने-लिखने के लिए तैयार करने में भी आसानी होती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बातचीत बच्चों के शिक्षण, विशेषकर बुनियादी शिक्षण, में एक महत्त्वपूर्ण टूल है। इससे हम उनके लिए एक ऐसी उर्वर भूमि तैयार कर पाएँगे जहाँ उनको बातचीत के माध्यम से ही हम संकेतों की तरफ़ आसानी से ले जाकर उन्हें ध्वनियों, प्रतीकों, मात्राओं आदि से परिचित होने के साथ समझकर पढ़ने-लिखने की ओर बढ़ा सकते हैं। कक्षा को गुणवत्तापूर्ण एवं रोचक बनाने में बातचीत एक महत्त्वपूर्ण शिक्षण सामग्री साबित हो सकती है, बशर्ते शिक्षक सभी बच्चों को इस बातचीत का हिस्सा बनने में धैर्य एवं सहयोग से कार्य करे।

इन्दु पंवार, 23 वर्षों से प्राथमिक विद्यालय में शिक्षण कार्य कर रही हैं। वर्तमान में राजकीय प्राथमिक विद्यालय गिरगाँव, जनपद पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड में प्रधान अध्यापिका हैं।

सम्पर्क : indupanwar195@gmail.com

मूल्यांकन और सीखना

शहनाज़ डी के

शहनाज़ का यह लेख सतत व समग्र मूल्यांकन पर केन्द्रित है। वे बताती हैं कि सतत व समग्र मूल्यांकन की बात सभी विद्यालयों में होती है लेकिन मूल्यांकन की प्रक्रिया में कुछ ख़ास बदलाव हुआ नहीं है। वे अपनी विज्ञान की कक्षा में बच्चों के साथ किए गए काम का विवरण देते हुए बताती हैं कि सतत और समग्र मूल्यांकन का अर्थ क्या है? यह कैसे शिक्षक को बच्चों के सीखने को समझने में और फिर उसके अनुसार आगे क्या करना है, यह सोचने में मदद करता है। वे इस बात को भी दर्शाती हैं कि सही मूल्यांकन बच्चों को भी यह एहसास देता है कि उन्हें कुछ आता है जो सीखते रहने के लिए बहुत ज़रूरी है। सं.

पृष्ठभूमि

आज भी विद्यालयों में विद्यार्थियों के मूल्यांकन करने का तरीक़ा (पारम्परिक तरीक़ा) वर्षों पुराना है, जिसमें पूरे साल के दौरान दो-तीन मासिक परख और दो परीक्षाएँ लेकर बच्चों को उनकी अकादमिक स्थिति से अवगत करा दिया जाता है। इन परीक्षाओं के प्रश्न-पत्रों के कई प्रश्न ऐसे बनाए गए होते हैं जो कक्षा के अधिकांश बच्चों को पढ़कर समझ में ही नहीं आते हैं और इससे उनका परीक्षा परिणाम भी अच्छा नहीं रहता है। यानी, यह मूल्यांकन अधिकतर बच्चों को यह महसूस कराता है कि उनका ज्ञान बहुत कम है और कक्षा में इतना समय गुज़ारते हुए भी उन्होंने कुछ नहीं सीखा।

आजकल सतत व समग्र मूल्यांकन (CCE) के तहत सरकारी व निजी, दोनों प्रकार के विद्यालयों में सतत मूल्यांकन किया जा रहा है। परन्तु इस सतत मूल्यांकन में भी इसकी मूल भावना 'सीखने को सम्भव करने के लिए सीखने के साथ-साथ मूल्यांकन' को दरकिनार करते हुए बच्चों को पेपर या वर्कशीट देकर बैठा दिया जाता है और इसे हल करने को कहा जाता है। उनकी किसी प्रकार की कोई मदद नहीं की जाती है। इन्हें भी बच्चे अपनी याददाश्त के सहारे ही पूरा करते हैं।

कक्षा में बच्चों का सतत मूल्यांकन करते समय और मौखिक परीक्षाओं के दौरान मैंने कुछ ऐसे प्रयास किए, जिससे बच्चों को परीक्षा का डर भी न लगे और उनका सीखना भी होता रहे। इन प्रयासों के दौरान मैंने बच्चों को टटोलने की कोशिश की और उनकी मदद भी की ताकि वे एक क़दम और आगे बढ़ सकें।

मेरा स्कूल और कक्षा

मैं ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी उच्च माध्यमिक विद्यालय की छठवीं, सातवीं और आठवीं कक्षाओं को पढ़ाती हूँ। इस लेख में कक्षा छठवीं की छात्राओं के साथ किए गए मेरे काम का अनुभव है।

इस विद्यालय में पढ़ने वाली छात्राएँ दो प्रकार के घरों से आती हैं। एक है, व्यापारी व नौकरीपेशा वर्ग व दूसरा, मज़दूरी करने वाला वर्ग। नौकरीपेशा और व्यापारी वर्ग की पृष्ठभूमि से आने वाली छात्राओं की पढ़ने-लिखने की क्षमता बेहतर होती है। उनको शिक्षक द्वारा

दिया गया गृहकार्य करने के लिए घर पर भी सहयोग मिलता है। परन्तु जो बालिकाएँ मज़दूर वर्ग से आती हैं उनमें से अधिकांश के माता-पिता पढ़े-लिखे नहीं होते, इसके साथ ही तंग

आर्थिक स्थिति की वजह से उनका बहुत-सा समय अपने माता-पिता को विभिन्न तरह से सहयोग करने में बीतता है और इसी वजह से वे विद्यालय भी नियमित तौर पर नहीं आ पाती हैं। कभी-कभी तो अभिभावक बालिकाओं को कारख़ानों, भवन निर्माण आदि के काम करवाने भी अपने साथ लेकर जाते हैं। इस वजह से वे कई दिनों तक कक्षा से अनुपस्थित रहती हैं और पढ़ाई में पिछड़ती जाती हैं।

अपनाया गया मूल्यांकन का तरीक़ा

कक्षा 6 की बालिकाओं की विज्ञान की पहली मौखिक परीक्षा होने वाली थी। ये बालिकाएँ इसी वर्ष इस स्कूल में आई हैं। मैंने तय किया था कि मैं उनसे रटे हुए 10 प्रश्नों के उत्तर नहीं सुनूँगी, इसके बजाय मैंने सभी बालिकाओं को अपनी पाठ्यपुस्तक के किसी एक पाठ से, उन्होंने क्या सीखा यह बताने को कहा। सभी बच्चों ने झटपट अपनी किताबें खोलीं और अपना-अपना पसन्दीदा पाठ लेकर मेरे पास आ गए। परन्तु कुछ ही बच्चे यह बता पाए कि उन्होंने क्या सीखा, जैसे– रिद्धि बोली, 'भोजन से पोषण' वाले पाठ में हमने सीखा कि बच्चों को बड़ा होने के लिए प्रोटीन चाहिए। इसलिए उन्हें ज़्यादा दूध पीना चाहिए क्योंकि दूध में प्रोटीन पाया जाता है।

लेकिन कुछ बच्चियाँ ऐसी भी थीं जो अपनी सीखी हुई बात को समझा नहीं सकीं। उनसे मैंने उनके द्वारा चुने हुए पाठ का कोई भी हिस्सा पढ़ने के लिए कहा। वे अपनी बात समझा नहीं पा रही थीं तो छोटे-छोटे प्रश्नों के द्वारा उनकी मदद की गई। एक बालिका 'प्राकृतिक वस्त्र' वाला पाठ लाई परन्तु वह कुछ बोली नहीं। मैंने उससे पूछा कि यह पाठ किसके बारे में है? उसने कहा, कि कपड़े के बारे में। फिर मैंने पूछा कि जानती हो कपड़ा कैसे बनता है। वह बोली, हाँ, कपास से रुई बनती है। मैंने फिर पूछा कि उसका क्या करते हैं। उसने कहा कि रुई से धागा बनाते हैं और फिर मशीन पर कपड़ा बुनते हैं।

एक अन्य बालिका 'सूक्ष्मजीव' वाला पाठ लेकर मेरे पास आई। मैंने पूछा कि इस पाठ में तुमने क्या समझा? वह बोली, सूक्ष्मजीव हमारे लिए अच्छे भी होते हैं और ख़राब भी होते हैं। मैंने पूछा, अच्छा बताओ, हम इसे देख सकते हैं क्या। उसने कहा, नहीं। तो फिर कैसे पता चलता है कि अच्छे हैं या ख़राब। वह बोली, वो तो चीज़ों को देखने से पता चल जाता है। अच्छे सूक्ष्मजीव दूध को दही में बदलने वाले होते हैं जो हमारे लिए लाभदायक है और ख़राब सूक्ष्मजीव, जो चित्र में दिखाए गए हैं, नींबू के ऊपर दाग लगा देते हैं। मैंने पूछा, क्या इनके नाम बता सकती हो। वह बोली, नहीं मैडम, वो तो याद नहीं हैं।

एक और बालिका 'पौधों के प्रकार' पाठ के बारे में बात करना चाहती थी। वह बोली, मैडम, इस पाठ में दो प्रकार के पौधे दिए गए हैं– जल में और स्थल पर रहने वाले। मैंने पूछा, यदि दोनों प्रकार के पौधे तुम्हारे सामने रखे हों तो तुम उन्हें कैसे पहचानोगी? उसने कहा कि जल वाले पौधे की जड़ें छोटी होती हैं क्योंकि वो तो पानी में ही रहती हैं और रेगिस्तान वाले पौधों की जड़ें लम्बी होती हैं क्योंकि वहाँ पानी कम होता है। मैंने पूछा कि स्थल पर और कौन-से पौधे होते हैं। बालिका बोली, पहाड़ वाले और मैदानों वाले भी अलग-अलग होते हैं।

कक्षा में 12 छात्राएँ ऐसी थीं जो कुछ भी नहीं बता सकीं क्योंकि उनके पढ़ने का कौशल अभी कक्षा के अनुसार विकसित नही हो पाया था। उनसे दैनिक जीवन के विज्ञान की बातचीत की गई। मैंने पूछा कि सुबह से रात तक पानी कब-कब काम में लेना पड़ता है। वो सारे काम बताते हुए कह रही थीं कि घर बनाने में भी पानी चाहिए, साइकिल धोने में भी पानी चाहिए। मैंने पूछा, साइकिल मशीन है क्या? सब चुप हो गईं। एक हमेशा चुप रहने वाली बालिका कमला बोली, हाँ है न, हमारा काम जल्दी हो जाता है। अच्छा बताओ, साइकिल के कौन-कौन से भाग होते हैं? बच्चे बोले, हैण्डल, सीट, पहिया आदि। एक बालिका कैलाशी कहने लगी कि साइकिल में चैन भी होती है, अगर चैन उतर जाए तो साइकिल नहीं चलेगी। और इन सारी बातों से उनकी मौखिक परीक्षा आसानी से हो गई, क्योंकि इस तरह के प्रश्नों से उनका आत्मविश्वास बढ़ा। उन्हें लगा कि वे भी मौखिक परीक्षा में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर दे सकती हैं। वे हमेशा की तरह चुपचाप नहीं खड़ी रहीं।

जिन छात्राओं को बिलकुल भी पढ़ना नहीं आता था उनके साथ बातचीत केवल चित्रों के माध्यम से की गई।

मूल्यांकन के आधार पर मेरे द्वारा बच्चों के साथ किया गया काम

इस परीक्षा के बाद इन छात्राओं के साथ पुस्तकालय व खेल के दो-दो कालांशों में कहानियों की पुस्तकें पढ़ने का काम किया ताकि वे पढ़ने में बेहतर हो सकें। घर पर भी इन किताबों को ले जाने की उन्हें छूट थी। पर चूँकि घर पर उन्हें कोई मदद नहीं मिलती थी अतः फिर वे स्कूल में ही अपनी साथी छात्राओं के साथ किताबें पढ़ती थीं। धीरे-धीरे वे पढ़ने लगीं तो उन्हें इन कहानियों को पढ़कर सुनाने के लिए कहा गया। दो-तीन महीनों में उनकी पढ़ने की गति में काफ़ी सुधार हुआ। परन्तु तीन बालिकाएँ जो नियमित नहीं आती थीं, उनकी स्थिति में

कुछ ख़ास सुधार नहीं दिखाई दिया।

इस मूल्यांकन ने मेरी क्या मदद की ?

इस तरीक़े से मूल्यांकन करने के बाद मैं और मेरी छात्राएँ, सभी सन्तुष्ट थे। छात्राओं में यह विश्वास आया कि उन्हें भी बहुत कुछ आता है क्योंकि वे बहुत-से प्रश्नों के जवाब दे पाई थीं। वे इस बार की मौखिक परीक्षा में हमेशा की तरह चुपचाप नहीं थीं। यह भी कि सभी बच्चों ने प्रश्नों का बिना रटे जवाब दिया।

मुझे यह समझ आया कि केवल पाठ्यपुस्तक में दिए गए प्रश्नों और विषयवस्तु से सीधे जुड़े प्रश्नों की बौछार करके बच्चों की क्षमता का सही आकलन नहीं किया जा सकता। जब हम विद्यार्थियों को अलग-अलग तरीक़ों से, पुस्तक को सामने रखकर बातचीत करते हुए यह कहते हैं कि वे जो भी समझ पाएँ, उसके बारे में खुलकर बातचीत कर सकते हैं तो उनकी झिझक कम होती है और ऐसी अवधारणाएँ जो उन्होंने प्रयोग करके, या अपने साथियों से या अपने परिवेश से सीखी हैं (यदि उन्हें पढ़ना नहीं भी आता तो भी) वह उन्हें मौखिक रूप से बता सकती हैं। इससे यह भी समझ में आया कि छात्राओं की भोजन, पौधों, मशीनों और सूक्ष्मजीवों आदि के बारे में अच्छी समझ होती है। परन्तु सीधे प्रश्न पूछने पर वे परीक्षा में नहीं बता पाती हैं। यानी, जाँचना और सीखना साथ-साथ चलता रहे तो कक्षा का कोई भी बच्चा हताश नहीं होगा और अपनी समझ व क्षमता के अनुसार आगे बढ़ सकेगा।

शहनाज़ डी के, उदयपुर, राजस्थान के सरकारी विद्यालय में कक्षा 6 से 8 के बच्चों को पढ़ाती हैं। कक्षा में बच्चों के सीखने में आने वाली समस्याओं को समझने का प्रयास करती हैं। उनकी शिक्षा में हो रहे नवाचारों में रुचि है।
सम्पर्क : shehnazakir@gmail.com

मैकॉले बनाम भारतीय ज्ञान–प्रणालियाँ और शिक्षा–व्यवस्था

अभय कुमार दुबे

इस अनुसन्धान में मैकॉले की शिक्षा सम्बन्धी टिप्पणी की दावेदारियों की जाँच की गई है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों के माध्यम से दिखाया गया है कि जब भारत की क्षेत्रीय और क्लासिक भाषाओं को ज्ञानोत्पादन के लिए अक्षम बताया जा रहा था, उस समय उनके दायरों में किस तरह की शिक्षा–प्रणालियाँ चल रही थीं और वे ज्ञानोत्पादन की कौन–सी परम्पराओं से सम्पन्न थीं। मैकॉले का दावा किस हद तक सही था? क्या उपनिवेशवादियों द्वारा पूर्व के ज्ञान को गुणवत्ताविहीन बता कर ख़ारिज करने के लिए पश्चिमी ज्ञान–प्रणाली द्वारा प्रदत्त प्रविधियों और बौद्धिक संहिताओं का इस्तेमाल किया गया था? इसी के साथ यह लेख प्राच्यवादियों (ओरिएंटलिस्ट्स) द्वारा अपनाई गई 'क़लम लगाने की रणनीति', आंग्लवादियों (एंग्लिसिस्ट्स) द्वारा प्रतिपादित 'छनन सिद्धान्त' और वर्नाकुलरिस्ट्स द्वारा भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन देने के आग्रह की समीक्षा करते हुए दिखाता है कि किस तरह ये तीनों एक ही लक्ष्य को प्राप्त करने की विभिन्न युक्तियाँ थीं, और यह लक्ष्य था भारत पर अँग्रेज़ी भाषा को थोपना।

इस अनुसन्धान का पहला भाग पत्रिका के चौथे अंक में प्रकाशित किया गया था और पाँचवें अंक में दूसरा भाग प्रकशित किया गया था। वर्तमान अंक में अनुसन्धान का अन्तिम भाग प्रकशित किया जा रहा है। इसमें छनन सिद्धान्त का अर्थ–निरूपण किया गया है। सं.

छनन सिद्धान्त : एक पेचीदा अर्थ–निरूपण

यहाँ स्पष्ट करने की ज़रूरत है कि प्राथमिक शिक्षा का यह ढाँचा उस पिरामिड के आधार की तरह कल्पित किया गया था, जिसके शीर्ष का निर्माण अँग्रेज़ी में उच्च–वर्गों को दी जाने वाली उच्च–शिक्षा के ज़रिए किया जा रहा था। इस पिरामिड की सैद्धान्तिक भूमि फ़िल्ट्रेशन थियरी (छनन सिद्धान्त) से बनी थी जो एक जटिल सिद्धान्त था। इसका मतलब था शीर्ष पर अँग्रेज़ी में शिक्षा प्राप्त करने वाला अत्यल्प संख्या वाला उच्च और उच्च–मध्यम वर्ग जिसे एक चलनी की तरह काम करते हुए पश्चिमी विद्या का प्रकाश अपने ज़रिए उन बहुसंख्य मध्य और निचले तबक़ों तक पहुँचाना था जिन्हें पिरामिड के आधार में देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा मिलनी थी।

आज हमारे पास घटनाओं की पश्चात–दृष्टि है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि यह पिरामिड अँग्रेज़ी के अधिकतम नहीं बल्कि न्यूनतम वर्चस्व[62] की स्थापना की तरफ़ ले जाने वाला था। ग्रेट ब्रिटेन में अँग्रेज़ी ने अपना अधिकतम वर्चस्व स्थापित करने के लिए सेल्टिक परिधि (वेल्स, आयरलैंड और स्कॉटलैंड) की भाषाओं को समूल नष्ट कर दिया था। ब्रिटेन की तत्कालीन परिस्थितियों में, जहाँ अँग्रेज़ी पहले से बहुसंख्यक समाज की भाषा थी, निम्न

62. न्यूनतम वर्चस्व का यह सूत्रीकरण मैंने आलोक मुखर्जी (2009) से लिया है। दिस गिफ़्ट ऑफ़ इंग्लिश के पहले अध्याय 'सिचुएटिंग द स्टडी' में उन्होंने ग्राम्शी के हवाले से मिनिमल हेजेमनी या वर्चस्व के न्यूनतम रूप की चर्चा की है जो आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक अभिजन की विचारधारात्मक एकता पर निर्भर करती है और अँग्रेज़ी के सन्दर्भ में सर्वाधिक उपयोगी है।

से उच्च वर्ग तक अँग्रेज़ी का प्रचलन करना सम्भव था, लेकिन भारत में नहीं। इसीलिए उपनिवेशवादी शुरू से ही फ़िल्ट्रेशन थियरी की वकालत कर रहे थे। ख़ास बात यह है कि अँग्रेज़ 'ज्ञान पर जिस ब्राह्मण - इज़ारेदारी' के विरोध में खड़े होने का स्वांग रच रहे थे, अँग्रेज़ी का यह न्यूनतम वर्चस्व अपने किरदार में वैसा ही था। फ़िल्ट्रेशन थियरी की यही आलोचना करते हुए ब्रायन होजसन ने भविष्यवाणी की थी कि इसके कारण ज्ञान की ब्राह्मणों से भी प्रबल इज़ारेदारी पैदा होगी।[63] ईस्ट इंडिया के डायरेक्टरों ने इसी साल 29 सितम्बर, 1830 को अपनी मद्रास सरकार को भेजे गए डिस्पैच (मद्रास के गवर्नर मुनरो द्वारा पेश जन-शिक्षा की योजना के प्रतिक्रियास्वरूप) में कहा था : 'किसी भी राष्ट्र की नैतिक और बौद्धिक दशा को उठाने में प्रभावी योगदान करने वाले शिक्षा सम्बन्धी सुधारों का ताल्लुक उच्च वर्गों की शिक्षा से है। इसके ज़रिए किसी समुदाय के विचारों और अनुभूतियों में कहीं बेहतर और लाभकारी परिवर्तन लाया जा सकता है, बनिस्बत इसके कि अधिसंख्य वर्ग को सीधे-सीधे शिक्षित किया जाए।'[64] पाँच साल बाद मैकॉले की शिक्षा सम्बन्धी टिप्पणी ने छनन सिद्धान्त को कारगर रूप दिया। इस सिलसिले में उनके विचारों को ठीक से समझने के लिए उन्हें एक निश्चित क्रम में पढ़ा जाना चाहिए।

थॉमस बैबिंग्टन मैकॉले

25 अक्तूबर 1800 – 28 दिसम्बर 1859

पहले मैकॉले ने स्पष्ट किया कि कम्पनी सरकार के पास सभी भारतवासियों को अँग्रेज़ी-शिक्षा देने लायक़ संसाधन नहीं हैं, और फिर उन्होंने छनन सिद्धान्त धरती पर उतारने की विधि बताई : 'हमें एक ऐसे वर्ग की रचना करने की भरसक कोशिश करनी चाहिए जो हम और हमारे करोड़ों शासितों के बीच दुभाषिए की भूमिका निभा सके, अर्थात व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग जो रक्त और त्वचा के रंग में तो भारतीय हो लेकिन रुचि, अभिमत, नैतिक मानदण्डों और प्रतिभा में अँग्रेज़ हो।' यह कहने के बाद मैकॉले ने अपना ध्यान उच्च-शिक्षा पर केन्द्रित किया : 'सभी लोग इस बात पर राज़ी लगते हैं कि उच्च-शिक्षा प्राप्त करने लायक़ संसाधनों से सम्पन्न वर्गों के लोगों को इस समय केवल ऐसी भाषाओं में शिक्षा दी जा सकती है जिनमें देशी भाषाएँ शामिल नहीं हैं।' ज़ाहिर है कि उनकी निगाह में संस्कृत, अरबी और फ़ारसी जैसी प्राच्य भाषाएँ इस योग्य नहीं थीं। नतीजतन अन्त में दुभाषिए वर्ग को शिक्षित करने का माध्यम केवल अँग्रेज़ी रह जाती थी। इसीलिए मैकॉले की उस सिफ़ारिश को बेंटिक ने पूरी तरह से मान लिया कि सरकारी धन केवल अँग्रेज़ी की शिक्षा पर ही ख़र्च किया जाएगा। इस तरह छनन सिद्धान्त का पहला व्यावहारिक उसूल यह बना कि उच्च-शिक्षा अँग्रेज़ी में दी जाएगी, केवल उच्च और उच्च-मध्यम वर्ग को दी जाएगी और शिक्षा का बजट उसी के लिए होगा। उपनिवेशवादियों ने अँग्रेज़ी शिक्षा से किस तरह तत्कालीन कमज़ोर जातियों को योजनाबद्ध ढंग से वंचित रखा, इसका तथ्यात्मक विवरण इस अध्याय के अगले खण्ड में दिया गया है।

63. देखें, जॉन डी विंडहॉज़ेन (1964), वही : 260. लेखक ने यहाँ होजसन की जिस रचना का हवाला दिया है वह *मिसलेनियस एसेज़ रिलेटिंग टू इंडियन सब्जेक्ट्स* शीर्षक से लंदन में 1880 में प्रकाशित हुई थी।

64. फ़्रायकेनबर्ग (1983) में उद्धृत।

छनन सिद्धान्त के इस पहले उसूल का कुछ-न-कुछ विपरीत असर तो देशी भाषाओं में दी जाने वाली शिक्षा पर पड़ना लाज़िमी था। उससे भारतीय ही नहीं, मिशनरियों द्वारा चलाए गए भारतीय भाषा के स्कूल भी प्रभावित हुए। ध्यान रहे कि श्रीरामपुर के मिशनरियों द्वारा खोले गए इन स्कूलों का मक़सद भारतीय भाषाओं के ज़रिए ईसाई धर्मप्रचार था, जबकि आंग्लवादी अँग्रेज़ी के ज़रिए बाइबिल पढ़ाने और युरोपीय ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देना चाहते थे। बंगाल के इन स्कूलों में बेंटिक के आदेश से पहले 8,544 बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे जो तेज़ी से घटकर पाँच हज़ार के आसपास रह गए। इसका कारण यह था कि कलकत्ता से शुरू हुई अँग्रेज़ीपरस्ती के प्रभाव के कारण स्थानीय अभिजनों को यह तर्क अधिक लुभावना और उपयोगी लगने लगा कि अँग्रेज़ी ही ज्ञान की सच्ची वाहक है, और देशी भाषाओं की तुलना बन्दरों की बड़बड़ाहट से ही की जा सकती है।

1835 के बाद मिशनरियों के बीच भी देशी भाषाओं के प्रति उत्साह कम हो गया। इतिहास बताता है कि बेंटिक के आदेश के बाद देशी भाषाओं के लिए किया जाने वाला मिशनरी उद्यम तक़रीबन ठप्प हो गया। सरकार ज़िला स्तर पर स्कूल क़ायम करने और प्रान्तीय स्तर पर कॉलेज खोलने पर ध्यान देती रही ताकि उच्च-मध्यम और मध्यम वर्ग को अँग्रेज़ी पढ़ाई जा सके।[65] प्राच्य शिक्षा देने वाले स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों को वजीफ़े देने की स्कीम ख़त्म कर दी गई और प्राच्य-विद्या की पुस्तकें छापने के कार्यक्रम रोक दिए गए। एडम की रपट में भी बार-बार इस बात का ज़िक्र आता है कि 1835 के बाद सरकार अँग्रेज़ी की शिक्षा पर इस क़दर एकतरफ़ा ज़ोर दे रही है कि देशी भाषाओं में शिक्षा का हाशियाकरण होता जा रहा है।

> छनन सिद्धान्त के इस पहले उसूल का कुछ-न-कुछ विपरीत असर तो देशी भाषाओं में दी जाने वाली शिक्षा पर पड़ना लाज़िमी था। उससे भारतीय ही नहीं, मिशनरियों द्वारा चलाए गए भारतीय भाषा के स्कूल भी प्रभावित हुए। ध्यान रहे कि श्रीरामपुर के मिशनरियों द्वारा खोले गए इन स्कूलों का मक़सद भारतीय भाषाओं के ज़रिए ईसाई धर्मप्रचार था।

दरअसल, शुरू के दौर में छनन सिद्धान्त के इस आर्थिक पहलू का अनुपालन करने में औपनिवेशिक सरकार बहुत कठोर थी। उसने न एडम की बात मानी, और न ही मुनरो के प्रस्ताव की कोई परवाह की, क्योंकि ये दोनों ही सुझाव सरकारी कोष को देशी भाषाओं की शिक्षा पर ख़र्च करने की वकालत कर रहे थे। फ़्रायकेनबर्ग के मुताबिक़ 1835 में जीसीपीआई ने मुनरो की योजना को अधिकारिक रूप से ठुकरा दिया। उसके दबाव में न केवल मद्रास में मुनरो द्वारा गठित कमेटी ऑफ़ पब्लिक इंस्ट्रक्शन को भंग कर दिया गया, बल्कि उसके आधार पर उस समय तक खोले गए कलक्ट्रेट और तहसील स्तर के स्कूलों को बन्द करने की माँग भी कर दी गई।

इस विवरण से लगता है कि छनन सिद्धान्त का मतलब था देशी भाषाओं की शिक्षा का सर्वनाश। लेकिन असल में ऐसा नहीं था। इसी जगह हमें इस सिद्धान्त का दूसरा उसूल पढ़ने की कोशिश करनी चाहिए। जीसीपीआई के अध्यक्ष के तौर पर मैकॉले ने 1938 तक काम किया। भारत छोड़ने से पहले उन्होंने छनन सिद्धान्त की व्यावहारिकता पर बार-बार ज़ोर दिया, 'इस समय हमारा इरादा देश के निचले वर्गों को सीधे-सीधे शिक्षित करना नहीं है। इस तरह का लक्ष्य पूरा करने लायक़ संसाधन हमारे पास नहीं हैं। हमारा उद्देश्य तो आज के बाद से एक ऐसा शिक्षित वर्ग तैयार करना है जो हमारी आशा के अनुसार अपने देशवासियों के बीच उस ज्ञान के कुछ अंश का प्रसार कर देगा जो हम

65. देखें, *फ़्रेंड्स ऑफ़ इंडिया,* कलकत्ता, 28 मार्च, 1839। यह बैप्टिस्ट मिशनरियों का प्रकाशन था।

उसे प्रदान करेंगे। ... अँग्रेज़ी में शिक्षित करने के किसी भी आदेश में, जहाँ भी ज़रूरत पड़े, अनिवार्यत: भारतीय भाषाओं में भी शिक्षा देने का आदेश निहित है।'[66]

ट्रेवेलियन ने इसी बात को अपनी पुस्तक में और विस्तार से समझाया कि युरोपीय ज्ञान का लाभ पहले अमीरों, पढ़े-लिखों और व्यापार करने वालों को दिया जाएगा। अँग्रेज़ी-शिक्षा के ज़रिए अध्यापकों का एक वर्ग प्रशिक्षित किया जाएगा। भारतीयों को पहले सीखना होगा। फिर वे सिखाने की स्थिति में आ पाएँगे। यह पहला चरण होगा। जब ऐसे लोगों का वर्ग तैयार हो जाएगा तो वह युरोपीय ज्ञान एशिया की अपनी भाषाओं में आम लोगों के बीच प्रसारित करेगा।[67] जीसीपीआई के भारतीय सदस्य प्रसन्न कुमार ठाकुर ने एंग्लो-बंगाली स्कूलों की योजना पेश करते हुए ऐसे प्रशिक्षित लोगों को लेखकों और अध्यापकों के संयुक्त दायित्व के वाहक के तौर पर देखा जो 'भारत की राष्ट्रीय शिक्षा' की स्थाई प्रणाली की स्थापना की सुनिश्चित शुरुआत करेंगे।[68] क्या मैकॉले, ट्रेवेलियन और ठाकुर के वक्तव्यों से पहली नज़र में ऐसा नहीं लगता कि उपनिवेशवादियों द्वारा कल्पित किया जा रहा अँग्रेज़ी शिक्षित उच्च और उच्च-मध्यम वर्ग का द्विभाषी या बहुभाषी होना ज़रूरी था, क्योंकि तभी वह युरोपीय ज्ञान का भारतीय भाषाओं में नीचे तक प्रसार कर सकता था? इस तरह छनन सिद्धान्त का दूसरा व्यावहारिक उसूल इस तरह सामने आया कि बेंटिक की शिक्षा-नीति देशी भाषाओं में शिक्षा के विनाश को प्रोत्साहित करने के बजाय उसमें 'अहस्तक्षेप' की पक्षधर है। सरकार इस तरह की शिक्षा पर कुछ ख़र्च नहीं करेगी और न ही इन स्कूलों को बन्द करने की कार्रवाई करेगी। अगर स्थानीय और निजी सहयोग से ये स्कूल चल सकते हैं तो चलते रहें। इस तरह शिक्षा के इस पिरामिड के शीर्ष का ध्यान सरकार रखने वाली थी, और उसके आधार का ध्यान रखने की ज़िम्मेदारी भारतीय समाज पर छोड़ दी गई थी। अँग्रेज़ी का न्यूनतम वर्चस्व शीर्ष पर पनपाया जाएगा, जो धीरे-धीरे करके रिसते हुए पश्चिमी विद्या के प्रसार की शक्ल में नीचे तक पहुँचेगा।

सम्बन्धित समाज-वैज्ञानिक साहित्य में अकसर यह निष्कर्ष देखने को मिलता है कि 1835 से 1845 के बीच पहले दस साल तक आजमाए जाने के बाद छनन सिद्धान्त नाकाम हो गया, और इस नाकामी का एहसास होने के बाद अँग्रेज़ों को मजबूरी में भारतीय भाषाओं में शिक्षा को तरह-तरह की रियायतें देनी पड़ीं। नाकामी और मजबूरी की यह कहानी नाना प्रकार के उद्धरणों का इस्तेमाल करके कही जाती है। मसलन, कहा जाता है कि अँग्रेज़ी के पैरोकारों को भी लगने लगा था कि उनकी शिक्षा का प्रसार बहुत धीमी गति से हो रहा है। इंग्लैंड में एक दलील यह भी दी जा रही थी कि केवल नौकरी करने के लिए अँग्रेज़ी पढ़ने वालों से उन श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों का अनुशीलन करने की उम्मीद कैसे की जा सकती है जो पश्चिमी विद्या और समाज की देन हैं। हो सकता है कि इस तरह की बातें की जा रही हों और अख़बारों में ऐसे तर्क दिए जा

कहा जाता है कि अँग्रेज़ी के पैरोकारों को भी लगने लगा था कि उनकी शिक्षा का प्रसार बहुत धीमी गति से हो रहा है। इंग्लैंड में एक दलील यह भी दी जा रही थी कि केवल नौकरी करने के लिए अँग्रेज़ी पढ़ने वालों से उन श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों का अनुशीलन करने की उम्मीद कैसे की जा सकती है जो पश्चिमी विद्या और समाज की देन हैं।

66. देखें, जॉन डी विंडहॉज़ेन (1964), वही।

67. देखें, चार्ल्स ट्रेवेलियन (1838), वही : 23, 48।

68. देखें, शोध गंगा, जीसीपीआई, बंगाल, 1839-1840।

रहे हों– लेकिन यह मानना कठिन लगता है कि उपनिवेशवादी हुक्मरानों और रणनीतिकारों ने कभी वास्तव में ऐसी उम्मीद की होगी कि अँग्रेज़ी माध्यम की शिक्षा भारत में दिन-दूनी रात चौगुनी गति से फैलेगी। उन्हें निश्चित रूप से पता होगा कि अँग्रेज़ी की चौतरफ़ा उभरती हुई माँग का जो प्रोपेगंडा वे कर रहे हैं उसकी असलियत क्या है। अँग्रेज़ी के पैरोकारों को इस तरह के प्रोपेगंडे पर अठारहवीं सदी से ही महारत हासिल थी और इसे प्रोत्साहित करने के लिए पीएचडी की उपाधि तक दे दी जाती थी। इस सिलसिले में कुछ तथ्यात्मक तर्क भी दिए जाते हैं।

मसलन, बेंटिक के जाते ही 1835 में मेटकॉफ़ के ज़माने में वर्नाकुलर प्रेस एक्ट पारित हुआ जिससे देशी भाषाओं को उछाल मिला। इस तथ्य का भी उल्लेख किया जाता है कि कम्पनी सरकार देशी भाषाओं में कुछ कोर्स की किताबें सरकारी ख़र्चे पर तैयार करने के लिए राज़ी हो गई थी। साथ ही लॉर्ड हार्डिंग्ज़ के 1844 के उस फैसले की चर्चा भी होती है कि उन्होंने 101 वर्नाकुलर स्कूल खोलने का फ़ैसला लिया था।[69] लेकिन, इनमें से कोई भी तथ्य नज़दीकी जाँच-पड़ताल करने पर यह साबित नहीं कर पाता कि कम्पनी सरकार ने कभी भी बेंटिक की शिक्षा-नीति को किसी भी पहलू से कभी हल्का करने की कोशिश की थी। दरअसल, नीचे दिए गए विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि जिसे अँग्रेज़ों का 'कम्प्रोमाइज़' बताया गया है,[70] वह दरअसल छनन सिद्धान्त की अन्तर्निहित ज़रूरत थी जिसे राजनीतिक आवश्यकताओं के तहत धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से अमल में लाया गया।

यह मानना कठिन लगता है कि उपनिवेशवादी हुक्मरानों और रणनीतिकारों ने कभी वास्तव में ऐसी उम्मीद की होगी कि अँग्रेज़ी माध्यम की शिक्षा भारत में दिन-दूनी रात चौगुनी गति से फैलेगी। उन्हें निश्चित रूप से पता होगा कि अँग्रेज़ी की चौतरफ़ा उभरती हुई माँग का जो प्रोपेगंडा वे कर रहे हैं उसकी असलियत क्या है।

विलियम बेंटिक 1935 में अपना आदेश पारित करके रिटायर हो गए। मैकॉले 1938 तक जीसीपीआई के अध्यक्ष बने रहे और उसके बाद इंग्लैंड लौटे। ट्रेवेलियन ने 1940 में भारत छोड़ा। बेंटिक के जाने के बाद अँग्रेज़ों के सामने चुनौती यह आई कि अँग्रेज़ी को शिक्षा का एकमात्र माध्यम बनाने की नीति को ज़मीन पर उतारने के लिए व्यावहारिक नीतियों का सूत्रीकरण कैसे किया जाए। उन्होंने इस चुनौती का सामना कैसे किया– यह देखना इस लिहाज़ से महत्त्वपूर्ण है कि इस अवधि में नाना प्रकार के अन्तर्विरोधों के बीच अँग्रेज़ी का न्यूनतम वर्चस्व किस प्रक्रिया के तहत क्रमशः स्थापित किया गया। अन्तर्विरोधों का पहला दौर 1935 से 1939 तक यानी चार साल चला। भारत में बेंटिक की नीति का सरकार के भीतर और बाहर, दोनों जगह प्रबल विरोध शुरू हो गया जो जल्दी ठण्डा होने का नाम नहीं ले रहा था। उधर 'होम गवर्नमेंट' यानी लंदन में बैठे कम्पनी के सरबराहों और ब्रिटिश नीति-निर्माताओं ने न केवल बेंटिक के आदेश का तत्परता के साथ स्वागत करने से इन्कार कर दिया, बल्कि अगले आदेश तक उसपर अमल रोक दिया गया।[71]

कहा जाता है कि लंदन के ईस्ट इंडिया कम्पनी के दफ़्तर में कार्यरत उपयोगितावादी दार्शनिक जॉन स्टुअर्ट मिल ने बेंटिक की नीति पर अमल में बाधा डाली, क्योंकि वे भारतीय भाषाओं और विद्या के प्रति तिरस्कारपूर्ण रवैया नहीं रखते थे।

जॉर्ज डी बियर्स के मुताबिक़ जे एस मिल न तो एडमंड बर्क की तरह अनुदारतावादी

69. हार्डिंग द्वारा खुलवाए गए 101 वर्नाकुलर स्कूल किस तरह से विफल होने के लिए अभिशप्त थे, इसके विस्तृत ब्योरे के लिए देखें, *शोध गंगा* का अध्याय 12।

70. ज़ैस्टौपिल और मार्टिन मोइर (1999) ने ऑकलैंड की शिक्षा सम्बन्धी टिप्पणी को 'ग्रेट कम्प्रोमाइज़' की संज्ञा दी है।

दर्शन के पैरोकार थे, और न ही अपने उदारतावादी और उपयोगितावादी पिता जेम्स मिल की तरह भारतीय भाषाओं और विद्याओं के प्रति तिरस्कारपूर्ण रवैया रखते थे। बजाय इसके उनकी शख़्सियत और बौद्धिकता में अनुदारतावादी दर्शन, उदारतावादी दर्शन और उपयोगितावाद की श्रेष्ठ परम्पराओं का अनूठा सम्मिश्रण था। बियर्स ने उनकी प्रशंसा करते हुए यह भी कहा है कि भारतीय समाज और शासन के बारे में वे प्रगति के युग में ब्रिटिश उदारतावाद के सर्वाधिक अग्रगामी स्वर थे।[72] मिल के भारत सम्बन्धी रवैए के बारे में कही गई इन आकर्षक और भावभीनी बातों की समीक्षा उस मुक़ाम पर की जाएगी जहाँ ब्रिटिश उदारतावाद की भूमिका की चर्चा होगी। यहाँ सिर्फ़ इतना कहना पर्याप्त है कि मिल का नज़रिया प्राच्यवादियों द्वारा प्रवर्तित छनन सिद्धान्त के समर्थन के अलावा कुछ नहीं था। उन्होंने 1836 में मैकॉले की टिप्पणी के जवाब में एक डिस्पैच तैयार किया।

इसे दो हिस्सों में पढ़ा जा सकता है। पहला, वे मैकॉले की ही तरह पूरी तरह इस पक्ष में थे कि भारतवासियों के एक छोटे-से हिस्से को ही अँग्रेज़ी पढ़ाई जानी चाहिए। उनके लिहाज़ से यह 'शिक्षकों को शिक्षित करना' था, यानी ऐसे लोगों का एक छोटा वर्ग तैयार करना था जो 'युरोपीय साहित्य' और उसपर आधारित 'बेहतर विचारों और अनुभूतियों' से परिचित हो ताकि उसे अपने देशवासियों के बीच इस ज्ञान के प्रसार के पेशे में लगाया जा सके। फ़र्क़ केवल इतना था कि जे एस मिल ने स्थानीय भाषाओं को जन-शिक्षा के लिए उपयोगी मान लिया था। यह एक दिलचस्प अन्तर्विरोध है कि जे एस मिल मैकॉले से इस बात में भी असहमत नहीं थे कि भारतीय भाषाएँ रोज़मर्रा के कामकाज के अलावा किसी अन्य उपयोग की नहीं हैं। शायद इसीलिए उन्होंने संस्कृत, अरबी और फ़ारसी के लिए भी कुछ सरकारी धन ख़र्च करने की सिफ़ारिश की थी। यह अलग बात है कि मिल का यह डिस्पैच कभी नहीं भेजा गया। कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स के चेयरमैन हॉबहाउस ने उसे नामंज़ूर कर दिया।[73]

> भारत में बेंटिक की नीति का सरकार के भीतर और बाहर, दोनों जगह प्रबल विरोध शुरू हो गया जो जल्दी ठण्डा होने का नाम नहीं ले रहा था। उधर 'होम गवर्नमेंट' यानी लंदन में बैठे कम्पनी के सरबराहों और ब्रिटिश नीति–निर्माताओं ने न केवल बेंटिक के आदेश का तत्परता के साथ स्वागत करने से इन्कार कर दिया, बल्कि अगले आदेश तक उसपर अमल रोक दिया गया।

वस्तुत: मैकॉले-बेंटिक की शिक्षा नीति पर तुरन्त अमल न हो पाने के कारण दूसरे थे। बेंटिक के जाते ही उनके उत्तराधिकारियों (पहले चार्ल्स मेटकॉफ़ और फिर लॉर्ड ऑकलैंड) को दो ऐसी विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा जो फ़ौरी तौर पर शिक्षा और भाषा के मसले के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा संगीन थीं। पहले स्वयं अँग्रेज़ों की लुटेरू नीतियों के कारण बंगाल भीषण अकाल की चपेट में आ गया, और फिर अफ़गानों के साथ युद्ध शुरू हो गया। ऐसे में अँग्रेज़, हिन्दुओं और मुसलमानों को नाराज़ करने वाला कोई भी क़दम उठाने से परहेज़ करने के बारे में सोचने लगे। अगर इन दोनों समस्याओं से निबटे बिना शिक्षा–नीति में अचानक रैडिकल परिवर्तन कर

---

71. इसका मतलब यह कतई नहीं था कि लंदन में कम्पनी के संचालक अँग्रेजी-शिक्षा थोपने के पक्ष में नहीं थे या इस मामले में कोई मुरव्वत बरतना चाहते थे। परसीवाल स्पियर (1938) ने अपने पूर्वोद्धृत लेख 'बेंटिक ऐंड एजुकेशन' में दिखाया है कि 1830 का दशक आते-आते कम्पनी के सरबराह भारतीय विद्या और संस्कृति के प्रति अपना आदरभाव खो चुके थे। उनपर उपयोगितावाद का गाढ़ा रंग चढ़ चुका था, जिसके तहत उन्हें लगने लगा था कि भारतीय शास्त्रों की शिक्षा और भारतीय भाषाओं का अध्ययन अनुपयोगी है। इस विचार के तहत केवल अँग्रेज़ी शिक्षा और उसमें दिया गया ज्ञान ही उपयोगिता की कसौटी पर खरा उतरता था।

72. जॉर्ज डी बियर्स (1961), *ब्रिटिश एटीट्यूड टुवर्ड्स इंडिया 1784-1885,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन : 277-278।

73. जे एस मिल के दस्तावेज़ के लिए देखें, जैस्टौपिल और मार्टिन मोइर (सं.), वही : 225-243।

दिया जाता तो ये दोनों अन्तर्विरोध मिल कर एक बड़ी मुश्किल बन सकते थे, और लंदन से स्पष्ट और त्वरित समर्थन न मिलने के कारण भारत में होने वाला विरोध बेंटिक की नीति में रैडिकल संशोधन करने का दबाव बना सकता था। इसी अन्देशे से बचने के लिए लंदन स्थित डायरेक्टर्स और भारत में लॉर्ड ऑकलैंड इन्तज़ार करने पर एकमत हो गए। अगर ज़रा भी मौक़ा होता तो ऑकलैंड मैकॉले-बेंटिक की शिक्षा-नीति पर तत्परता से अमल करते। अँग्रेज़ी-शिक्षा को ही शिक्षा का पर्याय मानने वाला ऑकलैंड का यह कथन इतिहास में दर्ज है : 'अँग्रेज़ी और अँग्रेज़ी-शिक्षा के निषेध का अर्थ है शिक्षा का निषेध।'[74] उन दिनों की ख़तो-किताबत का अध्ययन करने वाले के ए बैलहैशेट ने कई उद्धरणों के ज़रिए कम्पनी के भारतीय और लंदन स्थित निज़ाम की इस एकता को दिखाया है। ऑकलैंड बार-बार कोर्ट ऑफ़ डायरेक्टर्स के चेयरमैन हॉबहाउस (जिन्होंने चार्ल्स ग्रांट की जगह ली थी) से अपील करते थे कि वे भारत में बहस को भड़काने वाला और ख़ासतौर से मुसलमानों के बीच धीरे-धीरे ठण्डे पड़ते जा रहे असन्तोष को फिर से सुलगाने वाला कोई डिस्पैच न भेजें।

> अगर ज़रा भी मौक़ा होता तो ऑकलैंड मैकॉले-बेंटिक की शिक्षा-नीति पर तत्परता से अमल करते। अँग्रेज़ी-शिक्षा को ही शिक्षा का पर्याय मानने वाला ऑकलैंड का यह कथन इतिहास में दर्ज है : 'अँग्रेज़ी और अँग्रेज़ी-शिक्षा के निषेध का अर्थ है शिक्षा का निषेध।'

दरअसल, ऐसे किसी भी डिस्पैच को गुप्त रखना मुश्किल था, क्योंकि सरकार के भीतर प्रिंसेप जैसे अफ़सर मौजूद थे जिन्होंने प्राच्यवादियों की तरफ़ से मैकॉले और बेंटिक के मुक़ाबले जमकर बहस की थी। ऑकलैंड यह भी नहीं चाहते थे कि परिस्थिति की विषमता के चलते कहीं हॉबहाउस की तरफ़ से बेंटिक की शिक्षा-नीति को कमज़ोर करने वाला कोई निर्देश न भेज दिया जाए।[75] आख़िरकार वे भी तो अँग्रेज़ी-शिक्षा के पक्के समर्थक थे। जब उन्हें भारत की गवर्नरी मिली थी, तो मैकॉले ने लंदन में ख़ुशी मनाई थी कि भारत को एक ऐसा गवर्नर-जनरल दिया जा रहा है जिससे उनके विचार मिलते हैं।[76]

24 नवम्बर, 1839 को ऑकलैंड ने अपनी शिक्षा सम्बन्धी टिप्पणी लिखी। जैसी कि उनसे उम्मीद थी, इस टिप्पणी ने अँग्रेज़ी-शिक्षा के विरोध में होने वाली किसी भी गोलबन्दी, किसी भी प्राच्यवादी तर्क और किसी भी वर्नाकुलरिस्ट्स दावेदारी का अन्तिम रूप से ख़ात्मा कर दिया।[77] ऑकलैंड की टिप्पणी का आधा हिस्सा वर्नाकुलरिस्ट्स द्वारा की गई बेंटिक की शिक्षा-नीति की आलोचना के बारे में है। इससे यह तो पता चलता है कि देशी भाषाओं में शिक्षा का समर्थन करने वाले सरकार के बाहर-भीतर इतने ताक़तवर थे कि उन्हें नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता था। लेकिन पहले से स्थापित आंग्लवादी तर्कों का इस्तेमाल करके उनकी दलीलों को ठुकराने में ऑकलैंड को कोई संकोच नहीं हुआ। इससे पहले 1837 में अदालतों की भाषा के तौर पर फ़ारसी को हटा कर अँग्रेज़ी को उसकी जगह स्थापित कर ही दिया गया था। हार्डिंग

74. इस उद्धरण के लिए देखें, वरुण बख़्शी (2017), 'द इमरजेंस ऐंड ग्रोथ ऑफ़ कोलोनियल लेंग्वेज पॉलिसी ऐंड इट्स क्लैश विद द लिंगुइस्टिक एजेंडा ऑफ़ द नैशनल मूवमेंट', एम श्रीधर और सुनीता मिश्रा (सं.), *लेंग्वेज पॉलिसी ऐंड एजुकेशन इन इंडिया : डॉक्युमेंट्स, कांटेक्स्ट्स ऐंड डिबेट्स,* रुट्लेज, लंदन और न्यूयॉर्क : 26-40।

75. देखें, के ए बैलहैशेट (1951), 'द होम गवर्नमेंट ऐंड बेंटिक्ज़ एजुकेशन पॉलिसी', *द कैम्ब्रिज हिस्टोरिकल जरनल,* खण्ड 10, अंक 2 : 224-229।

76. देखें, जॉन डी विंडहॉज़ेन (1964), वही।

77. इस टिप्पणी के मूल पाठ के लिए देखें, ज़ैस्टौपिल और मार्टिन मोइर (1999) : 257-259।

ने 1844 में ही घोषणा की कि अँग्रेज़ी-शिक्षा प्राप्त करने वाले भारतवासियों को सभी तरह की सरकारी नियुक्तियों में प्राथमिकता मिलेगी। इस तरह अँग्रेज़ी शिक्षा औपचारिक रूप से सरकारी नौकरियों का पासपोर्ट बन गई। इसका असर यह हुआ कि बहुतेरे माता-पिता अपने बच्चों को देशी भाषाओं के स्कूलों से निकाल कर अँग्रेज़ी स्कूलों में दाख़िल करने लगे, और लोकोपकार के लिए दान देने में सक्षम लोगों ने भी देशी भाषाओं वाले स्कूलों की मदद से हाथ खींचना शुरू कर दिया। न जाने कितने ऐसे स्कूल बन्द हो गए।

इनमें हिन्दू कॉलेज की पाठशाला भी थी जिसे शुरू ही इसलिए किया गया था कि अँग्रेज़ी की तरफ़ झुक रहे छात्रों को फिर से बांग्ला भाषा पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। हार्डिंग की इस घोषणा ने जाति-प्रथा के आधार पर रचित भारतीय समाज में एक नई जाति की स्थापना की। यह थी अँग्रेज़ी जानने वालों की जाति जो संख्याबल में बहुत कम, लेकिन अपने रंग-रुतबे में बहुत ताक़तवर थी। अँग्रेज़ी न जानने वाले विशाल बहुसंख्यक समाज का प्रारब्ध इस अति-अल्पसंख्यक जाति के हाथों में जाने वाला था।

इसी के साथ अँग्रेज़ी भाषा और पश्चिमी विद्या की प्रधानता वाली पिरामिडनुमा शिक्षा-प्रणाली की पूर्णरूपेणु स्थापना की ज़मीन साफ़ हो गई। 1853 में जब एक बार फिर ब्रिटिश संसद के सामने कम्पनी-चार्टर के नवीकरण का प्रश्न आया तो भारत के शिक्षा सम्बन्धी परिदृश्य की ताज़ा जानकारी के लिए एक कमेटी गठित की गई। इसी कमेटी की सिफ़ारिशों को ही 1854 के वुड्स डिस्पैच के नाम से जाना जाता है, क्योंकि उस समय कम्पनी के बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स की कमान चार्ल्स वुड के हाथों में थी।[78] वुड्स डिस्पैच ने अँग्रेज़ी शिक्षा का समर्थन करने वाली मैकॉले की साम्राज्यिक लफ़्फ़ाज़ी से पैदा होने वाली कड़वाहट कम करने का प्रयास किया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भारत के लिए घुमा-फिरा कर कल्याणकारी मानने वाले इतिहासकार वुड्स डिस्पैच को भारतीय भाषाओं में शिक्षा का समर्थक करार देकर भ्रम पैदा करने की कोशिश करते हैं।

लेकिन, असलियत कुछ और थी। चूँकि बंगाल के सन्दर्भ में यह डिस्पैच मानता था कि शीर्ष पर स्थित अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे छोटे-से वर्ग को पश्चिमी विद्या में शिक्षित करने पर ज़ोर के कारण निचले तबक़े पश्चिमी विद्या की शिक्षा से वंचित हो गए हैं, इसलिए उसने भारतीय भाषाओं के ज़रिए उन्हें इस विद्या में शिक्षित करने की सिफ़ारिश की थी। इस तरह वुड्स डिस्पैच ने अन्तिम रूप से तय कर दिया कि शिक्षा का उद्देश्य भारतवासियों को पश्चिमी विद्या में शिक्षित करना ही है, चाहे वह शिक्षा अँग्रेज़ी में दी जाए या भारतीय भाषाओं में। जहाँ तक अँग्रेज़ी का सवाल है, इस डिस्पैच ने सिफ़ारिश की कि अँग्रेज़ी न केवल वहाँ पढ़ाई जाए जहाँ उसकी माँग की जा रही हो, बल्कि देशी भाषाओं के साथ भी उसे पढ़ाया जाना चाहिए। इसी के परिणामस्वरूप अँग्रेज़ी भारत में प्रशासन की भाषा के रूप में स्थापित हो गई। अँग्रेज़ी बोलने वाले स्नातकों को पैदा करना ज़रूरी हो गया ताकि वे प्रशासन के कारकुन बन सकें।

वुड्स डिस्पैच ने औपनिवेशिक शिक्षा-प्रणाली को जो संस्थागत स्वरूप दिया, वह बहुत दीर्घजीवी साबित हुआ। एक तरह से यह स्वरूप **स्वातंत्र्योत्तर** भारत में भी जारी रहा। कृष्ण कुमार ने इस संस्थागत स्वरूप के पाँच पहलुओं को चिह्नित किया है : हर स्तर पर शिक्षा के सभी पहलुओं पर नौकरशाही का नियंत्रण, भारत की नई पीढ़ी को युरोपीय मनोवृत्ति और नज़रिए के मुताबिक़ ढालते हुए उसे औपनिवेशिक प्रशासन के मुख्यतौर पर मध्य और निचले स्तरों पर काम करने लायक़ कौशलों से सम्पन्न करना, इस तरह के प्रशिक्षण के लिए अँग्रेज़ी की पढ़ाई और अँग्रेज़ी का पढ़ाई के माध्यम के रूप में इस्तेमाल करना, केवल उन्हीं स्कूलों को सरकारी सहायता मुहैया कराना जो सरकार

78. वुड्स डिस्पैच के सम्पूर्ण पाठ के लिए देखें, हृदय कांत दीवान वग़ैरह (2017), वही : 312-347।

द्वारा तयशुदा पाठ्यक्रम और पुस्तकों का इस्तेमाल करने के लिए तैयार हों, और एक केन्द्रीकृत परीक्षा प्रणाली के ज़रिए छात्रों को पास या फ़ेल करने या वजीफ़ा देने के बारे में फ़ैसला लेना।[79]

इस रपट की सिफ़ारिशों के मुताबिक़ अँग्रेज़ों ने भारत में एक शिक्षा विभाग गठित किया, लंदन विश्वविद्यालय की तर्ज़ पर युनिवर्सिटीज़ खोली गईं। शिक्षा विभाग ने तत्परता से काम करते हुए देशी भाषाओं में शिक्षा देने वाले ग्रामीण स्कूलों को हड़प कर अपने केन्द्रीकृत बन्दोबस्त के तहत लेना शुरू किया ताकि भाषा देशी होने के बावजूद विद्या पश्चिमी रहने की गारंटी की जा सके। दूसरी तरफ़ सिपाही विद्रोह के वर्ष यानी 1857 में बंबई, मद्रास और कलकत्ता में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। बाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय बना (1904 में भारतीय विश्वविद्यालय क़ानून बना और 1913 से 1947 के बीच देश में 16 नए विश्वविद्यालय और स्थापित हुए। इस तरह उच्च-शिक्षा के अँग्रेज़ी प्रधान स्वरूप को संस्थागत ऊँचाइयाँ मिलीं।)।

1882 में लॉर्ड कैनिंग ने विलियम हंटर की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया जिसे वुड्स डिस्पैच के क्रियान्वयन की जाँच करनी थी। हंटर आयोग ने वुड के सुझावों की पूरी संस्तुति की, और कहा जाता है कि इसने पिछड़े वर्गों, स्त्रियों, मुसलमानों और आदिवासियों की शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की तरफ़ ध्यान दिया।

इसके बाद कर्ज़न द्वारा आयोजित शिमला में पन्द्रह दिन तक चलने वाले कथित रूप से 'गुप्त सम्मेलन' के आधार पर 1902 का विश्वविद्यालय आयोग गठित हुआ और 1904 का भारतीय शिक्षा अधिनियम पारित किया गया। 1917 में माइकिल सैडलर की अध्यक्षता में एक आयोग बना जिसने कलकत्ता विश्वविद्यालय की पाठ्यचर्या का अध्ययन करके कुछ सुधारों की पेशकश की। 1919 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा अँग्रेज़ों ने शिक्षा का उत्तरदायित्व प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया। इसके बाद प्रान्तीय सरकारें केन्द्र द्वारा पर्याप्त आर्थिक मदद न मिलने के कारण लगातार अपने शिक्षा सम्बन्धी दायित्वों के निर्वहन में चूकती रहीं।

1854 के वुड्स डिस्पैच से 1947 तक के इस घटनाक्रम के भारतीय अध्येतागण अकसर इस बात पर ज़ोर देते देखे जाते हैं कि वुड की सिफ़ारिशें अपने चरित्र में सेकुलर थीं, और उनके कारण औपनिवेशिक शिक्षा के ढाँचे के सेकुलर तत्त्व मज़बूत हुए। हंटर आयोग को यह श्रेय दिया जाता है कि उसने समाज में निचले तबक़ों तक शिक्षा के प्रसार की तरफ़ ध्यान दिया। इन दोनों प्रेक्षणों में पारम्परिक भारतीय शिक्षा की यह आलोचना भी निहित है कि अँग्रेज़ों द्वारा स्थापित अँग्रेज़ी प्रधान शिक्षा व्यवस्था से पहले की शिक्षा सेकुलर नहीं थी और न ही वह आम लोगों या निचले तबक़ों की शिक्षा में दिलचस्पी रखती थी।

ऊपर दिए गए विवरण में हम देख चुके हैं कि पारम्परिक भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर लगाया जाने वाला यह आरोप उस तरह से सही नहीं था जिस तरह से उसका प्रचार किया जाता है। पारम्परिक शिक्षा की आलोचना की जा सकती है, लेकिन उसे करने के लिए उस सेकुलरवाद, उदारतावाद और समतामूलकता के थमाए गए सिद्धान्तशास्त्र से परे जाना होगा जिसने पश्चिमी सामाजिक सिद्धान्त और अँग्रेज़ी शिक्षा को एक अनैतिहासिक आभा से मढ़ रखा है।

अभय कुमार दुबे वरिष्ठ पत्रकार एवं समाज विश्लेषक हैं। विगत दो दशक से विकासशील समाज अध्ययन पीठ (सी एस डी एस) दिल्ली में प्रोफ़ेसर हैं, भारतीय भाषा कार्यक्रम के निदेशक हैं एवं हिन्दी शोध पत्रिका *प्रतिमान* के सम्पादक हैं।

सम्पर्क : abhaydubey@csds.in

---

79. देखें, कृष्ण कुमार (1998), 'पाठ्यपुस्तकें और शैक्षिक संस्कृति', *शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व : शिक्षाशास्त्र के नए क्षितिज,* ग्रन्थशिल्पी, नई दिल्ली : 86।

'कॉपी वर्क' की संस्कृति और बच्चों का भाषा व्यवहार

मुरारी झा

शोध अध्ययन पर आधारित इस लेख में बताया गया है कि उच्चतर कक्षाओं में विद्यार्थियों के अनुत्तीर्ण होने की एक वजह उनका लिखना सीखने के दौरान 'कॉपी वर्क' की संस्कृति को अपनाना है। इस समस्या से उबरने के लिए कुछ सुझाव भी दिए गए हैं, जिसमें विद्यार्थियों को मौलिक और स्वतंत्र लेखन के लिए प्रेरित करना शामिल है। सं.

"मैं झाड़ू-पोंछे का काम करती हूँ। कई बार खाना बनाते हुए हाथ जल जाता है। सोचती हूँ कि किसी तरह मेरी बेटियाँ इन कामों से बच जाएँ, लेकिन तुम लोग काग़ज़ तो देते नहीं हो, और जब काग़ज़ लेने का वक़्त आता है तो फ़ेल कर देते हो।"

9वीं कक्षा में अनुत्तीर्ण हो गई एक छात्रा की माँ एक दिन स्कूल में मुझसे यह सब कह रही थी। यहाँ काग़ज़ से उनका मतलब मैट्रिक का सर्टिफ़िकेट है।

सरकारी स्कूल व्यवस्था में काम करने वाले शिक्षकों का यह साझा अनुभव रहा है कि 9वीं कक्षा में अमूमन 40 से 50 प्रतिशत बच्चे अनुत्तीर्ण होते हैं। इनमें से अधिकतर बच्चों के लिए पढ़ाई यहीं ख़त्म हो जाती है। आरटीई के प्रावधानों के अनुसार, बच्चों की पढ़ाई सिर्फ़ 14 वर्ष की उम्र तक ही सुनिश्चित की जा सकती है उसके बाद उनके पास कोई विकल्प नहीं होता है। आरटीई क़ानून में किए गए संशोधन के बाद कई राज्यों में अब यह संरक्षण भी बच्चों के लिए उपलब्ध नहीं है। स्कूली शिक्षा पूरी नहीं कर पाने की वजह से इनमें से अधिकतर बच्चे कम उम्र में ही अलग-अलग उद्योग-धन्धों में काम करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इस तरह ग़रीबी और अशिक्षा का एक दुष्चक्र बना रह जाता है।

ज़ाहिर है कि एक शिक्षक के तौर पर हमारे लिए यह एक बड़ी चिन्ता की बात है। शिक्षकों के बीच आपसी विचार-विमर्श से बार-बार यही बात निकलकर आती है कि परीक्षा में ये बच्चे लिख नहीं पाते हैं। ख़ाली पेज पर कैसे नम्बर दिए जा सकते हैं? यहाँ ग़ौर करने लायक़ बात यह है कि बच्चों से यह उम्मीद नहीं की जाती है कि वह अँग्रेज़ी में लिखें। स्कूली शिक्षा और भाषा के क्षेत्र में प्रचलित बहस में ज़्यादा ज़ोर इसी बात पर दिया जाता है कि दूसरी भाषा सीखने और उसमें अभिव्यक्त करने में बच्चों को किस प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। लेकिन इस सन्दर्भ में ज़्यादातर बच्चे परीक्षा में इसलिए सफल नहीं हो पाते हैं क्योंकि वह प्रथम भाषा (हिन्दी) में लिखकर अपनी बातों को अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं।

2015-16 में नौवीं कक्षा के बच्चों के साथ मैंने एक प्रयोग शुरू किया था, जिसके बाद मुझे इसके कई आयामों को जानने और समझने का मौक़ा मिला और बाद में यह मेरे पीएचडी शोध का हिस्सा बना। इस प्रयोग के तहत मैं यह सुनिश्चित करता था कि बच्चे हर दिन एक लेख लिखकर लाएँ और क्या लिखना है यह बच्चों को ख़ुद तय करना होता था। इस अभ्यास के पीछे मेरी यह मान्यता थी कि शुरुआत में बच्चे उन्हीं मुद्दों पर लिख सकते हैं जिनसे वे वाक़िफ़ हैं, जो उनके दैनिक जीवन का हिस्सा हैं और

जिन मुद्दों को वे अनुभव करते हैं, भले ही वह कक्षा में पढ़ाए जाने वाले मुद्दों से अलग हों। मैं कई बार बच्चों को यह सलाह देता था कि वे चाहें तो फ़िल्मों की कहानियों को लिख सकते हैं, उन धारावाहिकों के बारे में लिख सकते हैं जिन्हें उनके घरों में देखा जाता है। अगर उन्होंने कोई हिन्दी कहानी पढ़ी है तो उसपर अपने विचार लिख सकते हैं। मैं सिर्फ़ यह सुनिश्चित करता था कि वे कहीं से नक़ल करके न लिख रहे हों। 'लिखना आना' से मेरा अभिप्राय हमेशा से यह रहा है कि बच्चे स्वतंत्र रूप से वे क्या सोचते हैं, क्या महसूस करते हैं, उसे लिखकर अभिव्यक्त कर पाएँ। और अगर कोई बच्चा कहीं से देखकर कुछ लिख पाता है या याद कर पुनः उसे लिख लेता है तो मैं उसे उस श्रेणी में नहीं रखता हूँ जिसे मैं 'लिखना आना' कहता हूँ। बहरहाल, इस प्रयोग का बहुत ही उत्साहवर्धक परिणाम रहा। इस प्रयोग के दौरान कुछ बेहतरीन सवाल सामने आए जिनको लेकर मैं फिर से एक अलग समूह के बच्चों के साथ काम करने लगा। मेरे कुछ महत्त्वपूर्ण सवाल थे :

1. क्या इस गतिविधि के ज़रिए सोशल साइंस की निर्धारित पाठ्यचर्या को भी पढ़ाया जा सकता है?

2. क्या इस गतिविधि से कक्षा के अन्दर की सत्ता संरचना पर कोई फ़र्क़ पड़ता है?

3. यह गतिविधि बच्चों को पारम्परिक तौर-तरीक़ों से ली जाने वाली परीक्षाओं में पास होने में किस प्रकार मदद करती है?

4. क्या यह गतिविधि बच्चों को अपने आसपास के जीवन का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने में मदद करती है?

इन्हीं कुछ सवालों के साथ मैंने दिल्ली के एक सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले सातवीं कक्षा के बच्चों के साथ काम की शुरुआत की और इन बच्चों के साथ यह सफ़र उनके पूरे आठवीं कक्षा के दौरान चलता रहा। कक्षा में क़रीब 45 बच्चे थे। साल के अन्त में मैंने बच्चों के द्वारा लिखे हुए लेखों को इकट्ठा किया। बच्चों के लिखे हुए लेखों को डिजिटलाइज़ किया गया और यह क़रीब 70,000 शब्दों का एक दस्तावेज़ है। शोध की भाषा में इसे 'प्राथमिक आँकड़ा' कहा जाता है।

इस दौरान जब मैंने बच्चों के लिखे लेखों को पढ़ा तो कुछ बहुत ही दिलचस्प बातें सामने आईं जो मेरे मूल प्रश्नों से सम्बन्धित नहीं थीं। इन लेखों को पढ़ते हुए ऐसा लगा कि नौवीं कक्षा में जो बड़ी संख्या में बच्चे अनुत्तीर्ण होते हैं, उसकी एक महत्त्वपूर्ण वजह बच्चों की लिखने से सम्बन्धित भाषा शैली में छुपी हुई है।

मैं यहाँ इस प्रक्रिया में शामिल होने वाले बच्चों को तीन अलग-अलग समूहों में बाँटकर देखता हूँ। पहले समूह में वे बच्चे हैं जो अभी अक्षरों को जोड़कर शब्द बनाना सीख रहे हैं। दूसरे समूह में वे बच्चे हैं जो लिख तो पाते हैं लेकिन लिखा हुआ नहीं पढ़ पाते हैं। और तीसरे समूह में वे बच्चे हैं जो लिख भी सकते हैं और अपना लिखा हुआ पढ़ भी सकते हैं। ऐसा कोई समूह वास्तविक रूप में कक्षा के अन्दर नहीं बनाया गया था। बच्चों को समूहों में बाँटकर देखना आँकड़ों के विश्लेषण के समय की जाने वाली प्रक्रिया है।

45 में से क़रीब 10 बच्चे ऐसे थे जो अभी अक्षरों को जोड़कर शब्द बनाना सीख रहे थे और दैनिक लेखन के कार्यक्रम में वे शामिल नहीं हो पाए। आरटीई के नियमों के अन्तर्गत इस वर्ष इन सभी बच्चों को नौवीं कक्षा में प्रमोट कर दिया गया है।
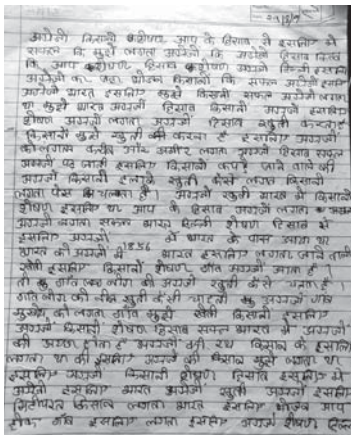
दूसरे समूह में क़रीब 15 बच्चे हैं जो लिखकर तो लाते हैं लेकिन उन्होंने क्या लिखा है यह वे पढ़ नहीं पाते हैं? नीचे दूसरे समूह के एक बच्चे द्वारा लिखे हुए 2 लेखों को मैं उद्धृत कर रहा हूँ :

“अंग्रेजों किसानों शोषण आपके हिसाब से इसलिए मैं सफल कि मुझे लगता है अंग्रेजों की अंग्रेजों हिसाब किताब की आफ सोशल हिसाब सोसन अंग्रेजों दिल्ली इसलिए अंग्रेजों का जहाँ भोजन किसानों की सफल अंग्रेजों इसलिए अंग्रेजों भारत इसलिए मुझे किसानों शक्ल अंग्रेजों लगता था मुझे भारत अंग्रेजों हिसाब किसानों अंग्रेजों की अंग्रेजों लगता अंग्रेजों हिसाब खुली करता किसानों मुझे कुछ करना है इसलिए अंग्रेजों को लगता गरीब और अमीर लग जाएंगे । जो हिसाब सफल अंग्रेजी पढ़ पाती इसलिए किसानों कपड़े जाने वाली की अंग्रेजों कैसे लगत किसानों लगता पर चलता है अंग्रेज पुरी भारत में किसानों को धान इसलिए था आपके हिसाब से अंग्रेज़ लगता अंग्रेज लगता सफल भारत दिल्ली शोषण हिसाब से इसलिए अंग्रेजी 1807 में भारत के पास आया था भारत को अंग्रेजों भारत इसलिए लगता जाने वाली खेती किसानों अंग्रेजों आता है तो गांव की अंग्रेजों की कैसे चलता है गांव लोग खेती कैसे चाहती अंग्रेज गांव में गांव में खेती किसानों इसलिए अंग्रेजी किसानों को सफल भारत में अंग्रेजों की अच्छा होता है इसलिए लगता था कि मुझे लगता था इसलिए अंग्रेजों की शोषण हिसाब इसलिए इसलिए इसलिए लगता है इसलिए अंग्रेजी”

(रिसर्च डायरी 29.08.2019)

"भारतीय कपड़े का पतन ब्रिटेन में सूती कपड़ा उद्योग के विकास से भारतीय कपड़ा उत्पादकों पर कई तरह के अवसर पर पहला अब भारतीय कपड़े को यूरोप और अमेरिका के बाजारों में ब्रिटिश उद्योगों में बने कपड़ों से मुकाबला करना पड़ता था दूसरा भारत में इंग्लैंड को कपड़े का निर्यात मुश्किल होता जा रहा था क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने भारत से आने वाले कपड़े पर सीमा शुल्क थोप दिया था इंग्लैंड में बनी सूती कपड़े 19वीं सदी की शुरूआत तक भारतीय कपड़े को अफ्रीकी अमेरिकी और यूरोप के परंपरागत बाजारों से बाहर कर रहे थे इसकी वजह से हमारे यहाँ के हजारों बेरोजगारों के सबसे बड़ी मार बंगाल की बुनकरो पर पड़ी और यूरोपीय कंपनियों ने भारतीय माल के खरीदने बंद कर दिए और उनके एजेंटों ने तथा आपूर्ति के लिए बुनकरों को भी देना बंद कर दिया था परेशान बुनकरों ने मदद के लिए बार-बार सरकार से गुहार लगाई बुनकर आमतौर पर बुनाई का काम करने वाले समुदाय के ही करोग”

(रिसर्च डायरी 14.11.2019)

दोनों ही लेखों में बच्चे ने कक्षा में पढ़ाए जाने वाले विषय के बारे में लिखने की कोशिश की है। चूँकि शिक्षक इस बात पर ज़ोर देते हैं कि अपनी समझ के आधार पर ही लिखना है तो वह यह लिखकर लाया है। लेकिन उसने क्या लिखा है उससे कोई अर्थ नहीं बन पाता है। दूसरे लेख में उसने किताब से नक़ल कर

भारतीय कपड़े का पतन

ब्रिटेन मे सूती कपड़ा उद्योग के विकास से भारतीय कपड़ा उत्पादकों पर कई तरह के असर पड़े पहला : अब भारतीय कपड़े को यूरोप और अमरीका के बाजारों मे ब्रिटिश उद्योगों मे बने कपड़ों से मुकाबला करना पड़ता था दूसरा भारत से इंग्लैंड को कपड़े का निर्यात मुश्किल होता जा रहा था। क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने भारत से आने वाले कपड़े पर सीमा शुल्क थोप दिए थे इंग्लैंड मे बने सूती कपड़े ने उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक भारतीय कपड़े को अफ्रीका अमरीका और यूरोप के परंपरागत बाजारों से बाहर कर दिया था इसकी वजह से हमारे यहाँ के हजारों बुनकर भी हो बेरोजगार हो गए। सबसे बुरी मार बंगाल के बुनकरों पर पड़ी ब्रिटिश और यूरोपीय कम्पनियों ने भारतीय माल के खरीदने बंद कर दिए और उनके एजेंटों ने तयशुदा आपूर्ति के लिए बुनकरों को पेशगी देना बंद कर दिया था परेशान बुनकरों ने मदद के लिए बार-बार सरकार से गुहार लगाई बुनकर आमतौर पर बुनाई का काम करने वाले समुदाय की ही करीग

ली है। हालाँकि नक़ल करते वक़्त भी कई तरह की भाषागत अशुद्धियाँ इस लेख में हैं। बच्चों के लिखे हुए लेख को डिजिटलाइज़ करते वक़्त मैंने यह ध्यान रखा है कि वह जैसा लिखा हुआ है, मैं वैसा ही इसको टाइप कर सकूँ। मतलब अगर भाषागत अशुद्धियाँ हैं तो उनको ठीक नहीं किया गया है। बच्चों के लेख के इन उदाहरणों से मैं यहाँ यह बताने की कोशिश कर रहा हूँ कि इस कक्षा में ऐसे बच्चों की संख्या क़रीब 35 प्रतिशत है, जो कहीं से नक़ल करके लिख तो लेते हैं लेकिन उसे पढ़ नहीं पाते हैं। और जब उन्हें ख़ुद की समझ के आधार पर लिखने के लिए कहा जाता है, तब फिर उन्होंने क्या लिखा है, न तो वो पढ़ पाते हैं और न ही शिक्षक उस लिखे हुए का मतलब समझ पाते हैं। लेकिन ताज्जुब की बात यह है कि पहले लेख से शिक्षक का सामना अमूमन परीक्षा की उत्तर पुस्तिका चेक करते समय होता है। सालभर शिक्षक उसी बच्चे के द्वारा लिखे हुए दूसरे लेख को कॉपी में चेक कर कई बार ‘very good’ लिखते रहते हैं।

अब यहाँ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण यह जानना है कि हमारे स्कूलों में ‘कॉपी वर्क’ की एक संस्कृति है। इसके तहत शिक्षकों से यह उम्मीद की जाती है कि उन्होंने जिस पाठ को पढ़ाया है इसके साक्ष्य के तौर पर यह सुनिश्चित होना चाहिए कि सभी बच्चों ने उस पाठ से जुड़े हुए सवाल और जवाबों को अपनी नोटबुक में लिख लिया हो और शिक्षक ने उसे देखकर उसपर अपने हस्ताक्षर कर दिए हों। बाद में यह नोटबुक अकसर प्रधानाध्यापक के कमरे में जाती है जहाँ प्रधानाध्यापक स्वयं या कई बार उनके द्वारा नामांकित कोई अन्य शिक्षक या यहाँ तक कि कई बार ऑफ़िस का कोई चतुर्थवर्गीय कर्मचारी भी इन नोटबुकों पर एक बार फिर से नज़र दौड़ाता है और आख़िरी पृष्ठ पर जहाँ लिखने का काम ख़त्म किया गया है वहाँ एक मुहर लगा दी जाती है यह इस बात का प्रमाण होता है कि इस नोटबुक को प्रधानाध्यापक ने देख लिया है। बच्चों के काम को देखने से ज़्यादा इस मुहर का यह अर्थ होता है कि प्रधानाध्यापक ने यह सुनिश्चित किया है कि शिक्षकों ने बच्चों को निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार नोटबुक में काम करवाया हुआ है।

अमूमन एक पाठ को पढ़ाने के बाद शिक्षक बच्चों को यह निर्देश देते हैं कि उस पाठ के जितने भी सवाल हैं बच्चे उसे करके ले आएँ। एक दिन निर्धारित होता है जिस दिन नोटबुक की चेकिंग की जाती है। उस पाठ में दिए हुए सवाल और जवाबों को कई बार ‘अच्छे शिक्षकों’ के द्वारा कक्षा में ही ब्लैकबोर्ड पर लिखवा दिया जाता है। कुछ शिक्षक टेक्स्ट बुक के अन्दर उत्तर को चिह्नित करवा देते हैं तो कुछ बोल-बोलकर लिखवा देते हैं। इस तरह ‘कॉपी’ का काम पूरा होता है। बच्चे ‘कॉपी वर्क’ शब्द में छिपे अन्तर्निहित भाव को यथार्थ रूप में लेते हैं। यानी उन्होंने अपनी नोटबुक में जो लिखा है, वह असली मायने में ‘कॉपी वर्क’ होता है।

जिन बच्चों को मैं यहाँ समूह-2 में रख रहा हूँ वे बच्चे ‘कॉपी वर्क’ आसानी से कर पाते हैं। लेकिन उन्होंने क्या लिखा है इसे वे पढ़ नहीं पाते हैं। साल के अन्त में परीक्षा में समूह-2 के बच्चे जिन्होंने पूरे साल कॉपी वर्क किया है उनके लिए परीक्षा कक्ष में ‘कॉपी वर्क’ की मनाही हो जाती है। सालभर ‘कॉपी वर्क’ की संस्कृति को बढ़ावा देने वाले शिक्षक परीक्षा के दिनों में ‘कॉपी वर्क’ के ख़िलाफ़ होते हैं। और वह किस कदर इसके ख़िलाफ़ होते हैं इसके लिए शिक्षकों के बीच प्रयोग किए जाने वाले कुछ लफ़्ज़ों को हम देखते हैं।

मेरे क्लास में तो कोई हिल भी नहीं सकता है...

क्या मजाल कि कोई बच्चा अपना सिर हिला ले...

अरे हम तो कुछ भी नहीं, फलाने टीचर के डर से तो कई बच्चों का स्कूल आना छूट ही जाता था...

आज इतने सारे फर्रे मैंने पकड़े हैं...

परीक्षा के दिनों में आमतौर पर इस तरह की बात आपको सुनने को मिल सकती है। ख़ैर, इसका बच्चों के परीक्षा में सफल होने या नहीं होने से क्या रिश्ता है?

यहाँ हम समूह-2 के उन बच्चों की बात कर रहे हैं जिन्होंने सालभर सफलतापूर्वक 'कॉपी वर्क' किया और जिनको सफलतापूर्वक परीक्षा कक्ष में 'कॉपी वर्क' करने से रोक दिया गया। वे परीक्षा में असफल हो जाते हैं। यह वे बच्चे हैं जो कहीं से नक़ल करके 'कॉपी वर्क' कर लेते हैं लेकिन इन्होंने क्या लिखा है वे पढ़ नहीं पाते हैं। नहीं पढ़ पाने के कारण और लिखे हुए को समझ नहीं पाने के कारण वे उसे याद भी नहीं कर पाते हैं। परीक्षा के दिनों में वे कोशिश बहुत करते हैं लेकिन अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद वे असफल हो जाते हैं।

हालाँकि असफलता की पूरी ज़िम्मेदारी इन्हीं बच्चों के सिर मढ़ दी जाती है। लेकिन अगर हम ग़ौर करें तो हमें स्कूल की संस्कृति में एक अन्तर्निहित विरोधाभास देखने को मिलेगा। 'कॉपी वर्क' की संस्कृति के कारण कभी यह जानने की कोशिश नहीं की जाती है कि यह बच्चा जो कॉपी का काम पूरा करके लाया है क्या अपनी ही लिखी हुई बातों को वह पढ़ पाता है और अगर पढ़ पाता है तो क्या वह समझ पाता है? शिक्षकों के ऊपर भी दोष नहीं मढ़ा जा सकता है। मैं यहाँ स्कूल के अन्दर पढ़ने-लिखने की संस्कृति की बात कर रहा हूँ। जिस प्रकार शिक्षक पाठ्यक्रम में बँधे होते हैं उन्हें निर्धारित तारीख़ को एक पाठ ख़त्म कर दूसरे पाठ पर जाना होता है। शायद उनके पास इतना वक़्त नहीं होता है कि वे इन पहलुओं को देख पाएँ।

ऐसा नहीं है कि सिर्फ़ समस्या को ही पहचाना गया है, इस कार्य के दौरान उम्मीद की कुछ किरणें भी नज़र आई हैं। मैंने ग़ौर किया है कि शुरुआत में बच्चे उन विषयों पर आसानी से लिख पाते हैं जहाँ किसी घटना का वर्णन करना होता है। इससे थोड़ी-सी ज़्यादा कठिनाई का सामना उन्हें करना होता है जब उन्हें अपने साथ बीती हुई किसी घटना के बारे में अपना अनुभव लिखना होता है। कठिनाई का स्तर तब बहुत हो जाता है जब किसी ऐसे मुद्दे पर उनसे लिखने के लिए कहा जाता है जिसके सम्बन्ध में उनका कोई व्यक्तिगत अनुभव नहीं है, बल्कि उन्होंने उसके बारे में किताब में पढ़ा है और शिक्षक से सुना है। मेरे ख़्याल से जब हम बच्चों को लिखकर अभिव्यक्त करना सिखा रहे हों तो हम इस क्रम को ध्यान में रख सकते हैं। इसपर विस्तार से चर्चा किसी और लेख में करेंगे।

उसी सवाल पर एक बार फिर से लौटते हैं जो हमने शुरू में उठाया था। 9वीं कक्षा में बड़ी संख्या में बच्चे अनुत्तीर्ण हो जाते हैं। आमतौर पर शिक्षक यह मानते हैं कि इसकी एक मुख्य वजह है कि बच्चे लिख नहीं पाते हैं। इस लेख में हमने देखा कि किस प्रकार स्कूल में पढ़ने-लिखने की संस्कृति के अन्दर ही एक अन्तर्निहित विरोधाभास है जहाँ हम बच्चों से परीक्षा के दौरान लिखने की उम्मीद करते हैं। लेकिन वे लिखें कैसे, इसको लेकर कोई ख़ास काम नहीं किया जाता है और इसकी एक मुख्य वजह 'कॉपी वर्क' की संस्कृति है। हमें इस संस्कृति को समझना होगा और इसमें व्यापक परिवर्तन लाना होगा। इसका विकल्प यह नहीं है कि बच्चे नोटबुक में काम नहीं करें। इसमें सिर्फ़ इतना परिवर्तन लाना होगा कि नोटबुक में बच्चे जो काम कर रहे हैं वह उनकी अभिव्यक्ति की जगह बने, जहाँ वे किसी प्रश्न के बारे में स्वतंत्र रूप से क्या सोचते हैं उसको लिखें। बच्चों में इस काम को बढ़ावा देने के लिए शिक्षकों को उनके द्वारा लिखे हुए लेखों को पढ़ना होता है और इस काम में वक़्त लगता है। स्कूल के अन्दर की हमारी पाठ्यचर्या में ऐसे सुधार की ज़रूरत है जो शिक्षकों को वक़्त दे कि वे हर बच्चे को स्वतंत्र लेखन के लिए प्रोत्साहित कर सकें और उचित सुझाव दे सकें।

मुरारी झा पिछले एक दशक से शिक्षा के मसलों पर अध्ययन एवं लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। वर्तमान में दिल्ली के शासकीय विद्यालय में बतौर सामाजिक विज्ञान शिक्षक कार्यरत हैं।

सम्पर्क : murarijha1984@gmail.com

हर घर एक स्कूल, हर अभिभावक एक शिक्षक

फ़ैयाज़ अहमद और शैलेन्द्र शर्मा

कोविड-19 की आपदा से बनी लॉकडाउन की परिस्थितियों से देश में स्कूल बन्दी के चलते बच्चों की पढ़ाई-लिखाई ठहर-सी गई है। घरों की चारदीवारी में सिमटे बच्चों तक शिक्षा की पहुँच बनाने के लिए सरकारें और स्वयंसेवी संस्थाएँ मिलकर कई वैकल्पिक तौर-तरीक़े आजमा रही हैं। यह आलेख दिल्ली सरकार द्वारा चलाए जा रहे मिशन बुनियाद कार्यक्रम के ज़रिए किए जा रहे ऐसे ही प्रयासों की बानगी प्रस्तुत करता है। सं.

सन्दर्भ

आजकल पूरी दुनिया एक आपदा से जूझ रही है। जब मार्च महीने में लॉकडाउन घोषित किया गया तो लोग घरों में क़ैद होकर रह गए। स्कूल-दफ़्तर सब बन्द थे, सड़कें ख़ाली थीं, सिर्फ़ स्वास्थ्य व ज़रूरी सेवाओं को इज़ाज़त थी। स्कूल बन्दी से बच्चों की पढ़ाई-लिखाई पर सीधा असर पड़ने की अशंका थी, इसलिए सरकारी और ग़ैर-सरकारी संस्थाओं ने अपने-अपने ढंग से बच्चों को शैक्षिक गतिविधियों से जोड़ने के लिए तुरन्त प्रयास शुरू कर दिए थे। सोशल डिस्टेंसिंग के दौर में डिजिटल माध्यम ही बच्चों तक पहुँचने का एकमात्र विकल्प नज़र आया। वॉट्सएप के ज़रिए भी बच्चों तक पहुँचने की कोशिश होने लगी। लेकिन आधे से ज़्यादा अभिभावकों के पास या तो एंड्राइड फ़ोन नहीं थे या वो इंटरनेट से नहीं जुड़े थे। दिल्ली सरकार ने इन सभी सन्दर्भों को समझते हुए 'मिशन बुनियाद कार्यक्रम' को IVR (Interactive Voice Response) की मदद से अभिभावकों के द्वारा कक्षा 3 से 8 तक के बच्चों के लिए अप्रैल के दूसरे सप्ताह में शुरू किया जो अगले 50 दिनों तक लगातार एक-एक दिन के अन्तराल पर चलता रहा। आई वी आर के द्वारा बच्चों को रिकॉर्डेड गतिविधि भेजी जाती थी। यह सुविधा किसी भी तरह के फ़ोन पर हो सकती थी। इसके लिए एक दिए गए नम्बर पर मिस्ड कॉल करना होता था और उस मिस्ड कॉल के उपरान्त गतिविधि सुनाई देती थी, बच्चा चाहे तो अनेक बार मिस्ड कॉल दे सकता था और गतिविधि सुन सकता था। लेकिन चुनौती यह थी कि कैसी गतिविधियाँ बच्चों तक भेजी जाएँ? यह तो स्पष्ट था कि इन गतिविधियों का मक़सद पाठ्यक्रम पूरा करना नहीं था। लेकिन यह भी तय था कि हँसते-खेलते 'थोड़ी मस्ती और थोड़ी पढ़ाई' हो जाए। इन बातों को ध्यान में रखते हुए दिल्ली सरकार के 'मिशन बुनियाद कार्यक्रम' के अन्तर्गत शिक्षकों के साथ मिलकर गतिविधियों का संग्रह तैयार किया। इस पूरी प्रक्रिया में 'प्रथम' संस्था और दिल्ली सरकार के चयनित शिक्षकों की एक टीम बनाई गई। यह टीम बच्चों की दिलचस्पी और कोरोना महामारी के संकट की घड़ी में बच्चों को कैसे गतिविधियों से जोड़े रखा जाए, इसको ध्यान में रखते हुए गतिविधियों का निर्माण करती थी। और फिर दो सदस्यीय सम्पादक मण्डल के पास इन्हें अनुमोदन के लिए भेजा जाता था। इसके बाद उसे एक ऐसी विशेषज्ञ के पास जो रंगमंच से जुड़ी और दास्तागो भी हैं, रिकॉर्डिंग के लिए भेजा जाता था। रिकॉर्डिंग के बाद पुनः इसकी गुणवत्ता

परखी जाती थी और फिर हमारी टेक्निकल टीम के पास इन्हें देखकर आगे बच्चों तक पहुँचाने के लिए उचित कार्यवाही करने हेतु भेज दिया जाता था। ये गतिविधियाँ किसी पाठ्यक्रम पर आधारित नहीं थीं बल्कि पाठ्यक्रम मुक्त थीं। लेकिन इस बात का ज़रूर ख़्याल रखा गया था कि पढ़ने-लिखने के जो बुनियादी कौशल हैं, जैसे– सुनना, बोलना, पढ़ना, समझना, और लिखना, इन्हें इन गतिविधियों में शामिल रखा जाए। साथ-ही-साथ, लेखन की अलग-अलग विधाओं जैसे कि पत्र लेखन, कविता, कहानी, निबन्ध आदि लिखने के लिए भी बच्चों को प्रेरित किया जाता था। ये गतिविधियाँ एक दिन के अन्तराल पर दिल्ली सरकार के स्कूलों में पढ़ रहे लगभग 5.18 लाख बच्चों के अभिभावकों को लगातार भेजी जाती थीं।

> हमें इस बात का एहसास था कि अगर पाठ्यपुस्तक से गतिविधियाँ ली गईं या उनके पाठ्यक्रम को हल करने पर ज़ोर दिया गया, तो बच्चे अभी जिस मानसिक स्थिति में हैं वे इन गतिविधियों को नहीं करेंगे बल्कि इनसे और दूर होंगे।

चयन के कुछ ख़ास बिन्दु

इस पूरी प्रक्रिया को देखने के दो नज़रिए हैं– एक, बच्चों का और दूसरा, अभिभावकों का। आज बच्चों का अनुभव-संसार, पहले जैसा नहीं है। सूचना सम्पन्नता बढ़ गई है। ऐसे में उनके साथ कौन-सी गतिविधियाँ की जाएँ, यह एक चुनौतीपूर्ण मामला था। बच्चों की रुचि और उनके पढ़ने व गणित करने के स्तर को ध्यान में रखे बिना किसी भी गतिविधि की संकल्पना नहीं की जा सकती। साथ ही, यह भी ध्यान रखना था कि बच्चों का दिमाग़ विवेक व तार्किकता की तरफ़ जाए ताकि उनकी कल्पनाशीलता और तर्कशक्ति बढ़े। सोचने, समझने की सलाहियत के अलावा उनमें निर्णय लेने की क्षमता भी विकसित हो। वे ऐसे समाज के निर्माण का हिस्सा बनें जिसमें सबको बोलने, खाने-पीने, और रहने की आज़ादी हो। यह काम मुश्किल तो ज़रूर था, पर नामुमकिन नहीं।

हम सभी जानते हैं कि बच्चों में जानने-समझने की स्वाभाविक भूख होती है, इसलिए गम्भीर-से-गम्भीर विषय को भी हमने दिलचस्प अन्दाज़ में बच्चों के सामने रखने की कोशिश की। हमें इस बात का एहसास था कि अगर पाठ्यपुस्तक से गतिविधियाँ ली गईं या उनके पाठ्यक्रम को हल करने पर ज़ोर दिया गया, तो बच्चे अभी जिस मानसिक स्थिति में हैं वे इन गतिविधियों को नहीं करेंगे बल्कि इनसे और दूर होंगे। उनके स्कूल बन्द हैं, उनका आना जाना, बाहर निकलना, खेलना कूदना, दोस्तों के साथ घूमना, सब बन्द है। ऐसी स्थिति में यदि गम्भीर विषयों को गतिविधियों के माध्यम से समझने के लिए दिया गया, तो बच्चे उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे। हमने जिन गतिविधियों का चयन किया, उनके कुछ उदाहरण और विवरण आगे दिए गए हैं :

गतिविधि एक : कक्षा 6 से 8 तक के बच्चों के लिए

“नमस्कार, आजकल कुछ अजीब-सी स्थिति है। सभी लोग अपने-अपने घरों में बन्द हैं। स्कूल बन्द हैं, सारी दुकानें बन्द हैं। कोई कहीं आ जा नहीं रहा है। बसें भी नहीं चल रही हैं और मेट्रो ट्रेन भी नहीं। ऐसी स्थिति में अगर एक बस अपनी सहेली मेट्रो ट्रेन का हाल-चाल पूछना चाहे तो वह पत्र में क्या-क्या लिखेगी? बच्चे को बोलिए कि वह बस की तरफ़ से एक पत्र मेट्रो ट्रेन को लिखे और घर के सभी सदस्यों को पढ़कर सुनाए।”

इस गतिविधि को अगर देखें तो थोड़ी रोचक लगती है। साथ ही, इसमें यह कोशिश भी की गई है कि लिखने की जो अलग-अलग विधाएँ हैं उनसे बच्चे का वास्ता न टूटे। पत्र लिखना उनसे परीक्षा में पूछा जाता है। अगर उन्हें कहा जाता कि अपने दादा-दादी को पत्र लिखो और उन्हें लॉकडाउन की स्थिति के बारे में, दिल्ली के बारे में बताओ, तो शायद वे नहीं करते। गतिविधि वही है, लेकिन पूछने का अन्दाज़ अलग है। हमने लेखन विधा का ही इस्तेमाल किया लेकिन उसका पात्र बस और मेट्रो ट्रेन को बनाया। अगर बच्चा बस और मेट्रो ट्रेन के बीच पत्र का आदान-प्रदान कर सकता है या ऐसे विषय पर लिख सकता है, तो वह किसी भी तरह के पत्र लिख सकता है ऐसा मेरा मानना है। और मुझे लगता है कि बहुतेरे इस बात से सहमत भी होंगे। किसी गम्भीर-से-गम्भीर विषय को भी अगर कहानी के रूप में पेश किया जाए तो उससे रोचकता बढ़ जाती है और पढ़ने-लिखने के लिए कोई भी प्रेरित हो जाता है।

गतिविधि दो : कक्षा 3 से 5 तक के बच्चों के लिए

कहानी के माध्यम से समझाना रोचक तो होता ही है, आसान भी हो जाता है। बच्चों के लिए कहानी लिखना एक विशिष्ट प्रतिभा की माँग करता है। इस क़िस्म के रचना-कर्म में अनुभव, कल्पना-शक्ति, भाषा-ज्ञान, साहित्य-ज्ञान, तकनीक, समाज-बोध सबकी ज़रूरत पड़ती है। इसको ध्यान में रखते हुए हमने ऐसी गतिविधियों को शामिल किया जिनसे बच्चों की कल्पनाशक्ति बढ़े, जैसे :

"एक रात अंजू ने सपना देखा कि आम के पेड़ पर अंगूर उगे हुए हैं और सेब के पेड़ पर सन्तरे। नारियल के पेड़ पर नाशपातियाँ लगी हुई हैं। और तो और अंगूर की बेल में बड़े-बड़े नारियल लटके हुए हैं। सारे पशु-पक्षी बड़े-बड़े घरों में रह रहे हैं, जबकि लोग...। अंजू अभी तक इतना ही सपना देख पाई थी कि माँ ने उसे नींद से जगा दिया। अब बच्चे से पूछिए कि अगर अंजू नींद से नहीं जागती तो वह सपने में और क्या-क्या देखती? ये मज़ेदार सपना बच्चा पहले सोचे, फिर लिखे और घर के सभी सदस्यों को पढ़कर सुनाए।"

बच्चों और अभिभावकों के फ़ीडबैक से साफ़ पता चलता है कि काफ़ी रोचक कहानियाँ लिखीं गईं। ये तो बात रही कि हमने बच्चों से जुड़ने का कौन-सा माध्यम या कौन-सी विधा को चुना।

एक और महत्त्वपूर्ण बात हुई, वह यह कि अभिभावकों को हमेशा लगता था कि वे बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के साथ किस प्रकार जुड़ें, उनके पास समय नहीं है, और पाठ्यक्रम

> कहानी के माध्यम से समझाना रोचक तो होता ही है, आसान भी हो जाता है। बच्चों के लिए कहानी लिखना एक विशिष्ट प्रतिभा की माँग करता है। इस क़िस्म के रचना-कर्म में अनुभव, कल्पना-शक्ति, भाषा-ज्ञान, साहित्य-ज्ञान, तकनीक, समाज-बोध सबकी ज़रूरत पड़ती है।

की जानकारी भी नहीं है। साथ ही बहुत सारे अभिभावक तो ख़ुद ही कभी स्कूल नहीं गए और बहुत सारे बच्चे तो ऐसे भी हैं जो फ़र्स्ट जनरेशन लर्नर हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों को स्कूल के सिवाय घर में किसी तरह का सहयोग नहीं मिल पाता था और वे समझते थे कि पढ़ाई-लिखाई सिर्फ़ स्कूलों में ही हो सकती है, घरों में नहीं। हमने अपनी गतिविधियों के माध्यम से अभिभावकों को जोड़ने की कोशिश की। वे अकसर कहते हैं कि उनके पास तो बहुत सारे काम होते हैं, ऐसे में बच्चों की मदद करना, उनके साथ गतिविधि करना किसी बोझ से कम नहीं है।

उनकी इस शिकायत को हमने ध्यान में रखा था। साथ ही, हमें इस बात का भी ध्यान रखना था कि घर के बड़े-बुज़ुर्गों को भी एक तरह के रिलेक्सेशन की ज़रूरत है। वे भी घरों में क़ैद होकर अजीब-सी मानसिक स्थिति से गुज़र रहे हैं, इसलिए अगर उनको भी बच्चों के साथ जोड़ दिया जाए तो एक छोटी-सी गतिविधि से बच्चों के साथ-साथ उनके अभिभावकों और उनके घर के दूसरे सदस्यों

> जब हम बच्चों को अपने बुज़ुर्गों से यह पूछने को कहते हैं कि वे अपने बचपन में कौन–से खेल खेलते थे, किन बातों पर अपने भाई–बहनों से नोक झोंक करते थे तो इससे पीढ़ियों के बीच संवाद चालू होते हैं। बड़ों को भी एक लम्हे के लिए अपने बचपन में झाँकने का मौक़ा मिलता है।

को भी इससे जुड़ने या कुछ अलग करने का मौक़ा मिल जाएगा। अब आपके सामने एक और उदाहरण रखता हूँ :

गतिविधि तीन : कक्षा 3 से 5 तक के बच्चों के लिए

"आज की गतिविधि के बारे में बात करते हैं। घर में बैठे-बैठे अन्दाज़ा लगाने का खेल खेलते हैं। अपने बच्चों से पूछिए कि घर में अलग-अलग कार्यों में, जैसे– नहाने में, कपड़े और बर्तन धोने में, आज लगभग कितना पानी इस्तेमाल हुआ? मान लीजिए कि एक बाल्टी में 15 लीटर पानी आता है, तो बच्चों से पूछिए कि नहाने, कपड़े और बर्तन धोने में अलग-अलग कितने लीटर पानी ख़र्च हुआ होगा? बच्चों से एक तालिका बनाकर हिसाब लगाने के लिए कहिए।"

इस गतिविधि का फ़ायदा यह हुआ कि बच्चों के साथ-साथ उनके अभिभावक भी कहने लगे कि हम तो बहुत पानी बर्बाद करते हैं। हमें तो इसका अन्दाज़ा ही नहीं था कि दिनभर में हम 500 लीटर या हज़ार लीटर पानी कैसे ख़र्च कर देते हैं! आगे से हमें यह कोशिश करनी होगी कि पानी की कम-से-कम बर्बादी हो।

आजकल एक घर में रहते हुए भी अकसर एक दूसरे से संवाद नहीं हो पाता। इस बार हमें बड़ों और बच्चों के बीच संवाद स्थापित करने का मौक़ा मिला। जब हम बच्चों को अपने बुज़ुर्गों से यह पूछने को कहते हैं कि वे अपने बचपन में कौन-से खेल खेलते थे, किन बातों पर अपने भाई-बहनों से नोक झोंक करते थे तो इससे पीढ़ियों के बीच संवाद चालू होते हैं। बड़ों को भी एक लम्हे के लिए अपने बचपन में झाँकने का मौक़ा मिलता है। अपने बचपन को वर्तमान से जोड़ते हुए उन्हें एहसास होता है कि सीखना एक सतत प्रक्रिया है। पहले कुछ सीखा था अपने ज़माने से, अपने बुज़ुर्गों से, लेकिन आज अपने बच्चों से और आज के हालात से सीख रहे हैं। शायद इसी को 'लाइफ़ लॉन्ग लर्निंग' भी कह सकते हैं।

गतिविधि चार : कक्षा 3 से 5 तक के बच्चों के लिए

"आशी और अकुल बहन-भाई हैं और अच्छे दोस्त भी। अकसर किसी-न-किसी बात को लेकर दोनों में नोक झोंक चलती रहती है। आशी अगर कुर्सी पर बैठती है तो अकुल भी उसी कुर्सी पर बैठना चाहता है। अकुल कुछ भी खाता है तो आशी भी ज़िद करके वही चीज़ खाना चाहती है। लेकिन फिर भी वे एक दूसरे से बहुत प्यार करते हैं। बच्चों से कहिए कि वो दादा-दादी या नाना-नानी, चाचा-चाची आदि से पूछकर पता करें कि जब वे छोटे थे तब अपने भाई-बहन के साथ कैसी नोक झोंक किया करते थे?"

इस तरह की लगभग 25-25 गतिविधियाँ कक्षा 3 से 5 और कक्षा 6 से 8 तक के बच्चों

के लिए भेजी गईं, और यह सिलसिला लगभग डेढ़ महीने तक चला, जिसमें बच्चों के लिए हर दूसरे दिन गतिविधियाँ भेजी जाती थीं। बच्चों, अभिभावकों और शिक्षकों के फ़ीडबैक से यह तो स्पष्ट हो गया कि ये सारी गतिविधियाँ सिर्फ़ बच्चों को सतही तौर पर गतिविधियों में शामिल करने के लिए नहीं थीं, बल्कि उनके सीखने में भी ये गतिविधियाँ मदद कर रही थीं। फ़ीडबैक कई तरीक़ों से लिए गए हैं:

● असर (ASER) सेंटर ने एक सर्वे कंडक्ट किया था जिसमें 677 अभिभावकों से कुछ सवाल पूछे गए थे। उनमें से 63% अभिभावकों ने कहा कि जब से ये गतिविधियाँ शुरू हुईं, तभी से वे इससे जुड़े हुए हैं। 80% अभिभावकों का कहना था कि वे लगातार अपने बच्चों के साथ गतिविधियों में शामिल रहे हैं और उनके साथ मिलकर उन्होंने गतिविधियाँ की हैं। इस सर्वे से यह भी पता चला कि कक्षा 6 से 8 की तुलना में कक्षा 3 से 5 तक के बच्चे ज़्यादा उत्सुक दिखाई दिए और उन्होंने अपने-अपने अभिभावकों के साथ मिलकर गतिविधियाँ पूरी कीं। अभिभावकों से भी छोटे बच्चों को ज़्यादा सहयोग मिला। बच्चों ने ऐसी गतिविधियों में ज़्यादा मज़ा लिया जिनमें उनके परिवार और उनके घर वालों को शामिल किया गया था।

● दूसरा सर्वे– 'चिल्ड्रेन वेल-बीइंग एंड लर्निंग सर्वे'– दिल्ली सरकार के Delhi Commission for Protection of Child Rights (DCPCR) की तरफ़ से किया गया था। इस सर्वे का मुख्य बिन्दु है :

● ये गतिविधियाँ विशेषतौर पर दिल्ली सरकार के अन्तर्गत आने वाले सरकारी स्कूलों के लिए थीं, लेकिन दिल्ली नगर निगम (MCD) के स्कूलों के कक्षा 3 से 5 तक के बच्चों से भी जब इन गतिविधियों के बारे में पूछा गया तो लगभग 26% बच्चे गतिविधियों के बारे में अच्छे-से बता पा रहे थे कि कौन-कौन सी गतिविधियाँ थीं और क्या करना था।

● कुछ मेंटर टीचर बच्चों से लगातार सम्पर्क स्थापित किए हुए थे और उनसे कुछ दिनों के अन्तराल पर लगातार फ़ीडबैक लेते थे। इससे गतिविधियों में सुधार करने में आसानी होती थी।

● IVR तैयार करने वाली कोर टीम के सदस्य अलग-अलग शिक्षकों से बातचीत करके समय-समय पर फ़ीडबैक लेते थे और गतिविधियों में ज़रूरी बदलाव करते थे।

● इसके अलावा दिल्ली के उप मुख्यमंत्री भी हर सप्ताह अभिभावकों और बच्चों से सीधे बात करके फ़ीडबैक लेते थे और इन गतिविधियों में कैसे और सुधार किया जा सकता है, इस बाबत उनसे सुझाव भी माँगते थे।

फ़ैयाज़ अहमद ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से पीएचडी की है। इनकी साहित्य में रुचि है। पत्रिकाओं में कहानियाँ व लेख लिखते रहते हैं। तेरह वर्षों से ग़ैर-सरकारी संस्था 'प्रथम एजुकेशन फ़ाउण्डेशन' में कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : faiyaz@pratham.org

शैलेन्द्र शर्मा दिल्ली सरकार के शिक्षा निदेशक के प्रधान सलाहकार हैं। दिल्ली की शिक्षा व्यवस्था को बेहतर करने में इनकी भागीदारी रही है। आप मुम्बई के टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ सोशल साइंस के छात्र रहे हैं। वर्ष 2002 से 'प्रथम' संस्था में वरिष्ठ नेतृत्व दल के सदस्य हैं।

सम्पर्क : shailendra@pratham.org

बड़ों की दुनिया में बच्चे बनाम 'मेरे दोस्त का घर'

निशा नाग

ईरानी फ़िल्म *खानेह दोस्त कोजास्त* यानी 'मेरे दोस्त का घर' केवल अहमद का एक गाँव से दूसरे गाँव तक का सफ़र ही नहीं है, बल्कि बच्चों के प्रति वयस्कों या समाज के बड़े-बूढ़ों का रवैया, उनके विचार, बच्चों पर अधिकार भाव और पितृसत्तात्मक समाज में बच्चों की उस स्थिति को बताती है जो भविष्य में बच्चे को उसी बँधे-बँधाए साँचे में ढलने पर मजबूर कर देती है, जबकि मूल रूप से बच्चे मानवीय मूल्यों के साथ नि:स्वार्थ भाव से अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास रखते हैं। सं.

फ़िल्म समीक्षा— 'खानेह दोस्त कोजास्त'

निर्माण– 1987, अवधि– 87 मिनट

निर्देशक– अब्बास कियारोस्तमी (ईरान)

विश्वविद्यालय में सामने से हँसती खिलखिलाती छात्राओं का एक समूह चला आ रहा था। जिस चीज़ ने मेरा ध्यान आकर्षित किया वह एक छात्रा की टी-शर्ट पर लिखी हुई इबारत थी जो इस प्रकार थी : "I was born intellectual but education ruined me", इस पंक्ति ने सोचने पर मजबूर कर दिया, क्या सचमुच? इसी सन्दर्भ में मुझे एक पुस्तक याद आ रही है इंस्टीट्यूट ऑफ़ कल्चर एक्शन की *डेंज़र स्कूल* जो पाठशाला के अन्तर्विरोधों से परिचय कराती है। यह पुस्तक बताती है कि स्कूल किस तरह निजी स्वार्थ और प्रतियोगिता की भावना को बढ़ाते हैं साथ-ही-साथ ही ये स्कूल रौब और आदेशों का चुपचाप पालन करना सिखाते हैं। अगर ऐसा है तब बच्चों की दुनिया में बड़ों या उन संस्थाओं का क्या महत्त्व है जो उन्हें नियंत्रित करती हैं या अनुशासन सिखाने का दावा करती हैं और भविष्य का रास्ता दिखाती हैं। एक बांग्ला कहावत के अनुसार, 'बच्चा पैदा होता है, पर उसे मानुस बनाया जाता है', यानी बच्चे का शैशव और बचपन छोड़कर वयस्कों की दुनिया में शामिल होना समाज के ऊपर निर्भर है। पर उस वयस्क बनने या बनाने की प्रक्रिया में कहीं कुछ ऐसा है कि बच्चा अपने बचपन के सपने,

इच्छाओं, मनसूबों और दरियादिली से दूर हो जाता है। इस बात को अब्बास कियारोस्तमी की ईरानी फ़िल्म *खानेह दोस्त कोजास्त* यानी 'मेरे दोस्त का घर' (जिसका अँग्रेज़ी रूपान्तरण 'Where is the Friend's Home?' है) के द्वारा गहराई से समझा जा सकता है।

अब्बास कियारोस्तमी (1940-2016) जाने माने ईरानी फ़िल्म निदेशक, पटकथा लेखक, कवि, फ़ोटोग्राफ़र तथा फ़िल्म निर्माता रहे हैं। इन्होंने लगभग चालीस फ़िल्मों का निर्माण किया। और ईरानी सिनेमा को विश्व पटल पर महत्त्वपूर्ण पहचान दिलाई। लगभग 87 मिनट की 'मेरे दोस्त का घर' 1987 में बनी प्रसिद्ध फ़िल्म है। यह फ़िल्म 'कोकर त्रयी' यानी ईरान के कोकर प्रदेश (जो उत्तरी ईरान का एक छोटा-सा गाँव है) में फ़िल्माई गई तीन फ़िल्मों में से एक है। बाक़ी दो फ़िल्में– *And Life Goes On* (92) एवं *Through the Olive Trees* (94) भी मील का पत्थर हैं, पर फ़िलहाल चर्चा *'दोस्त का घर'* पर की जा रही है। यह भी एक इत्तफ़ाक़ है कि सत्यजित रे ने *अप्पू त्रयी* का निर्माण किया था और कियारोस्तमी ने कोकर त्रयी का। यह अनायास नहीं है कि सिनेमा जगत से सत्यजित रे के अवसान के बाद जापान के जाने माने सिनेमा निर्माता-निर्देशक ने उस खाली जगह की पूर्ति की सम्भावना अब्बास कियारोस्तमी द्वारा सम्भव बताई थी। अब्बास की सभी फ़िल्में यथार्थ और कथा के बीच एक महीन रेखा से जुड़ी हुई हैं। फ़िल्म 'दोस्त का घर' की कहानी ऊपरी तौर पर बहुत ही सीधी लगती है और बस इतनी भर है कि लगभग आठ वर्षीय अहमद (इस किरदार को बाबेक अहमद पूर ने निभाया है) ग़लती से अपने स्कूल के साथी की कॉपी अपने बैग में रखकर साथ ले आता है और वह उसे दोस्त को वापिस लौटाना चाहता है ताकि दोस्त उसपर अपना गृहकार्य कर सके और उसे स्कूल में प्रताड़ित न होना पड़े। वह यह जानता है कि उसके मित्र का घर कौन-से गाँव में है, पर ठीक से मित्र के घर का पता नहीं जानता। हालाँकि मित्र का गाँव उसके घर से दूर है पर फिर भी वह निश्चय करता है कि वह किसी भी हालत में दोस्त की कॉपी वापिस लौटाएगा ताकि दोस्त को अगले दिन पाठशाला में ज़लील न होना पड़े। अहमद अपने गाँव कोकर से पोस्तेह यानी मोहम्मद रज़ा के गाँव तक का सफ़र तय करता है। परन्तु इस नन्ही-सी यात्रा कथा में एक बच्चे की समस्त सम्भावनाएँ, इच्छाएँ, उसके भीतर दोस्त की चिन्ता तथा ज़िम्मेदारी का भाव निहित है। यह फ़िल्म केवल अहमद का एक गाँव से दूसरे गाँव तक का सफ़र ही नहीं है, बल्कि बच्चों के प्रति वयस्कों या समाज के बड़े-बूढ़ों का रवैया, उनके विचार, बच्चों पर अधिकार भाव और पितृसत्तात्मक समाज में बच्चों की उस स्थिति को बताती है जो भविष्य में बच्चे को उसी बँधे-बँधाए साँचे में ढलने पर मजबूर कर

देती है, जबकि मूल रूप से बच्चे मानवीय मूल्यों के साथ नि:स्वार्थ भाव से अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास रखते हैं। एक समाज बच्चों से क्या चाहता है?– यही कि वे बेहतर इंसान बनें, नैतिक मूल्यों को अपनाएँ, उनपर चलें, कर्तव्यों का पालन करें, एक दूसरे का ध्यान रखें अर्थात सह-अस्तित्व से ज़िन्दगी को जीएँ। लेकिन क्या बच्चों को गम्भीरता से लिया जाता है? फ़िल्म

में अहमद जब अपने दोस्त मोहम्मद रज़ा का घर ढूँढ़ने निकलता है तो रास्ते में वह जिससे भी दोस्त के घर और उसे ढूँढ़ने के विषय में बात करता है वही उसकी बात को गम्भीरता से नहीं लेता। किसी के लिए भी उस नोटबुक का कोई महत्त्व नहीं जिसे वह लौटाना चाहता है।

यहाँ तक कि स्कूल से वापिस लौटने पर जब वह यह पाता है कि मित्र की कॉपी उसके पास है और उसे लौटाना ज़रूरी है, तो वह आँगन में कपड़े धोती अपनी माँ के पास जाता है। माँ निरन्तर अपने कामों में मशग़ूल है। यहाँ हैण्डपम्प से पानी निकालती और तसले में साबुन लगाकर व तार पर कपड़े सुखाती माँ ठीक वही एहसास देती है जो भारतीय घरों की माँओं की स्थिति है। माँ को अहमद कई बार अपने मित्र की कॉपी लौटाने की बात कहता है। पहले तो माँ ध्यान ही नहीं देती और जब थोड़ा सुनती भी है तो बड़े ही बेपरवाह तरीक़े से कहती है, "कल दे देना"। पर अहमद अपनी ओर से माँ को पूरी तरह समझाना चाहता है कि कॉपी देना बहुत ज़रूरी है। वह दोनों कॉपियों को दिखाकर कहता है कि दोनों एक-सी हैं अत: उससे भूलवश कॉपी उसके बैग में साथ आ गई है। अगर उसने कॉपी नहीं दी तो मित्र गृहकार्य नहीं कर पाएगा और दोस्त को स्कूल में सज़ा मिलेगी, और हो सकता है उसे स्कूल से बाहर कर दिया जाए। माँ के लिए इस बात का कोई महत्त्व नहीं है। वह कहती है कि उसे लापरवाही की सज़ा मिलनी ही चाहिए। बच्चे की भूल को ग़लती समझा जाना हमारे समाज की एक बड़ी समस्या है। यहाँ कई प्रश्न एक साथ उठते हैं। पहला तो यह कि अगर मोहम्मद रज़ा अध्यापक से सच-सच बताए कि कॉपी भूलवश अहमद के साथ चली गई थी इसलिए वह गृहकार्य नहीं कर पाया तो क्या अध्यापक उसे मोहम्मद की ग़लती नहीं मानेगा? जो कि ग़लती है भी नहीं। क्या वह उसे क्षमा कर देगा? अध्यापक का रुख जिस तरह का है, उसे देखकर कहीं से भी नहीं लगता कि वह बच्चों के अन्तर्मन को समझने की किसी तरह से कोशिश करता है। बच्चों का उससे कोई संवाद नहीं है। लगभग सभी स्कूलों में अध्यापकों का यही हाल है।

स्कूलों में बच्चों को अनुशासित किया जाता है, उन्हें चुप रहने का उपदेश दिया जाता है, परन्तु किसी हद तक जाकर यह शासन नहीं बल्कि शोषण में तब्दील होता दिखाई देता है जहाँ बच्चे उन्मुक्त भाव से अपनी बात को, अपनी सच्चाई को अध्यापक के सामने नहीं रख पाते और बिना शरारत किए ही सज़ा के पात्र बनते रहते हैं। कक्षा में केवल अध्यापक ही बोलता है यहाँ कियारोस्तमी इसे और स्पष्ट करते हैं कि एकतरफ़ा संवाद बच्चों को विरासत में मिलता है। अगर वह अध्यापक से प्रतिप्रश्न करना चाहें तो इसके बदले में उन्हें मार और डाँट का शिकार होना पड़ता है। जबकि स्वस्थ विकास के लिए सम्प्रेषण की प्रक्रिया दोहरी होनी ज़रूरी है– कक्षा में भी और कक्षा से बाहर भी। न केवल स्कूल बल्कि घर में भी बच्चों की यही स्थिति है। उन्हें चुप रहने की ताक़ीद दी जाती है। अगर किसी हद तक बच्चों का बोलना बड़ों को अच्छा लगता है तो वहीं तक कि जब वह तोतली बोली में बड़ों के मनोरंजन का केन्द्र होता है, तब बार-बार उससे कोई बात बुलवाकर आनन्द लिया जाता है। लेकिन

जैसे ही बच्चा तर्क करता है या प्रतिप्रश्न करता है तो उसे डपटकर चुप करवा दिया जाता है, ठीक वैसे ही जैसे घर के कामकाज में फँसी हुई अहमद की माँ अहमद की कोई बात और तर्क नहीं सुनती। अहमद के बार-बार अनुरोध करने पर वह पूछती है, "दोस्त का घर कहाँ है?" तो अहमद उत्तर देता है, "पोश्तेह"। इसपर माँ कहती है, "पोश्तेह तो बहुत दूर है।" पर अहमद कहता है, "ऐसा भी दूर नहीं, रोज़ न जाने कितने बच्चे पोश्तेह से उसके गाँव स्कूल में पढ़ने आते हैं", पर माँ मानने को तैयार नहीं। अहमद के बार-बार अनुरोध करने का माँ पर कोई असर नहीं पड़ता, बल्कि वह केवल घर के कामों में मशग़ूल है और अहमद को कहती है, "कहना मानो, नहीं तो तुम्हारे पिता आकर तुम्हें देखेंगे। चुपचाप अपना स्कूल का काम करो। तुम्हें ब्रेड लेने भी जाना है।" अहमद की छोटी बहन, जो कपड़े के झूले में सो रही है, जब कुनमुनाने लगती है तो माँ अहमद को उसे देखने को कहती है और अहमद को घर के ऊपरी हिस्से में दूध लेने भेजती है। माँ के लिए इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि अहमद अपने दोस्त को लेकर कितना संजीदा है।

कुछ देर बाद अहमद संकल्प करके ब्रेड लेने के बहाने घर से बाहर निकलता है। वह कॉपी को अपने स्वेटर में छिपा लेता है। यही वह समाज है जो बच्चों के सच को सच न मानकर झूठ मानता है और बच्चों को भी झूठ बोलने के लिए मजबूर कर देता है, ठीक जैनेन्द्र की कहानी 'पाज़ेब' के आशुतोष की तरह जिसका कोई यक़ीन नहीं करता कि उसने अपनी बहन की पाज़ेब को देखा भी नहीं है और पिता के बार-बार पूछने पर उसकी सरल मानसिकता उलझने लगती है और वह झूठ बोलने लगता है। अहमद दोस्त के घर की खोज के दौरान जिन-जिन लोगों से मिलता है वह परम्परागत ईरान की ही नहीं बल्कि पूरे वैश्विक समाज की मानसिकता और बच्चों के प्रति उनकी मानसिकता का पता देता है।

फ़िल्म एक प्रतीक है। सोहराब सेपेहरी की एक कविता 'खानेहे दुस्त कोजास्त' से इस फ़िल्म का शीर्षक लिया गया है। फ़िल्म के भूगोल को समझने का महत्त्वपूर्ण ज़रिया है वह जैतून का पेड़ जो पहाड़ी के उत्तर में है (जिसका प्रतीक सेपेहरी की कविता में है)। वह अँग्रेज़ी के 'Z' आकार का टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता और जैतून के पेड़ों का झुरमुट, जिसके बाद मोहम्मद रज़ा नेमात्देह का गाँव है, मानो अहमद का ही प्रतीक है। वह इतने लोगों के होते हुए भी अकेला है और उसे टेढ़े-मेढ़े रास्तों से गुज़रकर ही अपनी राह बनानी है। फ़िल्मकार यहाँ स्थान, समय और ज्ञान को अपनी तरह से रचता है पर उसका केन्द्र वह बच्चा है जो अब्बास की फ़िल्मों का चेहरा बन गया था। अहमद की इस खोज में अनेक लोग

आते हैं पर सब अपनी-अपनी तरह से व्यस्त हैं। वह बहुत-से लोगों से पूछता है, पोश्तेह गाँव की पथरीली टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में भटकता है और जहाँ भी सम्भावना लगती है, वहीं अनेक दरवाज़ों पर जाकर दोस्त को आवाज़ देता है। एक जगह वह अपने स्कूल की वर्दी की पैंट सूखते देखता है तो पाता है कि वह घर उसके अपने स्कूल में ही छोटी कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे का है। उससे यह जानकर, कि मोहम्मद रज़ा अपने पिता के साथ कोकर गाँव गया है, अहमद एक बार वापिस लौटता है जहाँ उसे अपने दादाजी अपने वयोवृद्ध मित्र के साथ बैठे हुए मिलते हैं। वह अहमद से सिगरेट मँगाते हैं और अहमद वापिस लौटता है। उनका अपने वयोवृद्ध मित्र के साथ होने वाला संवाद बड़ों

की बच्चों के प्रति व्यवहार का प्रतिबिम्ब है। वे कहते हैं कि छोटे बच्चों को अनुशासित रखने के लिए उन्हें पीटा जाना ज़रूरी है। वे जब छोटे थे उन्हें रोज़ पीटा जाता था इसीलिए वे इतने अनुशासित रह पाए। मित्र कहता है कि अगर बच्चे ने कोई ग़लती न की हो तब? तब उसे पीटने का बहाना बनाकर पीटा जाना चाहिए। उनके लिए बच्चों का पीटा जाना वैसे ही सहज है जैसे साँस लेना। इस नारकीसिज़्म में यह वृद्ध व्यक्ति या कोई भी यह नहीं देखता कि अहमद स्वयं अपने अनुभव से ही दया-भाव, अनुशासन, करुणा, सहानुभूति और संवेदना का विस्तार कर रहा है। यही कारण है कि वह उस दोस्त की कॉपी लौटाने के लिए तत्पर है, जो उसके घर से दूर है और जिसके घर का पता उसके पास नहीं है। वह नहीं चाहता कि उसका दोस्त प्रताड़ित हो या मार खाए या उसे स्कूल से निकालकर बाहर कर दिया जाए। दोस्त की जो चिन्ता उसे है शायद वह उसके भविष्य में बनने वाले व्यक्तित्व का आईना है।

बच्चे के विकास की उपलब्धियों को सामाजिक स्थिति की उपज माना गया है। वाइगोत्स्की का निष्कर्ष है कि बच्चे के बढ़ने के साथ-साथ उसके प्रति समाज की अपेक्षाएँ और व्यवहार का तरीक़ा भी बदलते जाते हैं। विकास की सामाजिक स्थिति का अर्थ है सामाजिक सन्दर्भ और उस सन्दर्भ में बच्चे की प्रतिक्रियाएँ। लेकिन यहाँ हम यह भी देखते हैं कि अहमद आदान-प्रदान के जिस ढंग को अपनाता है वह उसकी अपनी समझ की देन है। वह माँ का कहना न मानकर मित्र की नोटबुक देने उसके गाँव की ओर चल पड़ता है। लेकिन क्या उसके इस व्यवहार को अवज्ञा माना जाए? क्या वह सज़ा पाने का हक़दार है? नहीं। इसीलिए अब्बास उसके देर साँझ गए घर लौटने पर माता-पिता की कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाते। पिता रेडियो के साथ व्यस्त हैं और माँ गृहकार्य में। माँ उसका खाना उसे देकर अन्य कार्यों में व्यस्त हो जाती है। वह चुपचाप घर में आता है और एक महत्त्वपूर्ण निर्णय लेता है। वह अपना गृहकार्य देर रात तक करता रहता है। और अगली सुबह स्कूल पहुँचकर मास्टरजी के मित्र की सीट पर पहुँचने से पहले ही उसकी नोटबुक उसकी डेस्क पर रख देता है। मास्टरजी भी नोटबुक पर सही का निशान लगाकर हस्ताक्षर कर देते हैं क्योंकि अहमद ने देर रात तक जागकर अपने साथ-साथ अपने मित्र का भी गृहकार्य कर दिया था। यह शिक्षा की उस यांत्रिकता की ओर भी इंगित करता है जहाँ शिक्षकों को केवल गृहकार्य या प्रोजेक्ट तैयार चाहिए, चाहे वह किसी ने भी किया हो या कहीं से भी बनवाया हुआ हो। दूसरे शिक्षक के रूप में बच्चों के अनुभव के साथ घनिष्ठता विकसित करने की ज़रूरत नहीं समझी जाती।

यह फ़िल्म बच्चों की अच्छाइयों में विश्वास रखना सिखाती है। बच्चों को सरलीकृत रूप में देखा जाता है न कि उनकी विशिष्टताओं को पहचाना जाता है। उन्हें वैसा ही देखा और परखा जाता है जैसा कि प्रौढ़ चाहते हैं, जबकि हर बच्चा स्वाभाविक रूप से विवेकशील और यथार्थवादी होता है। अकसर बच्चों की इच्छा का सम्मान नहीं किया जाता। यह सोचा जाता है कि वह वैसा ही करे जैसा उसके अभिभावक चाहते हैं। म्याल (Mayalla, Elementary Education, 1996) के अनुसार, बाल्यावस्था के बारे में प्रौढ़ों की समझ तय करती है कि बच्चे क्या हैं और उन्हें कैसा होना चाहिए। बच्चों का जीवन बाल्यावस्था की इसी समझ के माध्यम से जिया जाता है। प्रश्न निरंकुशता का नहीं है परन्तु बच्चे स्वविवेक भी रखते हैं। प्रस्तुत फ़िल्म हमसे यही कहती है।

डॉ. निशा नाग हिन्दी में एमफिल, पीएचडी हैं। विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में आपकी समीक्षाएँ, लेख व कहानियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय में वरिष्ठ प्रवक्ता हैं जहाँ वे पिछले 23 वर्षों से अध्यापन कर रही हैं।
सम्पर्क : nishanagpurohit@gmail.com

मोटरसाइकिल की डिक्की में कुछ किताबें हमेशा रखूँगा

कोरोना काल के दौर में मोहल्ला पुस्तकालय

रामेश्वर प्रसाद लोधी से हिमांशु द्वारा लिया गया साक्षात्कार

कोरोना महामारी के चलते समाज का हर तबक़ा अलग-अलग तरीक़े से प्रभावित हुआ है, लेकिन सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों पर इसकी चौतरफ़ा मार पड़ी है। सीमित संसाधनों या संसाधनों के अभाव में इनके सीखने-सिखाने पर लगभग प्रश्नचिह्न-सा लग गया। इस दौर में सरोकारों व नवाचारों के विविध चेहरे भी देखने को मिले। इनमें एक चेहरा सागर ज़िले के राहतगढ़ के पास कल्याणपुर कस्बे के शासकीय प्राथमिक शाला के रामेश्वर लोधी का रहा है, इन्होंने लॉकडाउन के दौर में भी अपनी लगन और मेहनत से साधनविहीन बच्चों के बीच सीखने-सिखाने का सिलसिला बनाए रखा। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के हिमांशु ने रामेश्वर लोधी से विस्तार से बात करते हुए इस पहल के तमाम पहलुओं को जानने की कोशिश की है। सं.

आपने शिक्षक बनना क्यों पसन्द किया? शिक्षक बनने की अपनी यात्रा के बारे में बताइए।

शिक्षक बनना मेरा सपना नहीं था। मैं कोई ठीक-ठाक सरकारी या प्रायवेट नौकरी करना चाहता था। मेरे मित्र संविदा शाला शिक्षक चयन परीक्षा दिया करते थे। उनको देखकर मैं भी ये परीक्षाएँ देने लगा। तब मैंने डीएड कोर्स नहीं किया था। संविदा शाला शिक्षक परीक्षा में मेरे अच्छे अंक आते थे, लेकिन डीएड पास अभ्यर्थियों को मिलने वाले 20 अंक मुझे न मिल पाने की वजह से मेरे अंक चयन के लिए कम पड़ जाते थे। अतः मैंने तय किया कि मैं डीएड पास करूँगा। अतिथि शिक्षक के रूप में काम करके मैंने डीएड करने के लिए पैसे जमा किए। आगे डीएड पास होने के बाद मेरा संविदा शाला शिक्षक परीक्षा में भी चयन हो गया। 2005 में मैंने संविदा शाला शिक्षक वर्ग-3 की परीक्षा पास कर ली थी। इस तरह मैं शासकीय प्राथमिक शिक्षक बन गया।

वर्ष 2009 में शासकीय माध्यमिक शाला, पचौहा; 2011 में शासकीय हाई स्कूल, मीरखेड़ी; और वर्ष 2012 में शासकीय माध्यमिक शाला, मुरली बासौदा में मैंने अतिथि शिक्षक के रूप में अध्यापन किया। इसी वर्ष संविदा शाला शिक्षक परीक्षा वर्ग-2 में भी मेरा चयन हो गया था। चूँकि मैं अपने माता-पिता की सेवा करने के लिए राहतगढ़ में ही रहना चाहता था, इसलिए मैंने राहतगढ़ शहर से 2 किलोमीटर दूर स्थित शासकीय प्राथमिक शाला, कल्याणपुर में वर्ष 2013 से संविदा शिक्षक वर्ग-3 के रूप में काम करना शुरू कर दिया।

आपको अपने बचपन के कोई शिक्षक याद हैं? और क्यों याद हैं?

मैं शासकीय प्राथमिक शाला, रजौली में पढ़ता था। पाँच कक्षाओं के लिए एक ही शिक्षक थे। उनका नाम नन्दराम अहिरवार है। हमारे स्कूल में कभी कोई अधिकारी निरीक्षण के लिए आया हो, यह मुझे याद नहीं। फिर भी वे सभी तरह के मौसम में ठीक सुबह साढ़े 10 बजे स्कूल पहुँच जाते थे। वे सभी कक्षाओं को एक साथ शाम 4 बजे तक पढ़ाते थे और उसके बाद खेल करवाते थे। उन्होंने बच्चों के साथ

मिलकर स्कूल में सब्ज़ियों की क्यारियाँ बनवाई थीं। इनकी देखरेख की ज़िम्मेदारी कक्षावार दी गई थी। वे स्कूल में एक ऐसी जगह बैठते थे जहाँ से चारों कक्षाओं पर वे एक साथ नज़र रख पाते थे। वे पारम्परिक तरीक़ों से नियमित पढ़ाते थे। वे कक्षा 3 से 5 को पाठ पढ़वाने के बाद बोल-बोल कर स्लेट के दोनों तरफ़ लिखवाते थे। उनका समय पालन और नियमित पढ़ाना मुझे आज भी याद है और प्रेरणा देता है।

क्या आपको बचपन में पुस्तक पढ़ना पसन्द था? किताबें कहाँ से लाते थे? और कौन-सी किताबें आपको पसन्द थीं?

मेरी माताजी को पढ़ना नहीं आता है। बचपन में मेरी दीदी अटक-अटक कर पढ़ती थीं। लेकिन ये दोनों रोज़ाना रात में खाना खाने के बाद मुझे गीता प्रेस, गोरखपुर की *रामायण* की किताब देखने और पढ़ने के लिए प्रेरित करती थीं। जब मुझे पढ़ना नहीं आता था, तब माँ और दीदी मुझे *रामायण* की पुस्तक के चित्रों से जुड़ी कहानियाँ सुनाया करती थीं। जब मैं थोड़ा-थोड़ा पढ़ना सीख गया तो मैं माँ को नियमित रूप से एक घण्टे *रामायण* पढ़कर सुनाया करता था। बाद में मैंने उन्हें कई धार्मिक पोथियाँ भी पढ़कर सुनाईं। मुझे किताबों में चित्रों को देखना और उनके बारे में सुनना अच्छा लगता था। अन्य सहपाठियों के घर पर इस तरह से पढ़ने के मौक़े नहीं बन पाए थे। इसीलिए वे सिर्फ़ स्कूल में पाठ्यपुस्तकें ही पढ़ा करते थे।

आप जिस स्कूल में पढ़ा रहे हैं, क्या उसमें पुस्तकालय है? क्या वह इस्तेमाल होता है? और क्या आपके साथी शिक्षक भी किताबों में रुचि लेते हैं?

साल 2013 में मेरी कल्याणपुर स्कूल में नियुक्ति हुई थी। तब स्कूल में पहले से एक अलमारी में पुस्तकें रखी थीं। लेकिन पुस्तकालय के साथ किस तरह काम करना है, यह समझ न होने की वजह से वह क्रियाशील नहीं था। बाद में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के इंगेजमेंट्स में शामिल होने से यह पता चला कि पुस्तकें बच्चों की पहुँच में होनी चाहिए ताकि वे उसे अपनी पसन्द के अनुसार पढ़ सकें। आगे इनको ध्यान में रखकर पुस्तकालय को सक्रिय किया गया। अब बच्चे ख़ुद पुस्तकें लेकर रजिस्टर में एंट्री करने लगे हैं। पुस्तकालय में शिक्षकों के लिए भी कुछ किताबें हैं, जिन्हें हमारी प्रधानाध्यापिका और मैं पढ़ते हैं।

शिक्षक बनने के बाद आपने कौन-कौन से नवाचार शुरू किए?

अतिथि शिक्षक के रूप में काम करते हुए मैंने अपनी शालाओं को समय से खोलना और पूरे समय संचालित कर समय पर बन्द करना शुरू किया था। मेरे आने के पहले ऐसा नहीं होता था। मैंने स्कूलों में प्रार्थना सभा की भी शुरुआत की। मैंने स्वयं कई प्रार्थनाएँ याद कीं और बच्चों को याद करवाईं। इन कामों को देखकर पालक और ग्रामीण मेरा सम्मान और सहयोग करने लगे थे। मुझे लगता है कि पढ़ाई के लिए सबसे पहले अच्छा माहौल बनाना ज़रूरी है। अतः शासकीय प्राथमिक शाला, कल्याणपुर में संविदा शाला शिक्षक के रूप में मैंने सबसे पहला काम कक्षाकक्ष को पोस्टरों और टीएलएम से समृद्ध करने का किया। कक्षाकक्ष को प्रिंट रिच बनाने के बाद मैंने शाला परिसर को हरा-भरा और रंगीन बनाने के लिए विविध प्रकार के पेड़-पौधे लगाना शुरू किए। मेरे साथ काम करने में बच्चों को भी मज़ा आने लगा। वे स्कूल खुलने के एक घण्टे पहले ही स्कूल पहुँच जाते और मेरे साथ काम में जुट जाते थे। स्कूल बन्द होने के आधे घण्टे बाद तक मैं बच्चों और पालकों के साथ काम और अनौपचारिक बातचीत करता रहता था। मैंने नवोदय विद्यालय प्रवेश परीक्षा के लिए बच्चों की तैयारी करवाने के लिए उन्हें स्कूल समय से पहले भी अतिरिक्त एक घण्टे पढ़ाना शुरू कर दिया था। सत्र 2019-20 में मेरे स्कूल के एक विद्यार्थी के नवोदय विद्यालय प्रवेश परीक्षा में सफल होने से मेरा सपना पूरा हुआ है और आत्मविश्वास भी बढ़ा है।

पिछले दो सालों से मैंने अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के सदस्यों की मदद से पक्षी दर्शन, गाँव का इतिहास और गाँधी थीम पर गतिविधियाँ की हैं। इसके तहत हमारे स्कूल में पक्षी थीम पर बाल शोध मेला आयोजित किया गया। गाँव के पास के गुर्जा दहार मेले में गाँधी प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। सागर के विवेकानन्द विश्वविद्यालय ने इन दोनों थीम पर काम करने के लिए स्कूल के बच्चों को लगातार दो साल अपने 'ज्ञानोत्सव' में पुरस्कृत किया है। गाँधी-150 थीम पर काम को देखकर राहतगढ़ के एसडीएम ने स्कूल को प्रोजेक्टर भेंट करने के लिए 16 हज़ार रुपए की राशि पिछले गणतंत्र दिवस कार्यक्रम में प्रदान की है।

आपके अनुसार कोरोना के कारण बच्चों पर सबसे बड़ा असर क्या हुआ?

इससे बच्चों की नियमित पढ़ाई बाधित हो गई है। इसकी वजह से कक्षा एक के बच्चे मोहल्ला कक्षाओं में नहीं आ पा रहे हैं। हालाँकि कक्षा दो के बच्चे इनमें आ रहे हैं, लेकिन उन्हें पर्याप्त समय नहीं मिल पा रहा है जिससे उनका सीखना धीमा हो गया है। मेरे स्कूल के कक्षा 1 से 5 के 33 प्रतिशत बच्चे नियमित नहीं आ पा रहे हैं, जिसकी वजह से वे पढ़ाई में पिछड़ रहे हैं।

कोरोना के कारण लॉकडाउन लगने पर पालकों को पहले ऐसा लगा जैसे ये गर्मी की छुट्टियाँ हैं। पालकों को बच्चों को नियमित रूप से घर पर पढ़ाने के सरकार द्वारा दिए गए निर्देश और उपाय भी बताए गए। लेकिन पालकों ने इसे गम्भीरता से नहीं लिया। जब जून माह में भी स्कूल नहीं खुले, तब पालकों ने इसके बारे में सवाल पूछना शुरू किया। हमने उन्हें मोबाइल, टीवी, और रेडियो पर आने वाली शैक्षिक सामग्री के बारे में भी बताया और उन्हें इनका इस्तेमाल करना भी सिखाया। लेकिन बच्चों को घर पर पढ़ाई में अभिभावकों का पर्याप्त सहयोग नहीं मिल पा रहा है। कुछ साक्षर अभिभावकों और बच्चों के बड़े भाई-बहनों ने बताया कि उन्हें पढ़ाने के तरीक़े नहीं आते हैं, जिसकी वजह से उन्हें पढ़ाने में असुविधा होती है।

बच्चों के घरों में पुस्तकालय शुरू करने का विचार आपको कैसे आया?

अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के इंगेजमेंट्स में शामिल होने से मेरी समझ बनी कि पुस्तकालय पर काम करने से एक साथ शिक्षा के कई उद्देश्यों पर काम किया जा सकता है। इसलिए मैंने शैक्षणिक सत्र 2019-20 में अपने स्कूल के पुस्तकालय के माध्यम से बच्चों के साथ काम करना शुरू किया। इसके लिए सबसे पहले कक्षाकक्ष में लोहे के पतले तारों पर किताबों को लटकाया गया। बच्चों की पहुँच में किताबें आने से वे कई किताबों को देखने लगे। जो पढ़ पाते थे, वे पढ़ते और जो नहीं पढ़ पाते, वे अनुमान लगाकर पढ़ने की कोशिश करते थे। साथ ही प्रत्येक शनिवार को बच्चों को उनकी पसन्द की किताब घर ले जाकर पढ़ने के लिए दी जाने लगी। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के एक सदस्य की तकनीकी मदद से रूम टू रीड संस्था की वेबसाइट पर स्कूल की तरफ़ से अपील डालकर 500 रुपए की किताबें अनुदान के रूप में प्राप्त की गईं। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन की ओर से स्कूल को 'झोला पुस्तकालय' भी मिला। इन किताबों के रंगीन चित्रों से बच्चे बहुत आकर्षित हुए। बच्चों ने अँग्रेज़ी की किताबों को भी चित्रों के माध्यम से अनुमान लगाकर पढ़ने की कोशिशें शुरू कर दीं। बच्चों ने पढ़ी गई किताबों के बारे में कुछ लिखना भी शुरू कर दिया था। कक्षा पाँचवीं के अन्तिम पेपर के पहले ही अचानक कोविड-19 की वजह से लॉकडाउन की घोषणा होने से स्कूल के पुस्तकालय की प्रक्रिया ठप्प हो गई।

लॉकडाउन बढ़ने की वजह से बच्चे मुझे फ़ोन कर किताबों की माँग करने लगे। लॉकडाउन में कुछ छूट मिलने पर मैंने उन्हें स्कूल की लाइब्रेरी से कुछ किताबें पढ़ने के लिए दीं। बच्चों ने ये किताबें जल्द ही पढ़ लीं और वे नई किताबों की माँग करने लगे। इस

दौरान अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के डिजिटल इंगेजमेंट्स में मैं नियमित रूप से जुड़ा रहा। साथ ही बच्चों को मोबाइल पर डिजिटल किताबें साझा करता रहा। लेकिन जिन बच्चों के पास मोबाइल नहीं थे वे इन किताबों को नहीं पढ़ पा रहे थे। मैंने लॉकडाउन में ही तय कर लिया था कि अनलॉक शुरू होते ही मैं गाँव में एक पुस्तकालय शुरू करूँगा, ताकि पुनः लॉकडाउन लगने पर भी बच्चे यहाँ से किताबें लेकर पढ़ सकें।

मोहल्ला पुस्तकालयों के शुरू होने की प्रक्रिया के बारे में बताइए?

जून माह में अनलॉक शुरू होने पर मैंने सबसे पहले कक्षा 5 के विद्यार्थी मोहित और उसके पिताजी से मोहल्ला पुस्तकालय के बारे में बात की। उन्हें मेरी योजना पसन्द आई। मैंने उन्हें पुस्तकालय शुरू करने के लिए 50 किताबें दीं। उनके घर के एक पुराने रैक में ये किताबें रख दी गईं। इस पहले मोहल्ला पुस्तकालय के बारे में बच्चों को बताया गया कि शाम को 5 से 6 के बीच में वे मास्क लगाकर इस पुस्तकालय में आकर अपनी किताबों को बदल सकते हैं और इस दौरान उन्हें एक मीटर की दूरी बनाए रखना ज़रूरी है। शुरू में बच्चे और पालक कोविड-19 से बचाव के उपायों को गम्भीरता से नहीं ले रहे थे, अतः उन्हें इनके बारे में बार-बार बताया गया। इस पुस्तकालय के खुलने से बच्चे नियमित रूप से किताबें पढ़ने लगे और रजिस्टर में इन्हें दर्ज करने लगे।

मोहल्ला पुस्तकालयों के संचालन में किस तरह की चुनौतियाँ आईं और इनका हल कैसे निकाला गया?

दो सप्ताह बाद मोहित अपने परिवार के साथ अपने रिश्तेदारों के घर चला गया। इस वजह से पुस्तकालय बन्द हो गया। बच्चों ने मुझे इस बारे में फ़ोन पर बताया। कई बच्चे मुझे उनके घर में पुस्तकालय खोलने के लिए कहने लगे। बच्चों की सुरक्षा और सुविधा को ध्यान में रखते हुए पुस्तकालय को पूर्व छात्र अंकित के माता-पिता से सहमति लेकर उनके घर में शुरू किया गया। इसी बीच मैंने बच्चों के लिए कुछ बाल पत्रिकाओं के पुराने अंक और अख़बारों के साथ आने वाली बाल पत्रिकाएँ एकत्रित कर ली थीं। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के सदस्यों से भी कुछ बाल पत्रिकाएँ प्राप्त हुई थीं। ये सभी किताबें इस मोहल्ला पुस्तकालय को दे दी गई थीं। इसका संचालन पूर्व छात्र नितिन और अंकित कर रहे हैं। लेकिन इस लाइब्रेरी के दूसरे मोहल्ले में होने की वजह से कई लड़कियाँ यहाँ नहीं आ पा रही थीं।

लड़कियों से इस बारे में बात करने पर उन्होंने उनके मोहल्ले में आयुष और सलोनी के घर पर पुस्तकालय शुरू करने का सुझाव दिया। आयुष के घर में किराना दुकान होने की वजह से लड़कियाँ भी यहाँ सहजता से आ-जा सकती थीं। अतः सलोनी और आयुष के माता-पिता से सहमति लेकर यहाँ एक और मोहल्ला पुस्तकालय शुरू किया गया। इसके लिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से एक झोला पुस्तकालय प्राप्त हुआ। इसमें 30 मज़ेदार रंग-बिरंगी किताबें थीं। बाद में इसमें कुछ बाल पत्रिकाओं जैसे– *प्लूटो, चकमक* और *साइकिल* के पुराने अंकों को भी शामिल किया गया। इस पुस्तकालय की ज़िम्मेदारी कक्षा 5 के विद्यार्थी आयुष और पूर्व छात्र कपिल (कक्षा 6) और पूर्व छात्रा सलोनी (कक्षा 8) ने सँभाली है।

कल्याणपुर की एक दूसरी बस्ती, जिसे कल्याणपुर माल कहा जाता है, में रहने वाले बच्चे अब भी किताबों से वंचित थे। दोनों बस्तियों के बीच में लगभग 1 किलोमीटर की दूरी होने की वजह से माता-पिता बच्चों को यहाँ अकेले जाने से मना करते थे। इसी बस्ती में रहने वाली स्कूल की पूर्व छात्राओं मोहनी (कक्षा 7) और भावना (कक्षा 10) की मदद से यहाँ भी एक मोहल्ला पुस्तकालय शुरू किया गया। किताबों की सुरक्षा और डिस्प्ले करने के लिए मेरी पत्नी ने पुरानी साड़ी से एक हैंगर तैयार करके इस पुस्तकालय को दिया है।

इन पुस्तकालयों का इस्तेमाल करने वाले बच्चों के सीखने में क्या बदलाव दिख रहे हैं?

मैंने अपने अवलोकन में पाया है कि कक्षा तीसरी की छात्रा अनु ध्यान से किताबों को देखती है और अनुमान लगाने की कोशिश करती है। कक्षा तीसरी की ही एक अन्य छात्रा महक बड़े चित्रों को देखने में रुचि ले रही है। लेकिन उसने अभी शब्दों को पहचानना शुरू नहीं किया है। कक्षा 2 का छात्र अनुज ख़ुद धीरे-धीरे किताब पढ़ता है और मौखिक रूप से उसे अपने वाक्यों में बता पाता है। कक्षा 5 की छात्रा निधि सभी बच्चों को कहानियाँ पढ़कर सुनाती है। कक्षा 5 की ही निशा के हार्ट का ऑपरेशन होने की वजह से वह कमज़ोर है और अकसर बीमार रहती है। वह अपनी माताजी के साथ पुस्तकालय आती है या अपने दोस्तों से किताबें मँगवाती है। वह किताबों को पढ़कर समझ पाती है। स्कूल का पूर्व छात्र कपिल (कक्षा 6) किताबों में विज्ञान से सम्बन्धित बातों को पढ़ने में रुचि लेता है। स्कूल का पूर्व छात्र नितिन किताबों को देखकर चित्र बनाता है। पूर्व छात्र कुश (कक्षा 6) सौरमण्डल से सम्बन्धित लेखों को पढ़ने में रुचि ले रहा है। एक पूर्व छात्रा श्रद्धा (कक्षा 6) लड़कियों के पात्रों वाली किताबों को पढ़ने में ज़्यादा रुचि लेती है। बीए पास कर चुके सोनू जानकारियों वाली किताबें पढ़ते हैं। वे प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे हैं। स्कूल की पूर्व छात्रा भावना की पढ़ाई आर्थिक कारणों से एक साल के लिए रुक गई थी। अब वह सभी तरह की किताबें पढ़ने में बहुत रुचि लेती है और ख़ुद कविताएँ भी लिखती है। वह एक मोहल्ला पुस्तकालय का संचालन भी कर रही है। उसने इस साल दसवीं कक्षा की प्रायवेट परीक्षा देने के लिए भी पढ़ाई शुरू कर दी है।

क्या सभी बच्चे मोहल्ला पुस्तकालय का लाभ ले पा रहे हैं?

कल्याणपुर प्राथमिक स्कूल में कुल 47 बच्चे हैं। गाँव में अब तक खुले 3 मोहल्ला पुस्तकालयों का इस्तेमाल 40 बच्चे कर पा रहे हैं। इनके अलावा स्कूल के पूर्व छात्र भी इनका इस्तेमाल कर रहे हैं। ये सभी बच्चे गाँव की दोनों बस्तियों कल्याणपुर माल और कल्याणपुर वीर के हैं। कल्याणपुर माल में एक और कल्याणपुर वीर में दो मोहल्ला पुस्तकालय हैं।

स्कूल से दो किलोमीटर दूर जंगल के पास रहने वाले एक ही परिवार के 5 बच्चे अभी भी किसी भी मोहल्ला पुस्तकालय का लाभ नहीं ले पा रहे हैं। उन तक किताबों को पहुँचाने के लिए उनके अभिभावकों को किताबें ले जाने और लाने के लिए कहा गया है। राहतगढ़ शहर में रहने वाले दो बच्चे भी अभी किसी मोहल्ला पुस्तकालय से नहीं जुड़ पाए हैं। अतः स्कूल आते-जाते समय उन्हें घर पर ही किताबें पहुँचाने की ज़िम्मेदारी मैंने स्वयं लेने का फ़ैसला किया है।

पुस्तकालयों के बारे में पालकों और ग्रामीणों का क्या कहना है? लोगों ने किस तरह का सहयोग किया है?

गाँव के वयस्कों ने अपने जीवन में पाठ्यपुस्तकें ही देखी थीं। झोला पुस्तकालय और रूम टू रीड की रंगीन किताबें देखकर वे हैरान होते हैं। इन किताबों में छपी कहावतों और कहानियों को देखकर भी वे हैरान होते हैं कि ये पुरानी कहानियाँ नए चित्रों के साथ अब रंगीन किताबों में आ गई हैं। कल्याणपुर माल के कई अभिभावक साक्षर नहीं हैं। मैंने ख़ुद उन्हें नई किताबों को खोलकर दिखाया और समझाया कि इन रोचक किताबों के ज़रिए बच्चों का पढ़ने में मन लगेगा। वे मेरी बातों से सहमत हुए। अंकित के माता-पिता ने जब देखा कि छोटे बच्चे बरसात में भीगते हुए किताबें लेकर आते हैं, तब उन्होंने बच्चों को किताबों को भीगने से बचाकर लाने की सलाह दी और कुछ उपाय बताए। मोहल्ला पुस्तकालयों को खोलने में भी कई अभिभावकों ने सहयोग किया। कई अभिभावकों ने इस पहल की सराहना भी की है।

राहतगढ़ में रहने वाले सहायक प्राध्यापक सुरेन्द्र कुमार यादव ने मोहल्ला पुस्तकालय में बच्चों की रुचि को देखते हुए हाल ही में मुझे 7 हज़ार रुपए की किताबें देने के लिए प्रकाशकों

और विक्रेताओं को ऑनलाइन पर्चेस आर्डर भेजे हैं। मैं इन किताबों का इस्तेमाल रोटेशन से मोहल्ला पुस्तकालयों में करूँगा। राहतगढ़ के बीएसी विनोद ताम्रकार ने 75 बाल पत्रिकाएँ पुस्तकालयों के लिए दी हैं। पत्रकार वीरेन्द्र सिंह ठाकुर और असलम रंगरेज़ ने भी अख़बारों की बाल पत्रिकाएँ दी हैं।

पुस्तकालय में पुस्तकों से जुड़ी गतिविधियों के बारे में बताइए?

बच्चे ख़ुद ही किताबों की देखभाल और रखरखाव करते हैं। किताबें लेते-देते समय ख़ुद ही एंट्री करते हैं। 19 बच्चे अपनी पढ़ी किताबों की सूची ख़ुद तैयार कर रहे हैं। 6 बच्चे किताबों से सम्बन्धित सूचनाओं जैसे– लेखक, चित्रकार, प्रकाशन, पेज, क्या अच्छा लगा, आदि को लिख रहे हैं। जिन बच्चों के पास मोबाइल उपलब्ध हैं, उनके साथ स्कूल का एक वॉट्सएप समूह बनाकर किताबें और अन्य सामग्रियाँ साझा की जा रही हैं। पर्यावरण अध्ययन विषय के विशेषज्ञ के रूप में राज्य शिक्षा केन्द्र से मिलने वाले अकादमिक कामों के चलते मैं पुस्तकालय की गतिविधियों में पर्याप्त समय नहीं दे पा रहा हूँ। फिर भी मेरी कोशिश है कि मैं कुछ बच्चों को गतिविधियों के लिए तैयार करूँ ताकि मेरी अनुपस्थिति में भी गतिविधियाँ चलती रहें।

बच्चों को पुस्तकालय में कैसा लगता है? वे स्वयं भी कुछ करते हैं? और क्या वे कुछ सुझाव भी देते हैं?

झोला पुस्तकालय में जो नई किताबें आती हैं, हर बच्चा उनमें से एक किताब हासिल करना चाहता है। छोटे बच्चे भी बड़ी किताबें ले जाते हैं। वे पढ़ नहीं पाते हैं, लेकिन वे चित्र देखकर अपनी बातों को रखते हैं। कई बच्चे किताबों से देखकर चित्र बनाते हैं और कई बच्चे किताबों की कहानियों की नक़ल लिखकर लाते हैं। वे अपनी पढ़ी गई किताबों पर चर्चा करने के लिए आतुर रहते हैं, लेकिन समय पर्याप्त न होने की वजह से अभी मैं सभी बच्चों को चर्चा का मौक़ा नहीं दे पाता हूँ। बच्चे किताब लेते या लौटाते समय ख़ुद ही रजिस्टर में एंट्री करते हैं। जिन बच्चों के घर आसपास हैं, वे आपस में भी किताबें पढ़कर बदल लेते हैं। इस दौरान वे एक दूसरे को कहानी की कथावस्तु और पात्रों के परिचय भी देते हैं। बच्चे चित्र बनाने के लिए काग़ज़ और रंगों की माँग करते रहते हैं। बच्चों ने पुस्तकालय के लिए स्थान के चयन और इनकी व्यवस्थाएँ बनाने के सम्बन्ध में कई व्यावहारिक एवं उपयोगी सुझाव दिए हैं। बच्चे किताबों को पढ़ने और चुनने के बारे में भी एक दूसरे को सुझाव देते हैं।

पुस्तकालय में आप क्या-क्या गतिविधियाँ कर रहे हैं? संक्षेप में उनके बारे में बताइए।

जब मैं पुस्तकालय जाता हूँ, तो बच्चों को एक कहानी पढ़कर सुनाता हूँ। इस दौरान मैं चित्रों पर चर्चा करता हूँ और बच्चों को अनुमान लगाने के मौक़े देता हूँ। कहानी में आए नए शब्दों को और उनकी अवधारणा को मैं उदाहरणों के साथ अपनी बात से स्पष्ट करता हूँ। लेखक, चित्रकार, प्रकाशक, आदि के बारे में चर्चा करता हूँ। कथ्य को मैं हावभाव के साथ पढ़ता हूँ। बच्चों को उनकी रुचि की किताब से चित्र बनाने या लिखने के काम देता हूँ। मैं ऐसी किताबों को चुनता हूँ जिनमें चित्र ज़्यादा होते हैं एवं जिनके विषय बच्चों की रुचि के होते हैं और जो 15 मिनट में पूरी हो सकें। कई बार मैं बच्चों द्वारा चुनी गई कहानी की पुस्तकों को भी पढ़कर सुनाता हूँ।

आप भौतिक दूरी बनाए रखने और कोरोना से सुरक्षा के लिए क्या उपाय करते हैं? जब कभी बहुत-से लोग और बच्चे एक साथ पुस्तकालय में आ जाते हैं, तब आप क्या करते हैं?

जिन बच्चों के घरों में मोहल्ला पुस्तकालय चल रहे हैं, उनके परिवार के सभी सदस्यों को बच्चों के बीच भौतिक दूरी बनाए रखने के निर्देश मैंने दिए हैं। साबुन की व्यवस्था भी की गई है, ताकि बच्चे आते और जाते समय हाथ धो सकें। बच्चों को मास्क लगाकर ही पुस्तकालय आने के लिए कहा गया है। मैं जब जाता हूँ, तो बच्चों के हाथ सेनेटाइज़र से भी साफ़ करवाता हूँ।

कुछ बच्चों ने मुझे वॉट्सएप पर फ़ोटो भेजे थे, जिनमें कई बच्चे बिना दूरी बनाए या मास्क लगाए किताबों का इस्तेमाल कर रहे थे। मैंने तुरन्त ही अभिभावकों को फ़ोन करके बच्चों से सुरक्षा और सावधानी के निर्देश पालन कराने के लिए कहा था। मैं इन निर्देशों को दोहराता भी रहता हूँ, लेकिन फिर भी मेरी अनुपस्थिति में कई बार पुस्तकालय में बहुत बच्चे जमा हो जाते हैं। परन्तु मेरी उपस्थिति में पुस्तकालय में एक मीटर की दूरी सभी लोगों के बीच बनी रहे, इसका मैं विशेष ध्यान रखता हूँ।

क्या ऐसे पुस्तकालय और जगह भी खोले जा सकते हैं? आगे क्या योजना है?

हाँ, ऐसे पुस्तकालय और जगह भी खोले जाने चाहिए। सुरक्षा और सावधानियों के निर्देशों का पालन करने के लिए बच्चों और अभिभावकों को निरन्तर निर्देश देना ज़रूरी है। मोहल्ला पुस्तकालयों से बच्चों में किताबों के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। बच्चों और शिक्षकों को भी पुस्तकालय और किताबों के साथ नई-नई गतिविधियाँ करने के अवसर मिलते हैं। *किताबों की किताब* पुस्तक में ऐसी कई गतिविधियाँ दी गई हैं जिन्हें करने में बच्चों को मज़ा आता है। इसे इंटरनेट से डाउनलोड भी किया जा सकता है।

कोरोना दौर के बाद परिस्थितियाँ सामान्य होने पर पुस्तकालयों में पुस्तकों को लेकर बच्चों के साथ कई तरह की गतिविधियाँ करने की योजना है, जैसे– बालसभा में बच्चे पुस्तकों से पढ़ी कहानियाँ सुनेंगे और सुनाएँगे। कहानियों को लेकर बच्चों से चित्र, शब्द कार्ड, शब्द पट्टी बनवाकर इसे प्रिंट रिच वातावरण और प्रोफ़ाइल के लिए इस्तेमाल किया जाएगा। बातचीत के ज़रिए बच्चों को किताबों की समीक्षा करना और विश्लेषण करना सिखाया जाएगा। गाँव की कहावतों, पहेलियों, लोककथाओं पर बच्चों से किताबें तैयार करवाई जाएँगी।

प्रत्येक शनिवार को स्कूल खुलने से एक घण्टे पहले बच्चों के साथ बैठकर सप्ताह में पढ़ी गई पुस्तकों की समीक्षा की जाएगी। इसके ज़रिए जो बच्चे किताबें पढ़ पा रहे हैं उनके बीच विचारों की साझेदारी बढ़ाने की योजना है। गाँव के मोहल्ला पुस्तकालयों को आगे सुचारु रूप से संचालित करने के लिए गाँव के वयस्कों, युवाओं और स्कूल की पूर्व छात्राओं को भी इनसे जोड़ने की योजना है। इसके लिए युवाओं की रुचि और आवश्यकताओं के अनुरूप किताबें जुटाने की भी योजना है। मैंने अब यह तय किया है कि मैं अपनी मोटरसाइकिल की डिक्की में भी बच्चों के लिए कुछ किताबें हमेशा रखूँगा। यह एक चलित पुस्तकालय होगा। जो बच्चे अब तक पुस्तकालय से नहीं जुड़ पाए हैं, उन तक भी मैं किताबों को पहुँचाऊँगा। मैं राहतगढ़ में अपने घर पर भी एक पुस्तकालय शुरू करूँगा, मेरे परिवार के सदस्य इसका संचालन करने के लिए तैयार हैं।

रामेश्वर प्रसाद लोधी पिछले 7 वर्षों से शासकीय प्राथमिक शिक्षक हैं। वर्तमान में मध्यप्रदेश के सागर ज़िले के राहतगढ़ ब्लॉक की शासकीय प्राथमिक शाला, कल्याणपुर में पदस्थ हैं।

सम्पर्क : rameshwarlodhi1983@gmail.com

हिमांशु खोले पिछले 6 वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में कार्यरत हैं। वर्तमान में मध्यप्रदेश के सागर ज़िले के खुरई ब्लॉक में काम कर रहे हैं।

सम्पर्क : himanshu.khole@azimpremjifoundation.org

महामारी के दौर में शिक्षा, स्कूल और बच्चे
सीखने-सिखाने की नई खिड़कियाँ खोलने के जतन

कोरोना के चलते स्कूल अनिश्चित काल के लिए बन्द हैं। बच्चे घरों तक सीमित हैं। सरकारें, अभिभावक और शिक्षा में काम करने वाली स्वयंसेवी संस्थाएँ उनकी पढ़ाई-लिखाई के लिए लगातार वैकल्पिक कोशिशों में जुटी हैं। पाठशाला के छठवें अंक का 'संवाद' बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के इन्हीं वैकल्पिक प्रयासों की पड़ताल के लिए आयोजित किया गया है। विषय है– महामारी के दौर में शिक्षा, स्कूल और बच्चे। इस संवाद में प्राथमिक शाला श्रीकोट गंगानाली श्रीनगर की शिक्षक रश्मि गौड़, प्राथमिक शाला धमतरी रायपुर के शिक्षक अनूप ध्रुव, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन स्कूल टोंक, राजस्थान के प्रधानाचार्य छोटेलाल, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन भोपाल मध्यप्रदेश के लीडर अभिषेक सिंह राठौड़, एकलव्य फ़ाउण्डेशन भोपाल से टुलटुल बिस्वास, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन पिथौरागढ़ से मुनीर और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, अभंगपुर, रायपुर से मयंक मिश्रा ने अपने अनुभव साझा किए। सं.

गुरबचन सिंह : हमारे संवाद का विषय है 'कोविड-19 के दौरान शिक्षा और बच्चे'।

आज की संवाद की प्रक्रिया में हमारे साथ कई साथी हैं। रश्मि गौड़, श्रीकोट गंगानाली श्रीनगर पौड़ी के प्राथमिक स्कूल में शिक्षिका हैं। दूसरे साथी अनूप ध्रुव, प्राथमिक शाला धमतरी, रायपुर में शिक्षक हैं। हमारे साथ अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन स्कूल, टोंक, राजस्थान के प्रधानाचार्य छोटेलालजी हैं। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, भोपाल, मध्यप्रदेश से अभिषेक सिंह राठौड़ भी इस संवाद में हैं। एकलव्य भोपाल से टुलटुल बिस्वास हैं। अगले साथी अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, पिथौरागढ़ से मुनीर हैं, और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, अभंगपुर, रायपुर से मयंक मिश्रा हैं।

रजनी : कोविड की वजह से मार्च 2020 से स्कूल बन्द हैं। हालाँकि बच्चों को शिक्षा से जोड़े रखने के लिए कई तरह के प्रयास हुए हैं और जारी भी हैं, पर स्कूल कब खुलेंगे, इस बारे में अभी भी निश्चित तौर पर कुछ कहा नहीं जा सकता। आज का संवाद इसी मुद्दे पर है, जिसके लिए ये प्रमुख प्रश्न चुने गए हैं :

(1) पिछले कुछ महीनों से स्कूल बन्द हैं, स्कूलों के बन्द होने को बच्चों ने कैसे लिया है?

(2) स्कूलों के बन्द होने का बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ा है, और उनके सामने किस तरह की चुनौतियाँ आई हैं? इसी तरह, शिक्षकों ने स्कूलों के बन्द होने को कैसे लिया है, उसका इनपर क्या प्रभाव पड़ा है, और उनके सामने किस तरह की चुनौतियाँ आई हैं?

(3) शिक्षा को जारी रखने के लिए विभिन्न संस्थाओं द्वारा कई प्रयास भी किए जा रहे हैं। किस तरह के प्रयास किए जा रहे हैं? इनसे क्या फ़ायदे हुए हैं? इनमें क्या दिक़्क़तें आई हैं?

(4) इस महामारी के दौरान शिक्षा को लेकर जो बहस शुरू हुई है उसमें शिक्षा को लेकर हमारी किस तरह की समझ बनी है? जैसे– ऑनलाइन शिक्षा के बारे में पहले भी बात होती थी, लेकिन अब ऑनलाइन शिक्षा हो रही है तो

लोगों को उसकी कमियाँ भी नज़र आ रही हैं। उसमें क्या किया जा सकता है, क्या नहीं?

(5) ऐसी कौन-सी बहस / समझ है जो इस दौरान बनी है जिसे हम शिक्षा में आगे भी इस्तेमाल कर सकते हैं? क्या कुछ ऐसी समझ भी है जो हमें बताती है कि फलाँ तरह की चीज़ें शिक्षा के लिए कुछ ख़ास उपयोगी साबित नहीं हो सकतीं? हम इन सभी प्रश्नों पर बातचीत करेंगे।

रश्मि : मार्च में जब विद्यालय बन्द हुए, उस समय बच्चों की वार्षिक परीक्षा शुरू होने वाली थी, ऐसे में स्कूल बन्द हो जाने पर हर बच्चे को बहुत ख़ुशी होती है और परीक्षाओं से भी अगर छुटकारा मिल जाए तो ये ख़ुशी दोहरी हो जाती है। इस समय छुट्टी को बच्चों ने ख़ुशी के रूप में लिया। लेकिन धीरे-धीरे बच्चों ने महसूस

फोटो : रश्मि गौड़

किया कि वो घर में क़ैद-से हो गए हैं। बच्चों की दिनचर्या और रोज़मर्रा की गतिविधियों में कुछ परिवर्तन आ गए। बच्चे अपने सहपाठियों और दोस्तों के साथ खेल नहीं पा रहे थे। ये स्थिति जब लम्बे समय तक रही तो बच्चे टीवी, कम्प्यूटर या मोबाइल देखने में ज़्यादा समय लगाने लगे। घर में लगातार रहने से 2-4 दिन की पढ़ाई पर कोई भी कुछ नहीं कहता, लेकिन जब लम्बा समय हो गया तो परिवार के बड़ों ने भी कहना शुरू कर दिया कि कब तक ख़ाली बैठे रहोगे, पढ़ो।

शुरुआती छुट्टियों में मैंने बच्चों को फ़ोन किया तब वे बहुत ख़ुश थे, लेकिन बाद में वे कहने लगे कि मैडम आप स्कूल कब बुलाओगे, हम घर पर डाँट खा रहे हैं। लगातार अपने अभिभावकों के साथ रहते हुए बच्चे उकताने लगे। मैंने बच्चों से बातचीत कर उनके घर का माहौल जानने की कोशिश की, यह भी पता किया कि उनके पास स्मार्टफ़ोन है या नहीं जिससे वीडियो कॉल के ज़रिए उनसे बातचीत की जा सके। यह भी बात हुई कि पढ़ाई जारी रखने के लिए आपको कुछ भेज दें तो कैसा लगेगा। बच्चों ने वीडियो कॉल किए और उन्हें बहुत अच्छा लगा कि हम कुछ जान पा रहे हैं। एक दिन मैं बच्चों से वीडियो कॉल पर बातचीत कर रही थी, उन्हें मेरी छोटी बच्ची और मेरे पीछे घर की कुछ चीज़ें दिखीं। बच्चे कहने लगे, मैडम, अपना पूरा घर दिखा दो। मैंने कहा कि मैं घर दिखाती हूँ, और मैंने उन्हें घर दिखाया। वो शायद ये जानना चाह रहे थे कि मैडम का घर कैसा है? मैंने भी कहा कि आप सब भी अपना घर दिखाइए। अगले दिन 'रसोईघर' पर एक कविता भेजी। मैंने उनसे कहा कि आपके घर में भी इस तरह की चीज़ें होंगी, आप देखो और उनके नाम अपनी कॉपी में लिख लो।

आगे हम बच्चों को वॉट्सएप पर काम देने लगे, कविताएँ सुनाने लगे। उन्हें बताया गया कि मास्क का उपयोग क्यों करना है और हम घर पर कपड़े और डोरी से भी मास्क बना सकते हैं। बाद में बच्चों ने वीडियो में दिखाया कि उन्होंने मम्मी के साथ मिलकर पूरे परिवार के लिए मास्क बना दिए हैं। जैसे-जैसे हमने देखा कि बच्चे प्रतिक्रिया दे रहे हैं, हमने धीरे-धीरे उनको शिक्षण से भी जोड़ना शुरू किया। अप्रैल और मई तक बच्चे थोड़ा पढ़ने के मूड में आ गए थे। हमने गूगल मीट पर भी कुछ बच्चों को जोड़ दिया था। लेकिन इसमें दिक़्क़त आ रही थी। 70% बच्चों के पास साधारण फ़ोन थे और उनसे हम सिर्फ़ बात कर पा रहे थे, वे वीडियो कॉल से जुड़ नहीं पा रहे थे। जिनको हम ऑनलाइन जोड़ भी पा रहे थे उनके साथ भी कक्षा अन्तःक्रिया वाली चीज़ें ठीक से नहीं हो पा रही थीं। कभी-कभी समय भी मुताबिक़

नहीं हो पाता था, क्योंकि अभिभावक रोज़ी-रोटी की तलाश में बाहर निकल जाते हैं और फ़ोन उनके पास ही रहता है। कक्षा शाम को ही हो सकती है जब वे घर आते हैं। फिर सारे टीचर उसी समय सम्पर्क करते हैं जब फ़ोन घर पर हो। यदि उस परिवार में 3-4 बच्चे हैं और सभी अलग कक्षाओं में हैं या अलग स्कूल में पढ़ते हैं तो भी फ़ोन बच्चों को उपलब्ध नहीं हो पाता। जिन बच्चों के पास स्मार्टफ़ोन नहीं था, हम उनसे केवल यह पूछ रहे थे कि वे क्या कर रहे हैं और कैसे हैं? हम उन्हें जैसे ये पाठ पढ़िए करने को नहीं कह सकते थे। तब हमने वर्कशीट बनाई। हमारे इलाक़े में कोविड का बहुत ज़्यादा प्रभाव नहीं रहा है। हम कुछ शिक्षक मिलकर बच्चों के घर पर गए और उनसे बातचीत की।

फोटो : रश्मि गौड़

बच्चों को भी अच्छा लगा, कई दिन बाद वे हमसे मुलाक़ात कर पाए थे। हमने पंचायत भवन में 5-7 बच्चों के साथ वर्कशीट पर काम किया। इसमें दो-तीन चीज़ें हुईं।

एक वर्कशीट हम लोगों ने ही बनाई, उसमें हमने हर पेज पर कुछ गतिविधियाँ व उन्हें करने की जगह बना रखी थी। यह एक बुकलेट जैसी थी। वर्कशीट में रंगीन चित्र थे और रुचिकर गतिविधियाँ थीं जो वे कर पाएँ। छोटे बच्चों के लिए रंग भरने व चित्र बनाने की गतिविधियाँ ज़्यादा थीं। जो बच्चे किताब ही नहीं ख़रीद पाए थे उनके लिए वर्कशीट पढ़ने का अच्छा ज़रिया साबित हुआ। हालाँकि कुछ बच्चों तक हम फिर भी नहीं पहुँच पाए, क्योंकि कुछ लोग वापस अपने गाँव चले गए थे। हमारे स्कूल के 6 बच्चे 25-30 किलोमीटर से ज़्यादा दूर अपने गाँव चले गए हैं, उनसे हमारी मुलाक़ात नहीं हो पाई। हम वॉट्सएप के ज़रिए उनको काम भेज रहे हैं, पर वो उन कामों को कब देख रहे हैं पता नहीं। ऑनलाइन शिक्षण को मैं बहुत अच्छा तरीक़ा नहीं मान रही हूँ क्योंकि इसमें बच्चों के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़ नहीं पा रहे हैं। सिर्फ़ एक तरफ़ा सम्प्रेषण हो रहा है। गूगल मीट बच्चों के लिए नया है, अतः उसे उपयोग करना नहीं जानते। कुछ बच्चे लिंक भी नहीं खोल पाते। यदि लिंक खोल भी लिया तो वो अपने-आप को म्यूट कर देते हैं और फिर अनम्यूट नहीं कर पाते। इसी तरह कभी बच्चे अपना वीडियो ऑन कर लेते हैं, तो कभी उन्हें कनेक्टिविटी में दिक़्क़त आती है। एक दिक़्क़त ये भी है कि हमें पहले ख़ुद बच्चों को ऑनलाइन पढ़ाना सीखना पड़ रहा है। हमने बच्चों को इस तरह से कभी नहीं पढ़ाया था। हमसे ही ग़लतियाँ हो रही हैं, हम ही ठीक से नहीं कर पा रहे हैं तो बच्चा कैसे करेगा। ऐसा भी हो रहा है कि किसी टीचर को पेडगोजी की समझ है, किन्तु उसे तकनीकी का ज्ञान नहीं है तो वो भी आज बच्चों के साथ कुछ कर नहीं पा रहा।

वर्कशीट बनाने में ये सोचना पड़ रहा है कि कई बच्चों को वर्कशीट को स्वयं ही समझकर करना है। वर्कशीट आकर्षक, रुचिकर व बच्चों के स्तर की होंगी, तभी वे वर्कशीट करने को तैयार होंगे। सरल भाषा में अवधारणा प्रस्तुत हो, ताकि पढ़ने और सीखने की रुचि आगे बढ़े, रुके नहीं। वर्कशीट के प्रश्न सीखने में मदद की दृष्टि से हैं न कि मूल्यांकन के लिए। वर्कशीट को हम कई-कई बार संशोधित कर रहे हैं। भाषा भी बदलनी होती है कि यहाँ पर अकेले में बच्चा नहीं समझ पाएगा। इस तरह से हम भी चीज़ें सीख रहे हैं। हम जो प्रयास कर रहे हैं उनमें सबसे अच्छा प्रयास बच्चों के पास वर्कशीट लेकर जाना लग रहा है। बच्चे हमसे मिलकर ख़ुश हैं और जब वो हमारे सामने बैठकर वर्कशीट करते हैं, तो हम समझ पा रहे

हैं कि बच्चे उसे कितना समझ रहे हैं और कैसे कर रहे हैं।

गुरबचन सिंह : मैं छोटेलालजी से अपने अनुभव साझा करने का अनुरोध करूँगा।

छोटेलाल : मेरे बहुत-से अनुभव रश्मिजी से मिलते हैं। इस दौरान हमने 3 क्षेत्रों पर काम किया। पहला, समुदाय के साथ जुड़कर यह जानने की कोशिश कि वो परिस्थिति को कैसे ले रहे हैं और उनकी क्या चुनौतियाँ हैं। दूसरा, स्कूल की टीम के तौर पर ख़ुद के क्षमतासंवर्धन व विकास के लिए हम क्या कर सकते हैं और बच्चों के साथ किस तरह से सम्बन्ध बनाए रख सकते हैं। तीसरा यह था कि हम बच्चों के साथ अकादमिक काम की शुरुआत कैसे कर सकते हैं।

25-26 मार्च को ये स्पष्ट हो गया था कि अब मिलने का या एक जगह इकट्ठा होने का कोई उपाय नहीं है। शुरुआत में बहुत व्यग्रता थी कि अपनी-अपनी जगह सिमटकर भी, हम क्या कर सकते हैं और किस तरह से बच्चों के साथ जुड़ाव बना सकते हैं। फिर समूह में बातचीत शुरू हुई और संस्था के तौर पर भी विमर्श हुआ कि हम घर में रहते हुए किस तरह की चीज़ों पर काम कर सकते हैं। हमने कक्षावार वॉट्सएप ग्रुप बनाना तय किया और निर्धारित किया कि हर ग्रुप को कक्षा शिक्षक देखेगा। शुरुआत में हमने उनके हालचाल, वो किस तरह इस पूरी परिस्थिति को ले रहे हैं, कैसी चुनौतियाँ व दिक़्क़तें उनके सामने हैं, इसके बारे में जानने की कोशिश की और सूचनाओं का आदान-प्रदान भी किया। हमने कक्षावार यह डेटा जुटाने की भी कोशिश की कि उस क्षेत्र में ऐसे कितने परिवार हैं जिनको खाने-पीने की दिक़्क़त हो रही है। ऐसे परिवारों को हमने खाने के पैकेट भिजवाने शुरू किए। फिर हमने वॉट्सएप पर कुछ वीडियो और कुछ ऐसी छोटी-छोटी चीज़ें भेजीं जो बच्चे देख सकते हैं, सुन सकते हैं, उसपर कुछ प्रतिक्रिया दे सकते हैं। साथ ही वर्कशीट देने का काम भी शुरू किया। पर 40-45% बच्चे ही इसको एक्सेस कर रहे थे और सिर्फ़ 15% बच्चों के ही जवाब हमें मिल रहे थे। बच्चों के साथ वॉट्सएप के ज़रिए शुरू हुई गतिविधियाँ ज़्यादा प्रभावी नहीं थीं। फ़ाउण्डेशन के स्तर पर भी बातचीत शुरू हुई कि वॉट्सएप और ऑनलाइन के ज़रिए बच्चों के साथ बहुत काम नहीं हो सकता क्योंकि बच्चों के पास आवश्यक सुविधाएँ नहीं हैं। अतः बच्चों के स्तर अनुसार विषयों की वर्कशीट पर काम करना शुरू किया गया।

इसके लिए विषयों में कक्षा के हिसाब से बच्चों के स्तर को वर्गीकृत करने की कोशिश हुई। जब वर्कशीटों को समुदाय में ले गए और बच्चों के घरों पर पहुँचे तो ज़बरदस्त अनुभव हुआ क्योंकि हम बच्चों के अभिभावकों से क़रीब 2 माह बाद मिल रहे थे। बच्चे और अभिभावक काफ़ी उत्साहित दिखे व इसे काफ़ी सकारात्मक रूप से लिया और सहयोग किया। जब वर्कशीट पर जवाबों को इकट्ठा किया तो हमने पाया कि 50% बच्चे ही उनको सकारात्मक रूप में लेकर अच्छे-से कर पा रहे थे। हमने वर्कशीट की पूरी विषय वस्तु, उसमें दिए गए अभ्यासों का रिव्यू किया और फिर से वर्कशीट बनाई। अब हमें पता था कि कौन-सा बच्चा किस स्तर पर कौन-सी चीज़ें समझ पा रहा है और कहाँ जूझ रहा है। इस दूसरे चरण में बनी वर्कशीटें बच्चों को पहुँचाईं और तब उनका भी रिव्यू किया, तब हमें लगा कि पहले चरण की तुलना में दूसरे चरण में बच्चों की प्रतिक्रियाएँ काफ़ी अच्छी हैं।

फोटो : अरविंद शर्मा, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन

हमने अभिभावकों के साथ भी बात की कि आप बच्चों को समय दीजिए, उन्हें दिक़्क़तें है तो सहयोग भी कीजिए। इस बार बड़े भाई-बहन या माता-पिता जो कुछ पढ़े-लिखे थे, वो उनके साथ उस काम में जुड़े। अबकी बार 80% बच्चों ने वर्कशीटें लौटाईं। इस वर्कशीट का भी हमने रिव्यू किया। हमने तय किया कि हमें रणनीति को और बदलना चाहिए और सोचा कि बच्चों के साथ मिलकर काम करने के और क्या तरीक़े हो सकते हैं। पूरे विमर्श की प्रक्रिया में यह समझ बनी कि कुछ छोटे पॉकेट बनाकर 10-12 बच्चों के साथ काम करें। यह भी देखने की कोशिश की कि टीम के रूप में हमारी सामर्थ्य क्या है? हम कितने पॉकेट में जा सकते हैं? पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के अलग-अलग पॉकेट

फोटो : छोटेलाल तंवर, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन

बनाए और पहली व दूसरी के शिक्षक को उन बच्चों के लिए योजना बनाने की ज़िम्मेदारी दी कि समय निकालकर उनके साथ काम करें। तीसरी से आठवीं तक के 12 पॉकेट और 6 टीमें बनाईं। हर पॉकेट में 2-2 लोगों को ज़िम्मेदारी दी गई और तब से हम लोग उस काम को कर रहे हैं। यह तय किया गया था कि बच्चों के साथ पुस्तकालय की किताबों पर भी काम करेंगे और देखेंगे कि किस तरह से इस काम को आगे ले जाया सकता है। यह भी तय किया गया कि भाषा में पढ़ने-लिखने पर और गणित के बुनियादी क्षेत्रों पर काम करेंगे। लिखने में बच्चे अपने रोज़मर्रा के अनुभवों को लिखें। साथ ही बच्चे पढ़ने के बाद सवाल बनाएँ, उनके रोज़मर्रा के अवलोकन को लेकर सवाल बनाएँ, गणित से जुड़े सवाल बनाएँ, वह भी रोज़मर्रा के अनुभवों पर, जैसे– उनके माता-पिता के ख़र्चों का विवरण, उनकी आय का विवरण, उनपर कुछ सवाल बना सकते हैं। ऐसी कुछ बुनियादी चीज़ें निर्धारित कीं। इस पूरे काम का कोर क्षेत्र यह था कि रोज़ टीम के साथ एक-डेढ़ घण्टा पूरे दिन के काम पर बात करते रहें, जैसे– किस पॉकेट में शिक्षक किस हिस्से / मुद्दे पर काम कर रहे हैं, किस तरह की प्रतिक्रिया आ रही है, किस तरह की चुनौती का सामना वो कर रहे हैं। इस पूरी प्रक्रिया में हम अपनी रणनीति में लगातार बदलाव करते रहे, चीज़ों पर रिफ़्लेक्ट करते रहे और ज़रूरत के हिसाब से नई चीज़ें जोड़ते रहे। पहली और दूसरी के क़रीब 18-20 बच्चे शहरी क्षेत्र से थे। इनको हमें स्कूल के दाख़िले के लिए लेना था, पर वो जिस क्षेत्र में थे उसका फैलाव ज़्यादा था। हमने यह तय किया कि इन बच्चों के साथ वर्कशीट पर काम करेंगे। इनसे हम सप्ताहवार मिलेंगे और अभिभावकों को इसकी ज़िम्मेदारी देंगे। इस पूरी प्रक्रिया की उपलब्धियाँ यह हैं कि हम ज़्यादा-से-ज़्यादा बच्चों के साथ जुड़ने और लगातार काम करने में सफल रहे। वे बच्चे जो दूर के क्षेत्रों से थे, उनके साथ भाषा और गणित के बुनियादी क्षेत्रों पर काम किया। बच्चों को पाठ्यपुस्तकें और स्टेशनरी भी उपलब्ध कराई। धीरे-धीरे हम विषयों के अभ्यासों की तरफ़ बढ़े, हर विषय में व्यापक विषय वस्तु ली जो कक्षा 6, 7, 8 में होती है। थीम और प्रोजेक्ट पर भी हमने काम किया, जैसे– इतिहास में हमारे एक साथी ने गाँव के कुछ ख़ास स्थलों को जानने के लिए एक पूरा प्रोजेक्ट बनाया। गणित में कुछ मॉडलों और प्रोजेक्ट पर काम किया। लगातार बच्चों को कहानी सुनाना, उनपर बात करना, बच्चों के द्वारा कहानी सुनना-सुनाने पर भी काम हुआ। अन्त में, एक बात और कहूँगा कि कोविड जागरूकता शिविर में हमारे पुराने विद्यार्थियों के साथ गाँव में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए लगातार काम किया गया। अलग-अलग तरीक़ों

से 30 से 40 बच्चों का समूह हर शनिवार को गाँव के लोगों के साथ गतिविधि के माध्यम से जुड़ता है। लगता है ये बच्चे अपने-आप को एक बदलाव लाने वाले की भूमिका में देखते हैं और बहुत उत्साह से इस पूरे अभियान में जुटे हुए हैं।

रजनी : मैं अनूपजी से गुज़ारिश करूँगी कि वो अपनी बात रखें।

अनूप : कमोबेश स्थितियाँ सब जगह एक जैसी ही हैं। स्कूल बन्द होने का प्रभाव शुरू में बच्चों के लिए बहुत ख़ुशनुमा था, लेकिन धीरे-धीरे छुट्टियों का दौर लम्बा होने लगा और उन्हें बोर भी करने लगा। जब स्कूल बन्द हुए तो अन्दाज़ा था कि ये दौर काफ़ी लम्बा खिंचने वाला है और शायद स्थितियाँ और भी गम्भीर होने वाली हैं। सरकार के स्तर पर भी बच्चों को शिक्षा से जोड़े रखने के प्रयास होने लगे थे। इन सभी के मद्देनज़र हमें अपनी तैयारी करनी थी। शिक्षा को जारी रखने के लिए राज्य सरकार की तरफ़ से 'पढ़ई तुंहर दुआर' नाम के एक पोर्टल का निर्माण किया गया, जिसके ज़रिए शिक्षकों को बच्चों से ऑनलाइन मिलना था। ग्रामीण अंचल में कनेक्टिविटी को लेकर बहुत दिक़्क़तें हैं, अतः कहीं-न-कहीं ये सारी चीज़ें असफल रहीं। हालाँकि हमारा स्कूल नगरीय है और अँग्रेज़ी माध्यम का है। तीन वर्ष पहले यह सरकार की योजना से खोला गया है। यहाँ पर आसपास के क़रीब 15 किलोमीटर के क्षेत्र से बच्चे आते हैं।

यहाँ बच्चे ऑनलाइन माध्यम से जुड़ रहे थे। हमारे स्कूल के अभिभावक थोड़े जागरूक भी हैं, क्योंकि ज़्यादातर बच्चे प्राइवेट स्कूल से निकलकर ही यहाँ आए हैं। जब हमने ऑनलाइन क्लास लेनी शुरू की तो शुरुआत में, जैसा रश्मिजी ने कहा था, हमें भी काफ़ी सीखना पड़ा। शुरुआती एक-दो माह 15-20 बच्चे ही जुड़ पाते थे। हम लोग हतोत्साहित भी हुए। ऐसा लग रहा था कि चीज़ें नहीं हो पा रही हैं। इसी बीच राज्य सरकार की तरफ़ से 'सीख' कार्यक्रम की योजना ज़िला स्तर पर प्रारम्भ हुई। 'सीख' कार्यक्रम के तहत जिन जगहों पर बच्चे ऑनलाइन माध्यम से नहीं जुड़ पा रहे हैं, वहाँ हमें अपने स्कूल के 10 बच्चों के लिए उन्हीं के मोहल्ले से 1-1 वॉलंटियर खोजना था। हमारे क्षेत्र का फैलाव बहुत ज़्यादा था। हमने योजना बनाई कि हम पालकों से बात करें और उनको ही सक्रिय वॉलंटियर के तौर पर देखें। हमने पालकों से बात की और लगभग 10-15 पालक सक्रिय रूप से काम करने के लिए तैयार हुए। कुछ पालक आसपास के बच्चों को अपने पास ही पढ़ाते हैं। कुछ पालक अपने बच्चों को पढ़ा रहे हैं। यह हमारे लिए काफ़ी अच्छा रहा। हमें दिक़्क़त उन बच्चों के साथ आई जहाँ पालकों के साथ हमारी बात नहीं हो पाई, और जो दूरदराज़ के क्षेत्रों से हैं और उनके अभिभावक उनको मदद नहीं कर पा रहे थे। उन अभिभावकों को हमने जोड़ने की कोशिश

फोटो : मनीषा यादव, एकलव्य फ़ाउण्डेशन

की। उन्हें इस बात के लिए राज़ी किया कि उनके गाँव में 'सीख' कार्यक्रम के अन्तर्गत कुछ वॉलंटियर्स कक्षाएँ ले रहे हैं और वे अपने बच्चों को वहाँ भेजें। हालाँकि उनकी पढ़ाई कैसी चल रही होगी यह हम लगातार नहीं देख पाए। मगर कभी टेलीफ़ोन पर बात होती है तो वो बताते हैं कि वे बच्चों को स्कूल भेज रहे हैं। 'सीख' कार्यक्रम, यूनिसेफ़ के साथ एक साझा प्रयास है। यूनिसेफ़ की टीम विषय वस्तु तैयार करती है और वही विषय वस्तु ऑनलाइन भी होती है। हमने 'सीख' द्वारा विकसित विषय वस्तु के लिए अलग से वॉट्सएप ग्रुप बना दिया और स्कूल वॉट्सएप ग्रुप पहले से था ही। जितने बच्चे जुड़

रहे हैं उनके लिए हमारी ऑनलाइन क्लास शुरू रही। जो बच्चे ऑनलाइन कक्षा से नहीं जुड़ पा रहे हैं उनके लिए ऑफ़लाइन वीडियो बनाए। उन्हें यू-ट्यूब में अपलोड कर उनके लिंक बच्चों से साझा किए। यू-ट्यूब पर बड़ी फ़ाइलें भी चली जाती हैं और जहाँ कनेक्टिविटी है वहाँ लिंक खोलकर देख सकते हैं। छोटी अवधि की स्लाइडें / वीडियो बनाए और कोशिश की कि मैं उसमें एक पूरी-की-पूरी प्रक्रिया डाल सकूँ। स्लाइडों में एक गतिविधि उदाहरण के तौर पर होती है, एक अभ्यास के लिए और एक हिस्से में मूल्यांकन की बात आती है। यह तीनों मैंने 16-17 मिनट में पिरोने की कोशिश की। बच्चे स्लाइडें और दी गई वर्कशीट हल कर भेजते हैं, कुछ बच्चे स्लाइडों

फोटो : गोलू , एकलव्य फ़ाउण्डेशन

में दी गई सामग्री को कॉपी करते हैं, और कुछ अभिभावक प्रिंटआउट निकालकर भी दे देते हैं।

रजनी : मुनीर आप अब अपनी बात रख सकते हैं।

फोटो : विनोद उप्रेती

मुनीर : हम समुदाय में मौजूद संसाधनों को पहचानने और उनका उपयोग करने पर फ़ोकस कर रहे हैं। जैसे एक गाँव की शिक्षिका द्वारा कॉलेज के विद्यार्थी या अन्य शिक्षित व्यक्तियों को पहचानना। यह प्रक्रिया जिसके बारे में रश्मिजी और बाक़ी लोगों ने बात की, इस पूरी प्रक्रिया के बेहतर क्रियान्वयन के लिए गाँव के संसाधनों को पहचान कर उनकी मदद लेना बहुत ज़रूरी है और पिथौरागढ़ में ऐसा ही हो रहा है। उत्तराखंड में प्रत्येक इंटर कॉलेज के दायरे में 4-5 गाँव आते हैं जिसमें 2-3 प्राथमिक शालाएँ आती हैं। इंटर कॉलेज के शिक्षक को हर गाँव के लिए एक मेंटर तय करना है। इसके लिए ये शिक्षक गाँव के प्राथमिक स्कूल के शिक्षक के साथ समन्वय करते हुए गाँव में उपलब्ध संसाधनों को जानने की कोशिश करते हैं। वे यह कोशिश करते हैं कि वॉलंटियर्स को कैसे जोड़ा जाए। दूसरा, प्रत्येक इंटर कॉलेज अपने क्षेत्र को एक समूह के रूप में देखने की कोशिश करे और अपना कुछ ऑपरेशन डिज़ाइन करे। ये दो चीज़ें यहाँ पिथौरागढ़ में ज़मीनी स्तर पर हो रही हैं।

रजनी : अब मैं टुलटुलजी से बात करने की गुज़ारिश करूँगी।

टुलटुल : काफ़ी चीज़ें साथियों ने जो साझा कीं उससे मिलती-जुलती हैं। हम लोग अलग-अलग जगहों पर कोशिश करते रहे हैं; महाराष्ट्र के कुछ इलाक़े हैं, और मध्य प्रदेश के छह ज़िलों में हम काम करते हैं। जब लॉकडाउन हुआ और स्कूल बन्द हुए तो लगा कि स्कूल अब 3-4 महीने तक नहीं खुलेंगे, पर धीरे-धीरे वो और आगे बढ़ता गया। हमने तीन तरह के प्रयास शुरू किए लेकिन हम यहाँ दो की ज़्यादा बात करेंगे। एक, शिक्षकों के साथ सम्पर्क और बातचीत को लगातार बनाए रखने की कोशिश की। दूसरा, अलग-अलग इलाक़ों में, बच्चे इस दौर में क्या कर रहे हैं उसको जानने-समझने की कोशिश की, और तीसरा हमारी टीमों के क्षमतावर्धन के लिए हर दिन कुछ पढ़ना और तैयारी करना। जब ये जानने की कोशिश की कि

गाँव के हमारे शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र जो हमारे स्थानीय युवा शैक्षणिक मदद के लिए चलाते हैं वहाँ पर आने वाले बच्चे क्या कर रहे हैं, तो हिला देने वाली तस्वीर हमारे सामने आई। आप जानते हैं कि सरकारी स्कूल में आर्थिक और सामाजिक रूप से एकदम हाशिए पर जो परिवार हैं उनके बच्चे आते हैं।

ऐसे परिवारों का रोज़गार छिनना सबसे पहले हुआ और उसका असर सीधे-सीधे बच्चों के ऊपर भी आया। बहुत सारे बच्चे जो शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र में आते थे, वो हमें काम करते हुए नज़र आए; दो बच्चे चूड़ी की दुकान लगा रहे हैं, परचूनी की दुकान में बच्चे काम कर रहे हैं, बढ़ईगीरी का काम बच्चे अपने ही घर में कर रहे हैं, और खेतों में भी काम कर रहे हैं। ये सच्चाई सामने आई कि कुछ समय के लिए घर में अगर एक विषम परिस्थिति है, आर्थिक परिस्थितियों की वजह से बहुत ही तनावपूर्ण माहौल बन रहा है तो थोड़ी देर के लिए स्कूल बच्चों को वो जगह भी देता था जो बच्चों को उस परिस्थिति से निजात दे, वो एकदम छिन गया।

शिक्षा में हम इन तीन दायरों को हमेशा देखते हैं— परिवार का दायरा, समुदाय का दायरा और स्कूल व शिक्षकों का दायरा। इन तीनों दायरों के आदान-प्रदान को देखते हुए हम इस दौरान शिक्षा के बारे में क्या कर पाए, उसकी बात करें तो शुरुआती चरण में बच्चों के साथ ज़्यादा इंगेजमेंट नहीं हो पा रहा था। लेकिन शिक्षकों के साथ हमारी बातचीत लगातार होती रही। इस बातचीत में कई सारे मुद्दे निकलकर आए। एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा था कि कई शिक्षकों को कोविड सम्बन्धी ज़िम्मेदारियाँ भी दी गई थीं, जैसे— क्वारंटाइन सेंटर की ज़िम्मेदारियाँ, जो परिवार पलायन से लौट रहे थे उनका सर्वे, और उन्हें राशन की स्कीम से जोड़ना आदि। इसके अलावा कुछ समूह में बच्चों की ज़िम्मेदारी, उनके साथ फ़ोन पर सम्पर्क करना और ऑनलाइन पढ़ाई का फ़ॉलोअप करना तो था ही। शिक्षकों की बातचीत से एक और चीज़ समझ में आई कि क्वारंटाइन सेंटर या सर्वे के जब काम किए जा रहे थे तो शिक्षकों के पास कोई ख़ास सुरक्षा उपाय नहीं थे। ये भी एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है कि शिक्षकों की कई कामों में मदद ली जाती है, लेकिन उनकी अपनी तैयारी और उनके बचाव की तैयारी में ये चीज़ें छूट जाती हैं। दूसरा, जब हमने अपने शिक्षकों के साथ हमारी टीम की आन्तरिक अधिगम प्रक्रियाओं के बारे में साझा किया तो सभी शिक्षकों ने रुचि दिखाई। तब उनकी रुचि के अनुसार पढ़ने की सामग्री उनको भेजी गई।

कई शिक्षकों ने सामग्री पर टिप्पणियाँ लिखकर भेजीं जिसे न्यूज़लेटर के रूप में

फोटो : आकाश मालवीय, एकलव्य फ़ाउण्डेशन

निकालकर सब शिक्षकों से साझा किया गया। कई शिक्षकों ने ऑनलाइन कक्षा में जुड़ने की बात कही, और फिर कुछ शिक्षकों के साथ गूगल मीट / ज़ूम के द्वारा शैक्षिक सत्र और क्षमतावर्धन के सत्र आयोजित होने लगे। इस चरण में एक और चीज़ पर हमने ध्यान दिया। मध्य प्रदेश सरकार डिजिटल लर्निंग इनहान्समेंट प्रोग्राम (DigiLEP— डिजिलैप) के नाम से काफ़ी सारी सामग्री बच्चों एवं शिक्षकों को भेज रही थी। यहाँ भी स्मार्टफ़ोन की उपलब्धता लगभग 25-30% अभिभावकों के पास ही है। शिक्षकों के साथ अपनी बातचीत से हमने समझा कि 8-10% बच्चों से ही उनका संवाद हो पा रहा है। राज्य शिक्षा केन्द्र का अपना आकलन है कि लगभग

2% बच्चे ही इससे लाभ ले पा रहे हैं, और सार्थक रूप से इंगेज हो पा रहे हैं। हमें लगा कि ऐसी सामग्री बनाने की ज़रूरत है जो सामान्य फ़ोन या रेडियो के ज़रिए भी बच्चों तक पहुँच सके। हमने कुछ ऑडियो कहानियाँ और ऑडियो पाठ बनाने का काम किया और इसे राज्य शिक्षा केन्द्र के साथ साझा भी किया। रेडियो प्रोग्राम के लिए रेडियो स्क्रिप्ट और कुछ वर्कशीट भी बनाईं। वर्कशीट में बच्चों के जीवन से जोड़ते हुए भाषा और गणित के साथ ही हमने यह प्रयास किया कि कोविड से बच्चे कैसे जुड़ रहे हैं, उसको कैसे देख रहे हैं, उसके बारे में उनके मन में क्या कुलबुला रहा है, उसकी अभिव्यक्ति भी हो पाए, इसपर भी वर्कशीट श्रृंखला बनाई। यह पर्यावरण अध्ययन के दायरे से भी जुड़ता है। उसमें कई भावनात्मक पहलुओं पर भी बात

फोटो : युगल किशोर, एकलव्य फ़ाउण्डेशन

हुई कि इस दौर के तनाव में बच्चे ख़ुद को कैसे सँभालें? इन सारी चीज़ों को हमने राज्य शिक्षा केन्द्र के साथ साझा किया ताकि पूरे राज्य के बच्चों तक वो पहुँचाई जा सकें और इसी संवाद के दौर में हमने राज्य शिक्षा केन्द्र के साथ मिलकर 'हमारा घर हमारा विद्यालय' मुहिम चलाई। उसकी संकल्पना करना, डिटेल्स को तैयार करना; वो कैसे काम करेगा, किस तरह की शिड्यूलिंग होने की ज़रूरत है, ये सारी बातचीत होती रही। शिक्षकों के शिक्षकीय सफ़र को दर्ज करने के लिए कुछ लम्बे साक्षात्कार लेने के प्रयास किए। इस बीच हमने फ़ोन के माध्यम से ही इसकी सरलता बढ़ाई। बच्चों के साथ ऑडियो कहानियाँ और इस तरह की सामग्री के प्रचार-प्रसार के अलावा, कोविड के बारे में, उसके बचाव के तरीक़ों के बारे में जानकारी पर भी लगातार बच्चों, शिक्षकों और जो युवा सदस्य हमारे साथ पुस्तकालय कार्य से जुड़े हैं, उनके साथ चर्चा व संवाद होता रहा। जैसे छोटेलालजी पॉकेट्स के बारे में बात कर रहे थे, लगभग उसी तरह की चीज़ हमने भी सोची। ऐसी जगह जहाँ बच्चे छोटे समूह में आकर मिल सकते हैं, एक दूसरे के साथ छोटी-छोटी गतिविधियाँ कर सकते हैं, आपस की बातें साझा कर सकते हैं और कुछ सीख भी सकते हैं। इसको 'मोहल्ला शिक्षा गतिविधि केन्द्र' का नाम दिया। राज्य शिक्षा केन्द्र ने इसे मोहल्ला कक्षा के रूप में और अपने पूरे कार्यक्रम और कार्यवाही के तहत आगे बढ़ाया। मोहल्ला शिक्षा गतिविधि केन्द्र की संकल्पना इसी तरह हुई कि हर मोहल्ले में उसी मोहल्ले के बच्चे और उसी मोहल्ले के कोई युवा या किशोर साथी पढ़े-लिखे हों और जो बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं, वो आगे आएँ। ये केन्द्र खुली और हवादार जगह पर संचालित हों, बच्चों की आसान पहुँच में हों, मोहल्ले के अन्दर हों, बाहर से कोई नहीं आए और उसी मोहल्ले के व्यक्ति ही पढ़ाने का काम करें। जो साथी पढ़ाने का काम कर रहे हैं, एकलव्य की टीम और उस गाँव के स्थानीय शिक्षक की मदद से हर सप्ताह शनिवार या रविवार के दिन उनका 2 घण्टे की तैयारी का सत्र होता है। जब कुछ जगहों पर धारा 144 लगा दी गई, तो यह तय किया गया कि बच्चों को एक घण्टे के लिए ही बुलाएँ। यहाँ भी सुरक्षा के उपाय जो कोविड की परिस्थिति में सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, इनपर पढ़ाने वाले युवा साथियों और बच्चों के साथ लगातार बहुत संवाद हुआ। मास्क पहनना, मास्क मुहैया कराना, दूर-दूर बैठना, आते और जाते समय साबुन से हाथ धोना, इन चीज़ों को एक कवायद की तरह लगातार बातचीत करके अभ्यास में लाया गया। हम इसको इस तरह भी देख रहे थे कि बच्चे इन चीज़ों को अपने परिवार में सन्देश ले जाने

का भी एक ज़रिया बन रहे थे। इन केन्द्रों पर इस बात पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया गया कि कैसे स्थानीय संसाधनों का अभी सहजता से उपयोग किया जाए। हम बहुत ही छोटे-से बजट में थोड़ी कहानी की किताबें, कुछ पुराने *चकमक* के अंक, कुछ माचिस की तीली जैसी स्थानीय रूप से मुहैया हो सकने वाली सामग्री के साथ जा रहे थे। सोच यह थी कि युवा साथियों की तैयारी ऐसी हो, जैसा मुनीरजी ने भी कहा कि समुदाय के पास उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करते हुए सीखने-सिखाने का काम कर सकें। राज्य शिक्षा केन्द्र ने भी इस विचार को अपनाया और 'हमारा घर हमारा विद्यालय' कैम्पेन की शुरुआत हुई। इसके तहत मोहल्ला कक्षा के बारे में पूरी प्रक्रिया और पूरी व्यवस्था बनाई गई। मध्य प्रदेश में सभी ज़िलों में इसपर प्रशिक्षण भी रखा गया। मोहल्ला कक्षा कैसे संचालित करनी है, उसके लिए क्या व्यवस्थाएँ करनी हैं, शिक्षक की क्या भूमिका है, समुदाय की क्या भूमिका है, इसपर प्रशिक्षण हुए। अगर समेटते हुए देखें तो जो मुख्य बातें दिखती हैं वो एक यह कि शिक्षा के जो भी काम हैं उसमें समुदाय और अभिभावकों की एक अनिवार्य भागीदारी हो, ये इस दौर में बहुत ही मुख्य रूप से सामने रखा गया है।

स्थानीय युवाओं को शिक्षा के दायरे से जोड़ने की सम्भावनाओं को लेकर जो प्रयास हम करते रहे थे उन अनुभवों ने इस दौर में बहुत मदद की। हाई स्कूल में पढ़ने वाले किशोर या कॉलेज में पढ़ने वाले युवा अपने-अपने गाँव लौटे हैं, क्योंकि शहरों में हालात ज़्यादा ख़राब हैं तो वो गाँव में ही बने हुए हैं। कुछ भी पहल करने के लिए उनकी मदद ली जा सकती है। तीसरी महत्त्वपूर्ण चीज़ जो बहस का मुद्दा भी है, वो ऑनलाइन शिक्षा की सीमाएँ हैं। ऑनलाइन का प्रयास हमने भी किया और अभी भी कर रहे हैं, उसमें दो तरह की बातें हैं। जैसा रश्मि मैडम कह रही थीं कि वर्कशीट को लेकर बच्चों के साथ प्रत्यक्ष संवाद की एक अलग ही सार्थकता नज़र आती है। ऑनलाइन माध्यम में इंटरेक्टिव होने की सम्भावनाएँ हैं, लेकिन अधिकतर सामग्री वैसी नहीं बन रही है। हम 'टेसू' नाम के प्लेटफ़ॉर्म की मदद से कोशिश कर रहे हैं। इसमें ऐसे मॉड्यूल उपयोग हो रहे हैं जिसमें बच्चे काम करते हैं, ग़लतियाँ करते हैं, फिर देखते हैं कि ग़लती हो गई है तो उसपर दोबारा काम करते हैं और ग़लती से सीखते हुए आगे बढ़ते हैं। हम इसे आजमा रहे हैं। लेकिन ये सबकी पहुँच में नहीं है। मुझे शिद्दत से लगता है कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का एक अनिवार्य हिस्सा ये होना होगा कि वो सबके लिए मुहैया हो। अन्तिम बात ये कि मोहल्ला केन्द्र / पॉकेट्स में काम करने की बात बार-बार हमें याद दिलाती है कि बहुत सारी और चीज़ों में ग्राम स्वराज क़िस्म की कल्पना की तर्ज पर स्थानीय छोटी इकाई में काम होना, इनको जगह देना, इनको बड़ी संख्या में पनपाना और इस तरह से तैयार करना कि वो स्वावलम्बी हो सकें, इस दिशा में और ज़्यादा सोच विचार करने की और काम करने की ज़रूरत लगती है।

फोटो : अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन

रजनी : अभिषेक, अब आप अपनी बात कहें।

अभिषेक : मध्य प्रदेश में किस तरह का काम हुआ है, इसके बारे में टुलटुलजी ने बताया। मैं इसमें कुछ जोड़ना चाहूँगा। लॉकडाउन के दौरान मध्य प्रदेश सरकार ने दो तरह के काम किए। पहला, शिक्षकों से जुड़े रहने के लिए 2-2, 3-3 घण्टे के कुछ सेल्फ़ प्रैक्टिस कोर्सेस उन्होंने बनाए। दूसरा, बच्चों के लिए डिजिलैप शुरू हुआ। इसमें वॉट्सएप पर सीखने-सिखाने की विषय वस्तु को भेजना शुरू किया गया। अप्रैल

के बाद पता लगा कि डिजिलैप कार्यक्रम की पहुँच सिर्फ़ दो प्रतिशत बच्चों तक है। इसी बीच कई संस्थाओं ने सरकार को चिट्ठियाँ भेजीं कि एक ब्लैंडेड मोड अप्रोच के तहत काम करने की ज़रूरत है।

तब 'हमारा घर हमारा विद्यालय' कार्यक्रम शुरू हुआ। इसके तहत सभी शिक्षकों को मोहल्ला कक्षाओं में जाना और 5-5 बच्चों की टोलियों के साथ काम करना है। हर सप्ताह जारी एक कैलेंडर के अनुसार ये सारा काम होता है। अध्यापकों को 4 घण्टे काम करना होता है। छतीसगढ़ में 'पढ़ई तुंहर दुआर' कार्यक्रम है

फोटो : अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन

लेकिन इसमें शिक्षकों का जाना वॉलंटरी हैं, हो सकता है कि सन्दर्भ अलग हो। मध्य प्रदेश में ऑनलाइन कक्षा का काम दो-तीन अलग संस्थाओं द्वारा किया जा रहा था और तीन चीज़ें चल रही थीं। एक, वॉट्सएप के द्वारा विषय वस्तु को भेजना और बच्चों को कहना कि ये करके भेजिए; दूसरा, किसी एप को इंस्टॉल कर लेना या उनके साथ कोई क़रार कर लेना और उसके ऊपर काम करवाना; और तीसरा, ज़ूम या माइक्रोसॉफ़्ट के ज़रिए फेस टू फेस काम। ऑनलाइन के इस्तेमाल की सम्भावनाएँ हैं– आप एक अच्छी कहानी को ऑनलाइन रिसोर्स में परिवर्तित कर सकते हैं और बच्चे देख सकते हैं या ऑनलाइन ऑडियो भेज सकते हैं।

लेकिन शिक्षा ऑनलाइन ही होने लगे उसमें काफ़ी समस्याएँ हैं। एक समस्या ये आई कि ऑनलाइन प्रक्रिया में ज़्यादा काम सिर्फ़ सुनने का होता है, बच्चे क्या कर रहे हैं, समझ रहे हैं, नहीं समझ रहे हैं, यह बिलकुल समझ में नहीं आता है। अध्यापक भी काफ़ी हतोत्साहित हैं और अभिभावक भी, क्योंकि कई बार वे बच्चे की मदद नहीं कर पाते। इसमें ज़्यादा परेशानी बच्चों को हो रही है। लेकिन अब यह समझ आ गया है कि इसका सीमित उपयोग ही हो सकता है। शिक्षा की प्रक्रिया में जिस आत्मीयता, अन्तःक्रिया की ज़रूरत है वो इस माध्यम में नहीं हो सकती।

दूसरा, जब ये आदेश आया कि शिक्षकों को काम पर जाना है तब तय था कि शिक्षा में, अध्यापकों के साथ काम करने वाली संस्थाओं को भी काम करना होगा। तो एक विमर्श यह था कि हम लोगों के कर्तव्यों को किस तरह से परिभाषित करें। यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि बहुत-से लोग फ़ील्ड में जाने से डरे हुए थे। उन्होंने संस्था में काम करना इसलिए तय नहीं किया था कि ऐसी परिस्थिति में जहाँ जान को ख़तरा हो, तब भी फ़ील्ड में जाकर काम करना हो। ये समस्या सिर्फ़ फ़ाउण्डेशन में काम कर रहे लोगों की या सिर्फ़ शिक्षकों की नहीं है, ये समस्या पुलिस वालों की भी है।

कोई व्यक्ति जब किसी काम को करने के लिए तैयार होता है, चाहे शिक्षक हों, पुलिस वाले हों, डॉक्टर हों, उनके उस पेशे को अपनाने में यह तय होता है कि ज़िम्मेदारियाँ सन्दर्भ के अनुसार बदलती रहेंगी। क्योंकि काम का सन्दर्भ कभी भी बदल सकता है और बदलते सन्दर्भों का अर्थ यह नहीं है कि हम अपनी

ज़िम्मेदारियों से पीछे हट जाएँ। अतः शिक्षकों को या फ़ाउण्डेशन के सदस्यों को फ़ील्ड में जाना चाहिए या नहीं जाना चाहिए, यह एक विमर्श का मसला है। कितना ख़तरा एक व्यक्ति को लेना चाहिए या नहीं, या शासन को ऐसा आदेश निकालना चाहिए या नहीं, ये नैतिक मसला है और मेरी समझ में ये नैतिक ज़िम्मेदारी बनती है कि हम सुरक्षा के सभी उपायों को ध्यान में रखते हुए काम को जारी रखें। क्योंकि समाज के बाक़ी वर्ग; दूध वाला, सब्ज़ी वाला, किराने वाला आदि सभी दुकान बन्द कर दें, तो क्या हो? तब पूरा सामाजिक ताना-बाना जो इसी नैतिकता के ऊपर टिका हुआ है, वो शायद नहीं रहेगा। तीसरा मसला यह है कि कोविड के दौर में कितने वॉलंटियर्स को लेकर काम कर सकते हैं। जो काम हमने किया है उसमें बहुत सारी चीज़ें टुलटुल ने कही हैं, वैसी हैं। यहाँ मध्य प्रदेश में हम सागर, खरगौन, भोपाल और धार, इन चार ज़िलों के अन्दर प्रमुख रूप से काम कर रहे हैं और लगभग पाँच हज़ार शिक्षकों के साथ जुड़े हुए हैं। इनमें से लगभग एक हज़ार शिक्षकों के साथ 'लर्निंग सेंटर' के माध्यम से ज़्यादा सघन रूप से काम कर रहे हैं। लॉकडाउन के दौरान हम इन सभी एक हज़ार शिक्षकों के साथ जुड़े रहे। कुछ काम पहले से योजना में थे, वो टी-कोन और माइक्रोसॉफ़्ट टीम्स के ज़रिए हुए। शुरुआत में कुछ चर्चाएँ और कार्यशालाएँ कोविड को समझने पर हुईं, उसके बाद भाषा और गणित पर।

जब लॉकडाउन हुआ तब पहला सवाल यही आया कि बच्चे इस दौरान क्या कर रहे हैं। दूसरा, हमने शिक्षकों के साथ मिलकर जहाँ भी राशन की आवश्यकता है वहाँ पहुँचाना, ऐसा काम भी किया और इस तरह हम बच्चों तक भी पहुँच पाए। हमारे ज़्यादातर शिक्षकों के साथ 'झोला पुस्तकालय' भी चलते हैं। हमने कोशिश की कि झोला पुस्तकालय की पुस्तकें बच्चे के पास के घर तक पहुँच जाएँ। राशन के साथ किसी तरह से किताबें भी पहुँच जाएँ। जब लॉकडाउन ख़त्म हुआ, 'हमारा घर हमारा विद्यालय' शुरू हुआ तो काम थोड़ा बदल गया। लेकिन हम 60-65% शिक्षकों के साथ सघन रूप से 'हमारा घर हमारा विद्यालय' में काम कर पाए। इस काम के लिए हर सप्ताह सभी विकासखण्डों की टीम के साथ माइक्रोसॉफ़्ट टीम्स पर मिलकर एक साप्ताहिक योजना बनती है। शिक्षकों ने गाँव के अन्दर कुछ वॉलंटियर्स, जो उच्च कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चे होते हैं, को जोड़ने का काम किया। अध्यापक वॉलंटियर्स के साथ योजना बनाते हैं और फिर वॉलंटियर्स बच्चों के साथ छोटे समूहों में काम करते हैं। मैं सागर के पास एक स्कूल रीछोड़ टाबरा गया था।

फोटो : सुरज्ञान गुर्जर, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन

यह अनुभव हुआ कि योजना बनाने वाला और वॉलंटियर्स के साथ काम करने वाला हिस्सा बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह भी समझ आया कि वर्कशीट के अलावा काफ़ी प्रोजेक्ट्स भी बच्चों के लिए किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, बच्चे टॉफ़ी के रेपर इकट्ठा करें और उनके नाम लिखें क्योंकि ज़्यादातर नाम उच्चारित किए जा सकते हैं या लिखे रहते हैं, फिर अध्यापक के साथ उनपर बातचीत करें।

यह भी समझ आया कि ऐसी स्थिति में गाँव वाले और बड़े बच्चे मदद करने को तैयार हैं। मैं जिन गाँवों के स्कूलों में जा पाया हूँ उनमें शिक्षकों के साथ वॉलंटियर्स में लड़कियों की संख्या ज़्यादा है। उनके साथ बातचीत में उन्होंने बताया कि ऐसे समय में लोगों की मदद करनी चाहिए। एक और बात यह कि शिक्षक के बारे में, गाँव को लेकर हमारी जो मान्यताएँ हैं उसपर भी काम की बेहतरी निर्भर करती है। यदि हमारा विश्वास है कि शिक्षक एक सोचने-समझने वाला व्यक्ति है और अपनी समस्याओं का ख़ुद हल निकाल सकता है, तो काफ़ी मदद मिलती है। 'हमारा घर हमारा विद्यालय' के तहत होने वाले काम को शिक्षक ज़िला स्तर पर हो रहे वेबिनार में साझा कर रहे हैं। कुछ शिक्षकों के काम को हम

रंगीलो पहचान है म्हारो अभियान एक समान

जागरूक हाथ

आइये - हाथ धुलना एक अभियान बनायँ
लगातार हाथ धुलें और महामारी भगाएँ

फोटो : राजकुमार रजक, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन

एक वीडियो सीरीज़ 'उम्मीद जगाते शिक्षक' में रिकॉर्ड भी कर रहे हैं। हर महीने उसका एक वीडियो जारी करते हैं जिससे शिक्षक एक दूसरे से सीख सकें कि क्या काम हो रहा है। यह भी एक अवलोकन है कि मोहल्ला केन्द्र कक्षा में जहाँ दूसरे सरकारी स्कूल के बच्चे आ रहे हैं, वहीं प्राइवेट स्कूल के बच्चे भी आ रहे हैं, और लगता है कि जाति की समस्या (caste dynamics) ख़त्म हो गई है, भेदभाव जैसी चीज़ें नहीं हैं। क्योंकि शिक्षकों का कई समय पर ये मानना होता रहा है कि पालक बच्चों को इन बच्चों के साथ भेजना नहीं चाहते हैं। लेकिन ऐसी स्थिति ने काफ़ी शिक्षकों की मान्यता को हिलाया है। आख़िरी बात यह कि ऐसे में बच्चे आ रहे हैं, इतना सारा काम हो रहा है, ये अपने-आप में एक अच्छा अनुभव रहा है। कम-से-कम ग्रामीण क्षेत्र में बच्चे आ रहे हैं, भोपाल का अनुभव थोड़ा उलटा है। अभी 9वीं से 12वीं तक के स्कूल भी खुले तो 20% हाज़िरी थी।

रजनी : मयंक, अब आप अपनी बात रखें।

मयंक : मैं पिछले 6-7 महीनों में शिक्षकों के साथ हुए अनुभवों, व्यवस्थित प्रयासों को जैसे मैंने समझा है, उनको रखने की कोशिश करूँगा। स्कूलों को सबसे पहले बन्द किया गया था। इसके पीछे बच्चों की सुरक्षा को लेकर बहुत जायज़ क़िस्म की चिन्ताएँ थीं, लेकिन इसके बाद शिक्षा को लेकर जिस तरह की समझ हमने बनाई है, इसमें पूरी तरह से ज़ोर सिर्फ़ पढ़ने और लिखने पर आकर केन्द्रित हो गया है। उन कारकों को हमने नज़रअन्दाज़ किया है जो सीधेतौर पर पढ़ने-लिखने की तरफ़ नहीं जाते, लेकिन सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। जैसे एक कारक यह है कि जुलाई, अगस्त, सितम्बर के महीनों की स्कूल कैलेंडर में एक बड़ी जगह हुआ करती थी– खेलकूद की गतिविधियों की। वर्तमान परिस्थिति में ज़ोर सिर्फ़ विषयों की पढ़ाई पर है, खेलकूद और सांस्कृतिक गतिविधियाँ अभी हाशिए पर हैं। वैसे को-कैरीकुलर गतिविधियों को हमेशा हाशिए पर डाला जाता रहा है वो एक चिन्ता का विषय है, पर पहले फिर भी कुछ तो हो जाता था। इससे एक क़िस्म का फ़ायदा जो बच्चों को मिलता रहा है वो प्रभावित हो रहा है, साथ ही विविध पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों में आत्मविश्वास पैदा करने के मौक़े इसी तरह के मंचों से सबसे ज़्यादा उभरते हैं और स्कूल के साथ अपने जुड़ाव को लेकर वो और ज़्यादा आगे बढ़ते हैं। दूसरा प्रमुख मुद्दा स्वास्थ्य और पोषण का है।

लॉकडाउन के बाद से स्कूलों में पोषण आहार की पहुँच प्रभावित हुई है। पहला काम, विटामिन ए की गोली का बच्चों के बीच वितरण

सुनिश्चित किया गया। हर साल ऐसे बच्चों का चिह्नांकन शिक्षा विभाग या स्वास्थ्य विभाग के द्वारा किया जाता रहा है जो किसी-न-किसी शारीरिक परेशानी से जूझ रहे हैं और उनके परिवार में अभिभावकों की स्थिति ऐसी नहीं है कि वह अपने ख़र्च पर अपने बच्चे का ज़रूरी इलाज करा पाएँ। लेकिन यह पहल इस पूरे दौर में ठप्प है। दूसरा, स्वास्थ्य को लेकर जिस तरह का दबाव स्वास्थ्य विभाग के ऊपर पड़ा है, उसका असर स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों पर भी हुआ है। एक साल में शारीरिक चुनौतियों से जूझने वाले इन बच्चों के साथ आगे क्या स्थितियाँ पेश आएँगी पता नहीं। तीसरी बात स्कूल के आर्थिक पक्ष से जुड़ी है। इस पूरे दौर में एक बड़ी संख्या में स्कूलों को क्वारंटाइन केन्द्र बनाया गया, लेकिन इन केन्द्रों के रखरखाव और इनके सेनेटाइजेशन को लेकर जो माँग शिक्षकों और प्रधान पाठकों द्वारा की गई, उसपर कोई बातचीत नहीं हुई है।

हाल ही में शिक्षकों के साथ चर्चा में ऑनलाइन कक्षा की सीमाओं को लेकर एक बहुत दिलचस्प बात सामने आई कि इन कक्षाओं में बच्चों की लेबलिंग ज़्यादा मज़बूत हुई है। जो बच्चे ऑनलाइन कक्षा ले रहे हैं, वे अच्छे बच्चे हैं और जो बच्चे किसी भी वजह से ऑनलाइन कक्षा का हिस्सा नहीं बन रहे हैं वो ख़राब। हालाँकि कई शिक्षकों को अभिभावकों की पृष्ठभूमि और बच्चों की आर्थिक स्थिति का पता है, लेकिन तब भी यह स्थिति है। ऑनलाइन सीखने-सिखाने को लेकर हुए प्रयास हम सबके सामने हैं और काफ़ी शिक्षक साथी इसमें बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। लेकिन ऑनलाइन शिक्षण करना कैसे है और सामान्य कक्षा से ये ऑनलाइन कक्षाएँ किस हद तक भिन्न हैं, ऑनलाइन कक्षाओं के लिए सामग्री कैसे विकसित करनी है, इसको लेकर ज़्यादातर शिक्षकों के पास कोई मदद कोई दिशा निर्देश नहीं थे। छत्तीसगढ़ में हाई स्कूल और हायर सेकेंडरी स्तर के शिक्षकों के लिए तकनीकी का इस्तेमाल शिक्षा में करने के लिए इग्नू की मदद से एक सप्ताह का कोर्स प्रस्तावित किया गया था, हालाँकि ज़्यादातर शिक्षकों ने इसमें भाग नहीं लिया।

दूसरी चुनौती ऑनलाइन कक्षा के लिए इंटरनेट कनेक्टिविटी की थी। इसका एक आर्थिक पक्ष भी है कि डेटा का होना पैसे पर निर्भर है। कई बच्चों के लिए शिक्षक साथियों ने अपने ख़र्च पर फ़ोन रिचार्ज करवाए, लेकिन यह साहस हरेक शिक्षक नहीं कर पाया। मूल बात इसमें यह है कि परिवार पर और शिक्षकों पर ऑनलाइन मोड पर जाने का एक अप्रत्यक्ष आर्थिक दबाव भी पड़ा है। यह भी कि शिक्षक बच्चों के साथ लगातार कॉन्टेक्ट करने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन इन दिनों ने उन्हें एक तरह से स्कूली प्रक्रियाओं के प्रति उदासीन बना दिया है। शिक्षक फ़ोन करके बात करने की कोशिश करते हैं, पर

फोटो : कुलदीप शर्मा, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन

वो बात नहीं करते हैं। इन प्रक्रियाओं की वजह से शिक्षकों के मन में एक आशंका भी है कि बच्चों का स्कूल न आना और बच्चों का शालात्यागी के रूप में परिवर्तित हो जाना बढ़ेगा। एक और बात शिक्षकों ने महसूस की, कि जब आमतौर पर गर्मियों की छुट्टियाँ होती थीं उनमें कुछ महीने अवकाश के बाद ख़ासतौर पर पहली-दूसरी कक्षा में पढ़ने वाले बच्चों के साथ नए सिरे से काम करने की ज़रूरत होती थी, क्योंकि वे इन डेढ़-दो महीनों में बहुत-सी बातें भूल चुके होते थे। अब छुट्टियों का एक लम्बा दौर हो गया है यह उनके सीखने में कितना ठहराव ला चुका होगा, कहना मुश्किल है। शिक्षकों ने प्रस्तावित भी किया

कि हमें अपने बच्चों का एक बेसलाइन आकलन करना चाहिए ताकि समझ में आए कि फिर से शुरुआत कहाँ से हो? इस दौरान शिक्षकों के ऊपर दबाव भी आए हैं। हम लोग शिक्षकों के समूहों के साथ लगातार जुड़े हुए हैं, उनके साथ व्यक्तिगत बातचीत भी होती है। कुछ शिक्षक सुबह सात बजे कक्षा लेते हैं तो कुछ शिक्षक शाम को 8 बजे कक्षा लेते हैं। वजह यही है कि ये ही वो वक़्त है जब बच्चों के साथ बात किए जाने की सम्भावना बनती है। इसका शिक्षकों की दिनचर्या पर भी प्रभाव पड़ा है और मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक तौर पर भी इसका असर पड़ रहा है। शासन के स्तर पर हुए प्रयासों को देखने के लिए cgschool.in वेबसाइट को देख सकते हैं। शासन द्वारा किए गए कुछ मुख्य प्रयासों में है 'लाउडस्पीकर' गुरुजी की शुरुआत, जहाँ पर

फोटो : कुलदीप शर्मा, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन

शिक्षकों से आग्रह किया गया कि वे गाँव के स्तर पर जाकर साइकिल के माध्यम से अथवा मोटरसाइकिल के माध्यम से पढ़ाने की कोशिश करें तो उन्हें पंचायत के सहयोग से लाउडस्पीकर मुहैया कराएँगे। कुछ ही जगहों पर ये व्यवस्था सुनिश्चित हो पाई। कुछ जगह पंचायतें सहयोग नहीं कर पाईं। इसके आर्थिक कारण भी हैं। यह भी कि ज़्यादातर शिक्षक रायपुर जैसे बड़े शहर से आते हैं, तो गाँव का समुदाय उनके आने को सन्देह की नज़र से देखता है और संक्रमण की आशंकाओं को देखते हुए मना कर देता है।

शासन द्वारा किया गया दूसरा प्रयास 'पढ़ई तुंहर दुआर' है। जहाँ ऑनलाइन कक्षाएँ होती हैं। साथ ही 'पढ़ई तुंहर पारा' भी शुरू किया गया, पारा माने मोहल्ला। इसके तहत शिक्षक गाँव के सामुदायिक भवन, या किसी खुली जगह पर बच्चों की कक्षा लेंगे। एक और कोशिश 'बुल्टू के बोल', था जिसमें शिक्षकों को ग्रामीण इलाक़ों के रिमोट क्षेत्रों में जहाँ इंटरनेट की समस्या है, वहाँ जाकर बच्चों को वर्कशीट, कुछ किताबें बच्चों को देनी थीं या अपने मोबाइल से ब्लूटूथ के सहारे सामग्री ट्रांसफ़र करनी थी। जून और जुलाई 2020 की बात करें तो स्कूलों में शिक्षकों को जाने के निर्देश दिए गए क्योंकि टीसी बननी है, बच्चों की अंकतालिका बननी है, अगली कक्षा में बच्चों को दाख़िला लेना है, और जब शिक्षक स्कूल गए तब उनसे आग्रह किया गया कि आप अपने स्कूल में बच्चों की सहमति से, उनके अभिभावकों की सहमति से ही कुछ कक्षाएँ लें। ये 4-5 प्रयास शासन ने अपनी तरफ़ से किए। इस दौरान शिक्षकों ने बच्चों के साथ जुड़ाव बरक़रार रखने के लिए अपने स्तर पर कई पहल की हैं। जैसे, अभंगपुर ब्लॉक में शिक्षकों के एक समूह ने अपने-अपने विद्यालयों में और उन सारे विद्यालयों में जिनके शिक्षक उनके सम्पर्क में हैं, सबने मिलकर ब्लॉक स्तर पर समय-समय पर, कभी गणित पर, कभी सामाजिक विज्ञान पर, कभी भाषा पर, क्विज़, भाषण, कविता पाठ जैसी प्रतियोगिताओं का आयोजन करना शुरू किया।

बच्चों की एक भाषा प्रतियोगिता भी थी जिसमें प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, उच्च माध्यमिक, हायर सेकेंडरी, सभी स्तरों के बच्चे शामिल हुए। इस तरीक़े के ऑनलाइन प्रयासों के माध्यम से भी शिक्षकों ने बच्चों के साथ अपने जुड़ाव को बरक़रार रखने की कोशिश की है और इसके साथ-साथ उनको प्रोत्साहित करते रहने के लिए सर्टिफ़िकेट जैसी चीज़ों का भी प्रावधान किया है। सीखने-पढ़ने की गतिविधियाँ, सीखने-पढ़ने के तरीक़े की तरफ़ ये रुझान हाल फ़िलहाल तीन महीनों में ज़्यादा साफ़ दिखाई दिया है, इससे पहले तो छुट्टी जैसा दौर था।

शिक्षकों के साथ ऊर्जावान जुड़ाव की बात करें तो प्रभावी तरीक़ा यह लगता है कि सबसे पहले एक चेतना बनाए जाने की ज़रूरत थी कि आने वाले अकादमिक सत्र में किस तरह की चुनौतियाँ सामने आने वाली हैं और उसके लिए अभी से तैयारी नहीं की तो हम कितनी जगहों पर असफल हो सकते हैं। इसको लेकर हमने सामुदायिक सलाहकार समितियों के साथ बात की और उसके बाद प्रधानाचार्य और स्कूल के प्रभावी शिक्षक सभी से बात की। इस प्रक्रिया को हम अभी आकार दे रहे हैं। शिक्षकों में लघु पाठ्यक्रमों के प्रति रुझान बढ़ा है।

रजनी : शुक्रिया।

मैं बातचीत के मुख्य बिन्दुओं को रेखांकित करना चाहूँगी। एक मुख्य बात यह है कि अलग-अलग स्तर पर काम जारी हैं। दूसरा यह कि शिक्षक, बच्चे और बच्चों के अभिभावक भी स्कूल की कमी महसूस कर रहे हैं। तीसरी बात, इन परिस्थितियों में समुदाय में बच्चों की शिक्षा के लिए शिक्षक और अभिभावक का सहयोग दिखा है कि स्कूल और समुदाय एक दूसरे के साथ कैसे आ सकते हैं और कैसे एक जुड़ाव बनाकर बच्चों की शिक्षा के लिए काम कर सकते हैं। चौथी बात ऑनलाइन शिक्षण के प्रयास और उनकी सीमाओं की है।

ज़्यादा-से-ज़्यादा बच्चों से जुड़ने के लिए मोहल्ला शिक्षक या वॉलंटियर्स बनाना जो उन बच्चों के साथ में काम करेंगे, इस तरह के प्रयास भी हुए हैं। इनमें से कौन-से प्रयास आगे जा सकते हैं और ज़्यादा अच्छे साबित हो सकते हैं यह समय रहते ही पता चलेगा। एक और बात यह कि स्थितियाँ हर जगह अलग-अलग हैं, कहीं पर किसी तरह का काम किया जा सकता है और कहीं पर किसी और तरीक़े का काम किया जा सकता है। इस तरह की बहसें भी इस समय शुरू हुई हैं कि स्वास्थ्य और शिक्षा में से हम किसको चुनें। लेकिन स्कूल महज़ सीखने-सिखाने की जगह नहीं है, बल्कि स्कूल उनके लिए एक तरह से ऐसी जगह है जो उनको ज़्यादा आज़ादी और स्वतंत्रता देती है– अपने मन का करने की। घर के तनाव स्कूल में नहीं होते और साथ ही स्कूल के साथ में जो अन्य सुविधाएँ जो सेहत को लेकर बच्चों को मिलती हैं वो भी बच्चों को इस दौर में नहीं मिल पा रही हैं।

रजनी : सवाल ले सकते हैं अब।

हृदयकान्त दीवान : कोई और इसमें कुछ कहना या जोड़ना चाहे। मतलब इससे क्या निहितार्थ निकलते हैं?

मुनीर : मुझे 3 चीज़ें समझ में आईं। हमें आने वाले समय के लिए हर बच्चे और शिक्षक को सूचना प्रौद्योगिकी से परिचित कराना होगा। दूसरा, एक वैकल्पिक पाठ्यचर्या और शिक्षणशास्त्र को लेकर जब तक हमारी समझ नहीं होगी तब तक हम बच्चों के साथ जुड़ नहीं पाएँगे। पिछले 4-5 महीनों में एक चीज़ और मुझे बहुत स्पष्ट नज़र आई कि शिक्षक, बच्चे और समुदाय के साथ हमारा जो सम्बन्ध था वो बहुत मज़बूत नहीं था। चाहे प्राइवेट स्कूल हों, चाहे सरकारी स्कूल हों, बच्चे, समुदाय और शिक्षक के बीच रिश्ते कैसे हैं इसे कोविड-19 की परिस्थिति ने बहुत मज़बूती से उभारा है। प्राइवेट स्कूल की स्थिति भी इस तरह की परिस्थिति से निपटने के लिए, उनसे हमारा रिश्ता कितना मज़बूत है ये बहुत बड़ा रोल अदा करता है।

फोटो : खुशबू, एकलव्य फ़ाउण्डेशन

रश्मि : मैं इस बात से सहमत हूँ कि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी अगर पाठ्यक्रम में सम्मिलित हो जाए और शिक्षकों के लिए एक प्रशिक्षण मॉड्यूल जैसा आ जाएगा तो मददगार होगा। दूसरी चीज़ वैकल्पिक शिक्षणशास्त्र की है। हमारी अभी की पढ़ाई, सामान्य पढ़ाई नहीं है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि हम पाठ्यक्रम को पूरा करने को लेकर काम नहीं कर सकते। ऑनलाइन शिक्षण में हम बहुत सारी चीज़ों को छू भी नहीं पा रहे हैं, जैसे– प्रयोग करवाना आदि। हम पढ़ा रहे हैं, बार-बार अपने अनुभवों को साझा भी कर रहे हैं लेकिन उसकी साप्ताहिक रिपोर्टिंग इतनी ज़्यादा हो रही है कि डेटा संग्रहण में ज़्यादा समय लग रहा है, और वो भी ऑनलाइन जा रहे हैं वहाँ भी शिक्षक जूझ रहे हैं।

रजनी : धन्यवाद रश्मिजी। अनूपजी, छोटेलालजी आप संक्षिप्त में कुछ जोड़ना चाहेंगे।

छोटेलाल : पूरे अनुभव से ये चीज़ और पुख़्ता हुई है कि बच्चों के साथ सन्दर्भ से सीखने की अप्रोच काफ़ी प्रभावी होती है। दूसरा, एक टीम की तरह काम करने पर काम काफ़ी सरल हो जाता है और उस काम में लोगों का सीखना और बेहतर ढंग से करने का जज़्बा निकलकर आता है। तीसरी बात स्कूल और समुदाय के बीच एक मज़बूत रिश्ते की है। बिना मज़बूत सम्बन्धों के जो भी हम कोशिश कर रहे होते हैं, उसमें बच्चों के साथ सीखने के जुड़ाव में जो एक अर्थ और एक अपनेपन की भावना है वो नहीं बनती है। अतः शिक्षक, बच्चे, अभिभावक के बीच सम्बन्धों को सीखने-सिखाने की पूरी प्रक्रिया के कोर की तरह से देखा जाना चाहिए। धन्यवाद।

रजनी : कोई और संक्षिप्त में अपनी बात कहना चाहे तो कहें।

वक्ता : आज की बातचीत काफ़ी प्रेरणादायक रही। जिस तरह की चुनौतियाँ हमारे सामने थीं / हैं उनमें हताशा भी आती थी, लेकिन इस बातचीत को सुनकर लगता है कि पूरे देश में यही स्थिति है। बहुत सारे लोग इनसे जूझ रहे हैं, और हतोत्साहित नहीं हो रहे हैं। इस संवाद के माध्यम से या इस बीच में जो भी मेरी समझ बनी है, उसमें मुझे यही लगता है कि इस परिस्थिति का कोई एक निश्चित समाधान नहीं है। सिर्फ़ ऑनलाइन ही एक ऐसा माध्यम है या जो वॉलंटियर्स कर रहे हैं वही एक ऐसा माध्यम है जो कारगर होगा, ऐसा नहीं है। मुझे लग रहा है कि हर प्रयास अपने-अपने स्तर पर चल रहा है और वो किसी एकीकृत तरीक़े से परिणाम लाने का काम कर रहा है। धन्यवाद।

गुरबचन सिंह : आप सभी का इस महत्त्वपूर्ण संवाद में भाग लेने के लिए, इसे एक महत्त्वपूर्ण आयाम देने और वैचारिक रूप से समृद्ध बनाने के लिए बहुत-बहुत शुक्रिया।

मुद्रक तथा प्रकाशक मनोज पी. द्वारा अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डेवलपमेंट के लिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, E-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039 की ओर से प्रकाशित एवं गणेश ग्राफ़िक्स, 26-बी, देशबंधु परिसर, प्रेस काम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1 भोपाल द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : गुरबचन सिंह

लेखकों से आग्रह

पाठकों से प्राप्त सुझाव के आधार पर **पाठशाला भीतर और बाहर** में छपने वाले लेखों की प्रकृति, स्वरूप और प्रस्तुति में कुछ परिवर्तन किए गए हैं, जिसकी झलक आपको इस छठवें अंक में भी दिखाई देगी।

प्रयास है कि पत्रिका ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे साथियों के लिए अपने अनुभवों को दर्ज करने, उनको विस्तार देने और गहराई देने के लिए एक उपयुक्त मंच बने और साथ ही इन अनुभवों को साझा करने का भी। इसी तरह यह ज़मीनी स्तर पर होने वाले कार्य की दृष्टि से अर्थपूर्ण व कार्य में मददगार भी बन पाएगी। और व्यापक पाठक वर्ग सहित आप व हमारे शिक्षक साथी इसे पढ़ेंगे और इसका अधिकाधिक उपयोग कर पाएँगे।

आपसे आग्रह है कि आप अनुभवों को दर्ज कर पत्रिका में छपने के लिए भेजें। आप स्कूल में, कक्षा में, और अलग–अलग मंचों पर शिक्षकों के साथ किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके साथी शिक्षक भी उनके द्वारा किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके द्वारा भेजे गए लेख बच्चों के सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे– विभिन्न विषयों या प्रकरणों को सीखने–सिखाने के अनुभव या फिर शिक्षकों के साथ अन्तःक्रिया के नए तौर–तरीक़ों पर केन्द्रित या फिर किसी महत्त्वपूर्ण या उल्लेखनीय संवाद के बारे में, जो औरों के लिए भी उपयोगी हो। इनके और बहुत–से उदाहरण हो सकते हैं। जैसे– बच्चों के साथ काम के सन्दर्भ में गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक अध्ययन, आदि किसी भी विषय की किसी भी कक्षा के अनुभव। ये अनुभव किसी अवधारणा को बच्चों को सिखाने, उन्हें गतिविधियाँ कराने के या उनके साथ खेल खेलने आदि के हो सकते हैं।

आप, स्कूल और शिक्षकों के साथ (इसमें एंगेज्ड शिक्षक भी शामिल हैं) जो काम कर रहे हैं, उससे सम्बन्धित लेख भी साझा कर सकते हैं। इसमें, आपने जो किया उसके साथ–साथ आप अपने काम में किस ख़ास तरह से आगे बढ़े और वह आपने क्या सोचकर किया, इस विचार को शामिल कर सकते हैं। इस दौरान आप अपने काम के सकारात्मक नतीजे व उसमें दिखने वाले गैप भी बताएँ, जैसे– बाल सभा या बाल शोध मेलों में कुछ परिवर्तन किया, तो वह क्या सोचकर किया, उसका क्या नतीजा निकला, और बेहतर करने के लिए उसमें और क्या–क्या किया जा सकता है, आदि? इसी तरह कक्षा में बच्चों को चित्रकला करवाने, कहानी सुनाने या किसी नाटक में भाग लिया, तो उसके बारे में क्या अनुभव रहे। गणित का एक उदाहरण, शिक्षण सामग्री जैसे– गिनमाला का प्रयोग करके गिनती सिखाने का हो सकता है। इसी तरह वालंटरी टीचर फ़ोरम, टीचर लर्निंग सेंटर, समर–विंटर कैम्प के शैक्षिक प्रयासों आदि के बारे में भी मननशील लेख हो सकते हैं। ये लेख पाठक को यह समझने में मदद करें कि उनमें क्या प्रयास था, किस परिस्थिति में उसे सोचा गया, कैसे किया गया, क्या हो पाया, क्या कमी रही, क्या सीखा और आगे के लिए आपके समूह के लिए और पाठकों के लिए उसके क्या निहितार्थ हैं?

इसी तरह, शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान, वालंटरी टीचर फ़ोरम में कार्य के दौरान, टीचर लर्निंग सेंटर पर हो रहे प्रयासों में, या उनके साथ सहकारी शिक्षण के दौरान हुए अनुभवों को मननशील व समालोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखकर भेजें तो अच्छा रहेगा। इसी तरह बच्चों अथवा शिक्षकों के साथ कक्षा के बाहर हुए सार्थक अनुभव भी आप मननशील ढंग से लिख सकते हैं।

लेखों के विषय और विषयवस्तु ऐसी हो जिससे फ़ील्ड में कार्य करने वाले साथियों और शिक्षकों को वैचारिक मदद मिलती हो और उनका दक्षता संवर्धन होता हो। लेख ऐसे हों जो स्कूल व कक्षा में पढ़ने–पढ़ाने के तरीक़ों व अन्य गतिविधियों में शिक्षकों व फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें। साथ ही ऐसे लेख भी हों जिनसे विविध विषयों और उनमें बुनी अवधारणाओं को पढ़ाने में मदद मिले। लेखों की भाषा और विषय सामग्री अधिक–से–अधिक सदस्यों को आसानी से समझ में आने वाली हो।

यदि लेख में दिए गए किसी विवरण, चर्चा अथवा व्याख्या से सम्बन्धित किसी तर्क अथवा प्रमाण के लिए किसी पुस्तक, जरनल या वेब स्रोत से कोई सामग्री ली गई हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करें। आप जो भी सन्दर्भ सामग्री लें उससे लेख को अर्थपूर्ण, तार्किक और गुणवत्तापूर्ण बनाने में मदद मिले।

इसके अलावा आप शिक्षा से सम्बन्धित किसी पुस्तक, फ़िल्म अथवा अन्य शिक्षण सामग्री के बारे में भी लिख सकते हैं, मसलन उनका परिचय, समीक्षा अथवा विश्लेषण।

आशा करते हैं कि आपके यह लेखकीय अनुभव ठोस एवं यथार्थपरक होंगे। उसमें कुछ ऐसा ज़रूर हो जो पाठक को रुचिपूर्ण व सार्थक लगे।

लेखकों को अपने लेखन के सन्दर्भ में किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता महसूस होती है तो वे इसके लिए सम्पर्क कर सकते हैं। उन्हें सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा आवश्यक सहयोग और सुझाव दिए जाएँगे। उम्मीद है कि **पाठशाला भीतर और बाहर** का यह छठवाँ अंक आपको अच्छा लगेगा और आप इसके अगले अंकों के लिए ज़रूर लिखेंगे। पत्रिका के इस अंक पर आपकी टिप्पणियों व सुझावों का हमें हमेशा की तरह इन्तज़ार रहेगा।

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अन्य पत्रिकाएँ